सम्मेलन-पत्रिका

(त्रैमासिक)

गयाप्रसाद शुक्ल सनेही जन्मशती विशेषांक

भाग ६९ : संख्या १-४

पौष-मार्गशीर्ष : शक १९०५

सम्पादक

डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल

वार्षिक २०.०० रु० **हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग** विशेषांक २०.०० रु०

प्रकाशक

प्रभात शास्त्री

प्रधानमंत्री : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

(•)

मुद्रक

सम्मेलन मुद्रणालय

प्रयाग

के लिए नागरी प्रेस

अलोपीबाग, इलाहाबाद द्वारा मुद्रित

श्री गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'

सम्पादकीय

श्रद्धाञ्जलि : शत-शत-प्रणाम

सुकवि सम्राट् पंडित गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' हिन्दी काव्य-जगत् में युग-पुरुष के रूप में अवतरित हुए थे। युग-पुरुष युग-चेतना का सुहृद होता है। वह एक सच्चे सखा के रूप में युग के सुख-दुःख से, उसकी आशा-निराशा से पूर्णतः परिचित होता है। युग का स्पन्दन ही उसके अपने जीवन का स्पन्दन होता है। कभी वह युग-चेतना के रथ पर बैठकर दूर-दूर की यात्रा करता है और कभी वह उस रथ का सारथी बनकर उसे दिशा-निर्देश प्रदान करता है। युग का हास युग-पुरुष के ओठों पर क्रीड़ा करता है और युग की चिन्ता के साथ-ही-साथ युग-पुरुष की पलकें भी जब झप जाती हैं तब वह आत्म-चिन्तन में निमग्न होकर युग को चिन्ता-मुक्त करने का प्रयत्न करने लगता है। युग-पुरुष नर-नारायण की भाँति परस्पर सम्बद्ध रहकर सतत सृष्टि की निर्माणकारिणी प्रकृति को गति प्रदान करते रहते हैं। 'सनेही' जी के विषय मे दूर-दूर रहकर जितना मैंने सुना है और उनके निकट जाकर जितना मैंने देखा है, वह सब जब मैं अपनी स्मृति के सहारे बटोरता हूँ तब उनके व्यक्तित्व के महत्त्व का अनुभव करते हुए आश्चर्यचकित हो जाता हूँ। सचमुच 'सनेही' जी का व्यक्तित्व बड़ा अद्भुत था। वे जैसे अपने अन्दर थे, वैसे ही अपने बाहर भी। स्वभाव, विचार और व्यवहार की एकरूपता ही उनकी महनीयता का स्वरूप है। इसीलिए यह कहना बड़ा कठिन है कि 'सनेही' जी बड़े हैं या उनका कवि उनसे बड़ा है। 'को बड़ छोट कहत अपराधू' की स्थिति है। यह सब विचार करने की बात है कि सनेही जी की शिक्षा-दीक्षा न तो किसी विश्वविद्यालय स्तर पर हुई और न किसी संस्कृत पाठशाला में ही व्याकरण और साहित्य-ग्रंथों का उन्होंने पारायण किया; पर जो कुछ उन्होंने साहित्य को दिया वह उच्च कक्षाओं में अध्ययन का विषय बना और शोध-छात्रों के लिए उपाधियों के हेतु सशक्त सम्बल सिद्ध हुआ।

'सनेही' जी की जन्मभूमि यद्यपि उन्नाव जिले का हड़हा गाँव है पर उनकी कर्म-भूमि सदैव कानपुर ही रही। उनकी सारी जवानी और सारा बुढ़ापा कानपुर की तंग-घनी बस्ती के बीच व्यतीत हुआ। सदैव ही वे किराये के मकान में रहे। उनकी रखी हुई कहीं एक ईंट भी नहीं है। पर जिस निश्चिन्तता एवं उदारता के साथ आपने अपना जीवन व्यतीत किया वह सबके भाग्य की बात नहीं। तन के वस्त्रों के प्रति वे अधिक सजग नहीं रहते थे, पर भोजन के प्रति वे विशेष सावधान रहते थे। एकाकी रहने पर भी वे स्वयं उतना ही अच्छा एवं रुचिकर भोजन बना लेते थे जितना उत्तम भोजन परिवार के बीच

बनता था। इस सन्दर्भ में एक उल्लेखनीय बात यह है कि आपकी रसोई में प्रायः प्रतिदिन अतिथियों का सम्यक् सम्मान होता था। इस रूप में आपका घर एक गुरुकुल का आश्रम-सा था। अर्थ के सम्बन्ध में उनका आदर्श था—

"साईं इतना दीजिए, जामें कुटुंब समाय।
मैं भी भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाय।"

जब कभी कोई आवश्यकता-ग्रस्त साहित्यकार उनके पास आ जाता था तब वे जैसे भी बनता, उसकी आवश्यकता को पूरी करते थे। आपका यह क्रम जीवन-पर्यन्त चलता रहा। 'सनेही' जी ने संग्रह कभी भी नहीं किया। वे सदैव शाहखर्च रहे। उदारता उनकी सहचरी थी। उनकी चिन्ता 'स्व' के लिए न होकर स्वजनों के लिए थी। परदुःखकातरता उनके स्वभाव का विशिष्ट गुण था जिसकी प्रशंसा उनके विरोधी भी करते थे। इसलिए उनके योग-क्षेम की चिन्ता नगर के कला-प्रेमी सहृदय एवं सम्पन्न व्यक्ति समय-समय पर कर लिया करते थे। फलतः आर्थिक विपन्नता से वे सदैव मुक्त रहे। उनके अधरों में दुग्ध-धवल स्मिति की रेखाएँ सतत थिरकती रहती थी। वार्द्धक्य में भी उनकी भ्रूभंगिमाओं में यौवन का उल्लास मुखरित रहता था। उनके प्राणों में संकल्प शक्ति का निरन्तर स्पन्दन होता रहता था।

कविवर 'सनेही' जी के जीवन मे उन विशिष्ट गुणों की अन्विति थी जिनका समाज के निर्माण में निरन्तर योग रहता है। त्याग और दान, सहृदयता और संवेदना, उत्साह और क्रियाशीलता, निष्ठा और दृढ़ता, स्वाभिमान और प्रणति आदि गुण उनके नित्यप्रति के व्यवहार-जगत् मे अपनी सम्पूर्ण चारुता के साथ परिलक्षित होते थे। एक कवि दूसरे कवि के प्रति प्रायः वह भाव नहीं रखता है जो उसके गुणों के कारण उसे जन-साधारण के हृदय में प्राप्त होते हैं। पर 'सनेही' जी की प्रकृति का यह वैशिष्ट्य था कि उन्होंने प्रतिभा का सदैव अर्चन किया है। विद्वान् के प्रति वे सदैव प्रणत हुए हैं। उन्होंने अपने युग के श्रेष्ठ साहित्यकारों को अपनी भाव-श्रद्धांजलियाँ समर्पित की हैं। उदाहरणार्थ कविवर निराला के सम्बन्ध में उनके उदार हृदय की भावना देखिए—

पिंगल के पंजे में पड़ी थी छवि क्षीण हुई
कविता को काले कारागृह से निकाला है।
कोई कहता है ऐसे गीत हैं प्रवहमान
भर दिया वाणी का सुधारस से प्याला है।
मन में तरंग है, उमंग रंग-रंग की
राग में किसी के बावला है, मतवाला है।
समझे न कोई पै 'सनेही' मैंने समझा है,
कवि है, सुकवि है, महाकवि 'निराला' है।

साहित्य-जगत् की नवोदित प्रतिभाओं का सटीक मूल्यांकन करना तथा उन्हें साहित्य-सृजन कार्य में सतत प्रोत्साहन देते रहना आपकी प्रकृति का स्पृहणीय गुण था।

डॉ० उपेन्द्र (प्रवक्ता हिन्दी विभाग, सनातन धर्म कालेज, कानपुर) की साहित्य-साधना का जिस रूप में आपने मूल्यांकन किया है वह नीचे उन्हीं की हस्तलिपि में दिया जा रहा है। इससे हमारे उक्त कथन की पुष्टि होती है—

श्री उपेन्द्र जी अच्छे गीतकार, प्रवक्ता व कवि हैं।
अपने मन के भावों को ऐसी सुन्दर और सरल भाषा में
प्रकट करते हैं कि वह उनके हृदय से निकलकर
श्रोताओं के हृदय में समा जाते हैं। सच्चे अर्थों में
यही सच्ची कविता है।

शेर कहते हैं उसको ऐ हसरत,
सुनते ही दिल में जो समा जाये

कानपुर
१४-२-६० — सनेही

'सनेही' जी की सृजनशीला प्रकृति ने काव्यभाषा के नव-नव रूपों द्वारा जो भाव-सृष्टि की है उससे हिन्दी काव्य का क्षेत्र न केवल भाव-सम्पत्ति में महान् बना, अपितु अभिव्यंजना की विभिन्न शैलियों एवं विकसित होती हुई हिन्दी भाषा की उत्तरोत्तर शक्तिमत्ता से समृद्ध भी हुआ। वे अपनी काव्य-रचना में परम्परा से निरन्तर जुड़े रहे और नूतनता का भी वरण करते रहे। उन्होंने काव्य-साधना की एक स्वस्थ परम्परा का निर्माण किया। उनकी प्रेरणा से नगर तथा अन्य स्थानों के अनेकानेक कविगण सारस्वत साधना में संलग्न हुए। रत्नाकर, बचनेश, रामकुमार वर्मा, जगदीश गुप्त, लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक', अनूप शर्मा, सेवकेन्द्र, हरिशंकर शर्मा, नाथूराम शर्मा, रसिकेन्द्र, शिशु, आदि उस युग के बाहर के कवि तथा हितैषी, तरल, प्रणयेश, अभिराम, रसराज नागर, असीम, ललाम, कुमुदेश आदि नगर के कवियों ने उन्हें अपने, गुरु-रूप में स्वीकार किया है। कानपुर साहित्य मण्डल के 'राष्ट्रीय आत्मा', दिनेश, करुणाशंकर शुक्ल 'करुणेश', अवधेश,

देवेन्द्रनाथ शास्त्री, प्रभात शुक्ल, हर्ष, अमरेश, वीरेश, अंबिकेश, कमलेश आदि कवियों ने उनका सदैव ही गुरुवत् सम्मान किया है।

रचनाकार रच-रच कर अपनी रचना को सँवारता है, उसमें प्रभविष्णुता के गुण को समाविष्ट करने का प्रयत्न करता रहता है, पर जब वह अपनी साधना को सिद्ध कर लेता है तब रचना अपने प्रकृत रूप में रचनाकार को संवारने लगती है. उस पर यश की, श्री की वर्षा-सी प्रारम्भ कर देती है। घनानन्द की पंक्ति ' लोग हैं लागि कवित्त बनावत, मोहिं तो मोरे कवित्त बनावत'' इसी तथ्य का उद्घाटन करती है। कविवर 'सनेही' जी का काव्य भी इसी तथ्य को चरितार्थ कर रहा है। उनके काव्य में जो सहजता, विच्छित्ति, रसमयता तथा सजीवता विद्यमान है वही तो उन्हें महत्त्व से मण्डित करके कवि सम्राट् बनाये हुए हैं। वे अपनी काव्य-सृष्टि के विधान में रससिद्ध कवि, चक्रवर्ती कवि के रूप में स्मरण किये जाते हैं। उन्हें अपनी काव्य-साधना के प्रति पूर्ण आस्था एवं अटूट आत्म-विश्वास था। निम्नांकित पंक्तियाँ इस तथ्य का प्रमाण हैं—

मेरे लिये कुछ भी अब असंभव नहीं
माँग शक्ति से मैं भक्ति का ही जोड़ लाया हूँ।
कितने ही रत्न उर-खान से निकाले हैं मैंने
कितने ही टूटे हुए दिल जोड़ लाया हूँ।
कवि हूँ कमाल, क्या बताऊँ, कितनी ही बार,
अमृत सहस्र फण से निचोड़ लाया हूँ।
सैर चन्द सूरजकी कीहै कितनी ही बार,
तारे आसमान के ''सनेही'' तोड़ लाया हूँ।

कवि की उक्त गर्वोक्ति उनका काव्य-सत्य है। आधुनिक साहित्य के अतर्गत उनकी रचनाओ मे जो कल्पनाप्रवणता, सहज प्रतिमा, सहज अर्थबोध एवं सहज शब्द-विधान प्राप्त होता है वह सामान्यत: विरल ही है।

'सनेही' जी यद्यपि खडीबोली-युग के कवि हैं पर भाषा और भावव्यंजना की दृष्टि से वे रीतिकालीन प्रभाव से अछूते नही हैं। इस दृष्टि से कतिपय छंद नीचे उद्धृत किये जा रहे हैं—

जेहि चाह सो चाह्यो तुम्हें प्रथमैं, अब हूँ तेहि चाह सो चाहनो है।
तुम चाहो न चाहो लला हमको, कछू दीबो न याको उराहनो है।
कछु दीजै कि कीजै दया दिल मे, हर रंग तिहारो सराहनो है।
मन भावै करो मन-भावन सो, हमैं नेह को तो नातो निबाहनो है।

ऊपर के इस छंद में घनानन्द के प्रेममय जीवन के आदर्श 'मीत के पानि परे को प्रमानै' का निर्वाह पाया जाता है। कवि प्रेमी जीवन की एकतानता एवं एकरूपता के प्रति पूर्णत: निष्ठावान् है।

गोपी-कृष्ण के प्रेममय जीवन की उद्भावनाओं के बीच बाँसुरी का स्मरण अनेक कवियों ने किया है। इसके माध्यम से संयोगी एवं वियोगी जीवन की मर्मस्पर्शी व्यंजनाएँ हुई हैं। 'सनेही' जी ने भी उसी रंग मे अपनी भाव-तरंग का परिचय दिया है—

बंस की ह्वै कै छुड़ावति बंसहि तीर-सी ह्वै हनै तीर-सी तानै।
बेधी गई तऊ बैध की वेदना बूझै न, बेधति खेद न जानै।
सूखि गई हरियारी, तऊ रही, ह्वै कै हरी है सुखावति प्रानै।
पीवै सदा अधरामृत, पै बरै बाँसुरिया बिस बोइबो जानै।

शीशे का तापाधिक्य से टूक-टूक हो जाना स्वाभाविक है। प्रियतम की मूर्ति प्रेमी के हृदयरूपी दर्पण में चित्रित है। विरह-ताप से वह दर्पण 'दुटूक' हो जाता है। फलतः हृदय में एक मूर्ति के स्थान पर दो मूर्तियाँ प्रतिबिम्बित होने लगती हैं। अस्तु, कवि की उक्ति का चमत्कार द्रष्टव्य है—

दर्पण में हिय के वह मूरति, आय फँसी न चली तदबीरै।
सो ह्वै दुटूक, 'सनेही' गयो, पै परी विरहागिनी की बहु भीरै।
दोउन में प्रतिबिम्बत ह्वै छवि, दूनी लगी उपजावन पीरैं।
सालति एकै रही जिय मे, अब एक ते ह्वै गईं द्वै तसवीरैं।

रीतिकाल में जहाँ एक ओर शृंगार की मादकता थी, नायक-नायिकाओं की केलि-स्थली की विविध रूपावलियाँ थीं, वहीं भूषण की रचनाओं में वीरत्व की आह्लादमयी व्यंजना भी थी। 'सनेही' जी के काव्य मे भी दोनों ही स्वरूप प्राप्त होते हैं। ऊपर शृंगारपरक छंद दिये जा चुके हैं। वीर रस की ओजमयी वाणी का रसास्वादन निम्नांकित छंद मे कीजिए—

चढ़त बढ़त उमड़त दल बादल के,
दिग्गज डिगत, भूमिधर धसकै लगैं।
थर-थर काँपै, भूमि-भार न सँभारि सकैं,
फूट ऐसे फाटि सेस-फन फसकैं लगैं।
मसकै लगत जब बाजी श्री सिवा जी वीर,
बैरी बृन्द सहमि-सहमि ससकै लगैं।
खसकै लगैं हैं मुगलानी महलन तजि,
मानो मुगलन के करेजे कसकैं लगैं।

खड़ीबोली के युग में छंद एवं भाव-विधान की दृष्टि से अनेक परिवर्तन हुए। कवित्त, सवैया के स्थान पर गीत शैली का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। भाव-व्यंजना की दृष्टि से अनन्त की खोज में लाक्षणिकता एवं वैचित्र्य विधान तथा चित्रमयता की सृष्टि हुई। 'सनेही' जी ने छंद-विधान की दृष्टि से खड़ीबोली काव्य में भी कवित्त-सवैया को ही विशेष महत्त्व दिया। यद्यपि छायावादी शैली में भी उन्होंने कुछ रचनाएँ कीं और गीतों तथा गजलों को भी उनकी लेखनी का साहचर्य प्राप्त हुआ पर, कवित्त-सवैया छंद के तो

वे राजा ही रहे। उन्हीं के प्रताप से कवि-सम्मेलनों एवं 'सुकवि' पत्रिका के माध्यम से छन्द इस परिवर्तन के युग में भी अपनी चारुता एवं भाव-व्यंजना की स्पृहणीय क्षमता के कारण हिन्दी-जगत् में छाये रहे।

यों तो 'सनेही' जी के सभी छन्द, चाहे वे विषयगत हों अथवा समस्यापूर्ति के रूप में हों, अपने विधान और अभिव्यक्ति में बढ़-चढ़ कर हैं, फिर भी उनके कुछ छन्द काव्य-प्रेमियों के कण्ठ में विराजते हैं। ऐसे ही छन्दों में उनके दीपक-सम्बन्धित छन्द हैं। ऐसा लगता है दीपक के माध्यम से कवि ने अपनी ही कहानी कह दी है। देखिए—

करने चले तंग पतंग, जलाकर मिट्टी में मिट्टी मिला चुका हूँ।
तम-तोम का काम तमाम किया, दुनिया को प्रकाश मे ला चुका हूँ।
नहीं चाह 'सनेही' सनेह की और, सनेह में जी मैं जला चुका हूँ।
बुझने का मुझे कुछ दुःख नहीं, पथ सैकड़ो को दिखला चुका हूँ ॥१
जगती का अँधेरा मिटाकर, आँखों में आँखों की तारिका होके समाये,
परवा न हवा की करी कुछ भी, भिड़े आके जो कीट पतंग जलाये,
निज ज्योति से नव ज्योति जहान को, अंत में ज्योति मे ज्योति मिलाये,
जलना हो जिसे जले वो मुझ-सा बुझना हो जिसे मुझ-सा बुझ जाये ॥२
लघु मिट्टी का पात्र था स्नेह भरा जितना उसमें भर जाने दिया।
धर बत्ती हिये पर कोई गया, चुपचाप उसे धर जाने दिया।
पर हेतु रहा जलता मैं निशा भर, मृत्यु का भी डर जाने दिया।
मुसकाता रहा बुझते-बुझते हँसते-हँसते सर जाने दिया ॥३

प्रतीकात्मक शैली में लिखे गये ये छन्द कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण हैं। इसमें आत्म-परक व्यंजना के साथ-ही-साथ उन संत जनों के आचरण की भी व्याख्या है जो निरन्तर दूसरों के लिए ही तपते रहते हैं, कष्ट सहन करते-करते अपनी ऐहिक लीला समाप्त कर देते हैं। पर-दु:खकातरता एवं सेवापरायणता जिनकी प्रकृति है वही तो महाभाग, महा-पुरुष हैं।

आध्यात्मिक जीवन से सम्बन्धित तथ्यपूर्ण कथन कितनी सहजता एवं सरलता से 'सनेही' जी व्यक्त करते हैं, इसका एक उदाहरण देखिए—

सिन्धु के हैं बिन्दु कहते हैं सिन्धु बिन्दु में है,
हवा में भरे हैं सिर ऊपर उठाये हैं।
कुछ पल ही में फिर चलता पता न कुछ,
तत्त्व जितने हैं सब तत्त्वों मे समाये हैं।
अभिमान करे तो 'सनेही' किस ज्ञान पर
आज तक इतना भी जान नहीं पाये हैं।
भजा किसने है और उसको अभीष्ट क्या है,
कौन है, कहाँ के हैं, कहाँ से यहाँ आये हैं।

'कला, कला के लिए है' और 'कला, लोक कल्याण के लिए है,' इन दोनों तथ्यों का न केवल उन्हें ज्ञान था, अपितु रचना के माध्यम से भी उन्होंने अपने काव्य-दायित्व का समग्रभावेन निर्वाह किया। कब क्या लिखना है, यह वह भलीभाँति जानते थे। सरकारी नौकरी में होने के कारण वे अपने 'सनेही' नाम से ऐसी कोई रचना नहीं लिखते थे जिससे उन्हें शासन का कोप-भाजन बनना पड़े। अतः समय और विषय के अनुरूप उन्होंने अपने उपनाम 'त्रिशूल' को सार्थक किया। अपनी राष्ट्रीय विचारधारा की रचनाओं का औचित्य एवं उनकी उपयोगिता पर अपना मत व्यक्त करते हुए एक बार उन्होंने कहा था—"यदि वन में दावानल लग जाये और कोई रसिया लताकुंज में बैठा बाँसुरिया बजाये तो वह कहाँ तक सही कलाकार हो सकता है।······यदि कोई गायक भैरवी के समय कजली अलापने लगे तो उसे सफल गायक कौन मानेगा। देश दास है, जनता जर्जर है। शृंगार कहाँ तक शृंगार कर सकता है। फिर तो वह संहार का कार्य करेगा।"

उन्होंने अपनी इसी मान्यता के अनुरूप ऐसे साहित्य का प्रणयन किया जो मातृ-बलिवेदी का अपने मुण्डों से शृंगार करने वाले देश के दीवाने युवकों के हृदयों में शक्ति एवं स्फूर्ति का संचार कर सके। साहस की प्रेरणा देती हुई नीचे की पंक्तियाँ देखिए—

हम भी दिल रखते हैं, सीने में जिगर रखते हैं।
इश्को सौदाए वतन रखते हैं, सर रखते हैं,
माना यह जोर ही रखते हैं, न जर रखते हैं,
बलबला जोशे मुहब्बत का मगर रखते हैं,
कंगूरा अर्श का आहों से हिला सकते हैं
खाक में गुम्बदे गरदूं को मिला सकते हैं।

× × ×

चालीस कोटि बंधु न दबके रहेंगे हम,
दरिया को पाट देंगे जो मिलके बहेंगे हम।

जिन सौभाग्यशाली व्यक्तियों ने स्वतंत्रता संग्राम, असहयोग आन्दोलन को देखा है उनकी यह अनुभूति आज भी सजीव होगी कि "विजयी विश्व तिरंगा प्यारा, झण्डा ऊँचा रहे हमारा" की ध्वनि कितनी उत्तेजक थी, कितनी आकर्षक थी। जहाँ-जहाँ यह झण्डा-गान होता था वहाँ आबाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी झण्डा-गान करने वालों को बड़े सम्मान और आदर के साथ देखते थे। उनके प्रति श्रद्धा का भाव उमड़ पड़ता था। 'सनेही' जी ने भी राष्ट्रीय झण्डे के प्रति अपने भाव व्यक्त किये हैं जो बड़े उत्तेजक हैं। कतिपय पंक्तियाँ देखिए—

स्वतंत्रता से तेरा नाता,
तू स्वदेश का भाग्य विधाता
जाता जहाँ वहाँ जय पाता,

कुटिल हृदय दहलाये जा,
लहराये जा, लहराये जा।

राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत 'सनेही' जी का साहित्य पृथुल मात्रा में है। राष्ट्रीय गीत परतंत्रता, लोकसेवा, स्वतंत्रता, कर्मक्षेत्र, राष्ट्रीयता, सत्याग्रह, साम्यवाद, जागृति गीत, सन् १८५७ की जन-क्रान्ति, भारतसंतान, आजादी आ रही है आदि विविध शीर्षकों से लिखी गयी कविताओं द्वारा आपने जन-मानस के बीच राष्ट्र-प्रेम का संचार किया था। विश्ववन्द्य बापू, युवक-हृदय सम्राट् पं० जवाहरलाल नेहरू, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, हुतात्मा गणेशशंकर विद्यार्थी आदि अनेक उन महान् पुरुषों को आपने श्रद्धांजलियाँ अर्पित की हैं जिन्होंने स्वतंत्रता संग्राम को एक यज्ञ मानकर अपने जीवन की आहुतियाँ दी हैं।

'सनेही' जी की राष्ट्रीय रचनाओं मे जो ऊष्मा थी, जो तेज था, जो प्रखरता थी, जो प्रेरणा थी, जो धधकती ज्वाला थी वह राष्ट्रीय काव्यधारा मे अपना पृथक् महत्त्व रखती है।

'सनेही' जी प्रणय और प्रलय के ही कवि नहीं है। वे शान्ति के भी कवि हैं। वे जीवन को संदेश देने वाले कवि हैं। उनका काव्य जीवन की सान्त्वना का काव्य है। वह जन-जन के सम्बल का काव्य है। इस दृष्टि से उनकी कतिपय पंक्तियाँ देखिए—

१. जब पड़ा विपत का डेरा हो, दुर्घटनाओं ने घेरा हो,
काली निशि हो, न सबेरा हो, घर मे दुख-दैन्य बसेरा हो,
तो अपने जी मे यह समझो
दिन अच्छे आने वाले हैं।

२. रोते रहते जो रोते हैं,
सोते रहते जो सोते हैं,
हाँ, होनहार जो होते हैं,
साहस वे कभी न खोते हैं।

'सनेही' जी ने नाक, कान, हृदय आदि शीर्षकों द्वारा बड़ा ही उपदेशपरक एवं साहित्य-सौष्ठव से पूर्ण काव्य लिखा है। 'नाक' शीर्षक रचना की कुछ पंक्तियाँ देखिए—

हमें है प्यारी ऐसी नाक
फूले कभी न जो सुहृदों पर हो सिकुड़न से पाक।
चढ़ न जाय जो ऊपर दुखिया दीन जनों को ताक॥
शुक-सी है, या तिल प्रसून-सी, क्या करना यह आँक।
ले जो साँस सनेह-पवन में, छल-रज जाय न फाँक॥
हमें है प्यारी ऐसी नाक।

काव्य-सृष्टि के संदर्भ मे 'सनेही' जी का दूसरा पक्ष है उनके आचार्यत्व का। वे जितने बड़े रचनाकार थे, उतने ही बड़े वे काव्यशास्त्र के ज्ञाता भी थे। यद्यपि उन्होंने

काव्यशास्त्र संबंधी कोई ग्रंथ नहीं लिखा, पर उनका काव्यशास्त्रीय ज्ञान उनकी रचनाओं में विद्यमान है। उन्हें गुण-दोष और भाषा का पूर्ण परिज्ञान था। जिस किसी कवि के छन्द को वह छू देते थे, वह छंद बोल उठता था। सुप्रसिद्ध कवि शिशुपाल सिंह 'शिशु' ने उनके इसी गुण के विषय में चर्चा करते हुए कहा था कि उनकी एक पंक्ति थी—

'किस सुरपुर के भीतर जायें, किस रौरव से चल निकलें।'

'शिशु' जी ने जब उक्त पंक्ति की आवृत्ति की तब उन्हीं के स्वर-में-स्वर मिलाकर 'सनेही' जी ने पढ़ा—

किस सुरपुर के भीतर जायें, किस रौरव से बच निकलें।

"चल" के स्थान पर "बच" शब्द के द्वारा स्वाभाविकता की दृष्टि से पंक्ति का महत्त्व बढ़ गया। रौरव से बचना ही अधिक श्रेयस्कर है।

प्राचीन कवियों में छन्दों के माँजने की प्रक्रिया सतत चला करती थी। परस्पर छन्दों के सुनने और सुनाने में उनका परिमार्जन होता रहता था। 'रत्नाकर' जी उद्धव शतक के छन्द 'रसाल' जी तथा 'सनेही' जी को प्रायः सुनाया करते थे। एक छन्द की पंक्तियाँ हैं :—

टूक-टूक ह्वै है मन-मुकुर हमारौ हाय
चूकि हूँ कठोर बैन-पाहन चलावौ ना।
एक मनमोहन तौ बसिकै उजार्‌यो मोहिं,
हिय मैं अनेक मनमोहन बसावौ ना।

'रत्नाकर' जी ने पहले लिखा था "चूर-चूर ह्वै है मन-मुकुर हमारौ हाय।"— सनेही जी ने तुरंत कहा—"चूर-चूर के स्थान पर "टूक-टूक" अधिक उपयुक्त होगा। "टूक-टूक" होने से ही हिय में अनेक मनमोहन के बसने की सम्भावना सार्थक होगी। मुकुर के चूर-चूर हो जाने से उसमें प्रतिबिम्ब ग्रहण करने की क्षमता नहीं रहती। 'रत्नाकर' जी ने बड़े आह्लाद के साथ उस संशोधन को 'सनेही' जी के प्रति आभार मानते हुए स्वीकार कर लिया। वे दिन निर्माण के थे, हठवादिता के नहीं। जो सुझाव दिये जाते थे उनमें ममत्व और आदर का भाव रहता था।

आचार्य पं० किशोरीदास जी वाजपेयी ने कनखल से 'मराल' नाम का एक पत्र निकाला था जिसमे आदर्श वाक्य के रूप में निम्नांकित पंक्ति छपी—"

"तुम बिन कौन मराल करे जग दूध को दूध औ, पानी को पानी।"

'सनेही' जी ने सुझाव दिया कि इस सवैया की पंक्ति में 'तुम बिन' के स्थान पर 'तो बिन' करना अधिक अच्छा होगा, क्योंकि चार ह्रस्व वर्णों का प्रयोग गतिभंग की दृष्टि में सवैया मे वर्जित माना गया है। वाजपेयी जी संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। उन्होंने अपने प्रयोग को उचित सिद्ध करना चाहा। 'सनेही' जी पाण्डित्य का, विद्वत्ता का समादर करते थे, पर अपनी उचित बात पर वे दृढ़ भी रहते थे। उन्होंने कहा— "सवैया हिन्दी का छन्द है। इसमें संस्कृत का तर्काश्रित पाण्डित्य उचित नहीं।" वस्तुतः 'सनेही' जी बड़े ही निर्भीक एवं स्पष्टवादी थे।

काव्य-भाषा के विषय में 'सनेही' जी का दृष्टिकोण बड़ा उदार था। उन्होंने अपनी रचनाओं में ब्रज, खड़ीबोली तथा उर्दू भाषा को समान रूप से समाहित किया। शृंगार प्रधान रचनाएँ प्रायः ब्रजभाषा में हैं, राष्ट्रीय रचनाओं में मूलतः खड़ीबोली का प्रयोग किया गया है। सुधारपरक एवं सामाजिक विषयों से सम्बन्धित रचनाओं में सामान्यतः बोलचाल की भाषा का प्रयोग हुआ है और गजलों में उर्दू भाषा का प्रयोग होना तो स्वाभाविक ही था। सारांशतः 'सनेही' जी ने समाज स्वीकृत एवं समाज-ग्राह्य भाषा का ही प्रयोग किया है। उनकी भाषा में सहजता का गुण है। कहीं भी भाषा का सायास रूप उपलब्ध नहीं होता है। कदाचित् यह कहना असंगत न होगा कि हिन्दी गद्य की भाषा का निर्माण आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ने किया तो आधुनिक खड़ीबोली पद्य की भाषा का स्वरूप आचार्य 'सनेही' जी ने गढ़ा। उसे प्रांजलता एवं शक्तिमत्ता प्रदान की। उस युग में उनके समान सरल प्रवाहमयी, मुहावरेदार एवं सशक्त काव्य-भाषा जो जन-मानस में प्रवेश पा सके, प्रयोग करने वाला कदचित् दूसरा व्यक्ति नहीं था।

'सनेही' जी की भाषा-सम्बन्धी मान्यता और आदर्श निम्नांकित पंक्तियों से स्पष्ट है—

> "जिसे न सब समझें, कुछ ही समझें
> बनी हुई हो ठगों की बोली।
> तुम्हीं बताओ 'सनेही' ऐसी
> जुबान हम लेके क्या करेंगे?"

'सनेही' जी का यह अडिग विश्वास था कि हिन्दी के माध्यम से ही समूचा भारतवर्ष भावात्मक एकता के सुदृढ़ बन्धन में बँधकर स्वतन्त्रता संग्राम में विजयी हुआ है। राष्ट्रभाषा हिन्दी ही हमारी संस्कृति की, सभ्यता की संरक्षिका है। राष्ट्रभाषा के अभाव में हमारा राष्ट्र अशक्त और क्रियाशून्य है। अतः वे राष्ट्रभाषा हिन्दी के पादप को अपनी काव्य-वारिधारा से सतत सींचते रहे।

आचार्य कविवर 'सनेही' जी अपनी सम्पूर्ण कार्यशीलता में एक संस्था के रूप में थे। सुकवि का सम्पादन, प्रकाशन और अवसर पड़ने पर उसका मुद्रण आदि कार्यों में जैसे उन्होंने कभी किसी अन्य की आवश्यकता की विवशता अनुभव हो नही की। कवियों का सृजन ही नहीं, अपितु उनका भरण-पोषण भी उनके दैनिक जीवन-प्रक्रिया का एक विशिष्ट अंग था। हिन्दी-सेवा का जो व्रत उन्होंने लिया उसे यज्ञीय साधना के रूप में पवित्रता एवं निष्ठा के साथ पूर्ण किया। साहित्य-सेवियों के लिए उनके हृदय में स्नेह और सम्मान का अक्षय कोष था। उनकी स्वाभिमान की भावना, उनकी अपनी मड़क अनुकरणीय थी, उनका तेवर आकर्षक था। उनकी निष्ठा असंदिग्ध थी और उनका पाण्डित्य अतर्क्य था। काव्य-संशोधन-प्रक्रिया में वे अप्रतिम थे और काव्य-साधना में वे अपने क्षेत्र में अनुपमेय थे। इन्हीं सब गुणों

के कारण 'सनेही' जी अनन्वय अलंकार के उदाहरण बन गये थे—सनेही, सनेही थे। उनकी पवित्र एवं प्रेरक स्मृति को शत-शत प्रणाम। उनके शताब्दि वर्ष में उन्हें हमारी हार्दिक श्रद्धांजलि समर्पित है।

× × ×

'सनेही'-जन्म शताब्दि के अवसर पर सम्मेलन-पत्रिका का यह विशेषांक श्रद्धा-समर्पण के साथ-ही-साथ एक आवश्यकता की पूर्ति के रूप में भी है। कानपुर विश्वविद्यालय के कुलपति श्री राधाकृष्ण अग्रवाल के समक्ष जब हमने 'सनेही' जी को डी० लिट्० की मानद उपाधि देने का प्रस्ताव रखा तब सबसे बड़ी समस्या थी उनके साहित्य के सम्बन्ध में। उनका सम्पूर्ण साहित्य इधर-उधर बिखरा पड़ा था। उसके एक स्थान पर मुद्रित न होने के कारण अपने प्रस्ताव को शक्ति सम्पन्न करने में कुछ कठिनाई अवश्य हुई। यह एक संयोग ही था कि अगस्त सन् १९६४ में कानपुर नगरमहापालिका ने 'सनेही' जी को एक अभिनन्दन ग्रंथ भेंट किया था जिसमें उनकी कुछ कृतियाँ प्रकाशित की गयी थी। उसी अभिनन्दन ग्रन्थ में हिन्दी के शीर्षस्थ विद्वज्जनों एवं समाज-सेवियों के श्रद्धा-सुमन भी प्रकाशित हुए थे। अतः एक व्यावहारिक बाधा इस अभिनन्दन ग्रन्थ को प्रस्तुत करके दूर की गयी।

'सनेही' जी के जीवन-काल में ही सम्मेलन ने आधुनिक कविमाला के रूप में 'सनेही' जी की कुछ चुनी हुई रचनाएँ प्रकाशित करने का निश्चय किया था। पर सम्मेलन की साहित्य समिति ने अपने निर्णय पर पुनः विचार किया और यह निश्चय किया कि उनका सम्पूर्ण साहित्य प्रकाशित किया जाय। अतः सम्पूर्ण साहित्य को प्राप्त करने का प्रयत्न प्रारम्भ हुआ। न तो 'सनेही' जी के जीवन-काल में उनका सम्पूर्ण साहित्य एकत्र हो पाया और न उनकी मृत्यु के पश्चात् ही इस दिशा में प्रयत्न सम्भव हो सका। कानपुर नगर में 'सनेही शताब्दी-समारोह' के अवसर पर सुप्रसिद्ध साहित्यकार एवं समाजसेवी श्री नरेशचन्द्र चतुर्वेदी ने अत्यन्त परिश्रमपूर्वक 'सनेही' जी की कुछ रचनाओं का अत्यन्त उपयोगी एवं सुरुचिपूर्ण संग्रह निकाला है।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने उनके गाँव हड़हा से जहाँ उनके कितने ही छन्द प्राचीन जनों के कण्ठों में विराज रहे हैं, संकलित करने का प्रयत्न किया। सुकवि की पुरानी फाइलों तथा सनेही युगीन उनके सम्पर्क के कवियों से भी सनेही-साहित्य के संकलन में सहायता ली गयी। प्रस्तुत 'सनेही' विशेषांक मे दो सौ चौरासी पृष्ठों में 'सनेही' जी का काव्य-साहित्य मुद्रित हुआ है। इस सम्पूर्ण साहित्य के संग्रह करने में और उसे व्यवस्थित करने में 'सुकवि-विनोद' के सम्पादक डॉ० लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक' ने बड़ी उदारता एवं उत्साह के साथ जो योगदान दिया है उसी का प्रतिफल है 'सनेही' जी के साहित्य का यह एकत्रित रूप। एक अनुज के रूप में उन्होंने मेरी इच्छा की पूर्ति की है। मेरे लिये यह गर्व एवं संतोष की वस्तु है।

'सनेही' जी के इस साहित्य के प्रकाशित हो जाने के बाद हम इस बात से आश्वस्त

नहीं हैं कि अब उनकी कोई भी पंक्ति छपना शेष नहीं है। यत्र-तत्र अब भी कुछ सामग्री अवश्य बिखरी हुई है। यदि सम्भव हुआ तो भविष्य में इस दिशा में और अधिक प्रयत्न किया जायेगा।

सम्मेलन-पत्रिका का यह विशेषांक तीन खण्डों में विभक्त है। प्रथम खण्ड में काव्य श्रद्धाञ्जलि है, द्वितीय खण्ड में विद्वज्जनों द्वारा 'सनेही' जी के काव्य-साहित्य पर समीक्षात्मक विचार एवं उनके व्यक्तित्व का मूल्यांकन है और तृतीय खण्ड में उनका काव्य साहित्य है।

हमारा विश्वास है कि साहित्य-प्रेमियों एवं सुधी जनों द्वारा पत्रिका के इस अंक का स्वागत होगा।

—*प्रेमनारायण शुक्ल*
साहित्य मंत्री

□

विषय-सूची

सनेही-शती-भावाञ्जलि

क्रान्ति और राग के महाकवि

सनेही-रचनावली

करुणा-कादम्बिनी

गीत-सृष्टि

श्रद्धाञ्जलि

स्फुट काव्य

राष्ट्रीय तरंग

खड़ीबोली छन्द

ब्रजभाषा छन्द

खण्ड : एक

सनेही-शती-भावाञ्जलि

कानपुर विश्वविद्यालय द्वारा डी० लिट्० की मानद उपाधि, तत्कालीन कुलाधिपति डॉ० बी० गोपाल रेड्डी से प्राप्त करते हुए कविसम्राट् पं० गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' साथ बाएँ से श्री राधाकृष्ण अग्रवाल (कुलपति), डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल, डॉ० बालमुकुन्द गुप्त तथा प्रो० राजेन्द्रसिंह ।

सनेही-शती-भावाञ्जलि

सनेही-संस्मरण

डॉ० भगीरथ मिश्र

तौर तरीके, सबी कुछ भिन्न थे, तेवर थे उनके बिरले ही।
आज के पूजा सगाहा सभी ने, रहे कुछ पूजते थे अजाने ही।
भाषा सजीली मुहावरेदार औ, काव्य के भाव चुटीले बने ही।
दुर्जनता को त्रिशूल बने रहे, सज्जनता के सखा थे सनेही ॥-०

वाणी में ओज प्रवीणता छन्द में, थे पद देश के प्रेम-सने ही।
नीति की बात दो टूक कहें, कवि-तारन बीच वे चन्द बने ही।
प्रेम औ सुन्दरता के विचार में, हंस समान विवेकी बने ही।
प्रेरित प्रेरणा से निज की, सब को रहे प्रेरणा देते सनेही ॥-००

सीस पै सोभित टोपी सजीली, सुकंठ दुपट्टा भरी भरी देही।
धोती उटंग छिपी कुरता बिच, हाथ छड़ी पग जूता सनेही।
छाती भरी उभरी, भरी भावन, बोलिबे को अधरा फड़कें ही।
ऐसो सजीलो मिलै कोउ जो, सोइ काव्य - विधाता त्रिसूल सनेही ॥-०

दूरि ते सिस्य प्रनाम करैं, पद - वन्दन कै सिर पै रज धारैं।
प्रेम सों कंठ लगाय, दुलारि कै, वे उनकी सब छेम विचारैं।
काव्य की पंक्ति के दोष निवारि कै, सोधि सुधारि सजाय सँवारैं।
देखि नई प्रतिभा को प्रफुल्लित, ह्वै कै सनेही स - नेह दुलारैं ॥-००

ऐसे सनेही की बात बिसूरि कै, आँखिन मैं अँसुवा भरि आवैं।
ऐसो लगै जैसे आय प्रतच्छ, सनेही सनेह सों छन्द सुनावैं।
ज्यों तिल बीच सनेह, त्यों छन्दन, बीच सनेही रमे जग यामैं।
वे बड़भागी जों बानी सुनैं, अरु प्रेरणा पाइ कै छन्द बनावैं ॥-०००

एच-६, पद्माकर नगर,
मकरोनिया कैम्प,
सागर (म० प्र०)।

□

सुकवि सम्राट् सनेही जी

डॉ० लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक'

देश-द्रोहियों से रहे जितने कठोर वह,
सुहृदों के हेतु सुकुमार उतने ही थे।
बाती बना प्राणों की प्रकाश जगती को दिया,
जैसे जलने के लिये सतत बने ही थे।
बुझके भी जिन्होंने बिखेरी ज्योति जीवन की,
अक्षर - मनीषी तेज-पुञ्ज वे घने ही थे।
देही रहे तो भी कवि - उरों में अदेही बने,
वे ही एक नेही, रहे प्रीति में सने ही थे ॥१

पनस रसाल कचनार या कदम्ब सम,
प्यारे रहे जीवन में उनको बबूल भी।
भाव की तरंग में 'तरंगी' - 'अलमस्त' हुए,
काँटे चूम, गले से लगाये रहे फूल भी।
अक्खड़ दानी, स्वाभिमानी, गुरु ज्ञानी रहे,
फक्कड़ थे, किन्तु रहे मानते असूल भी।
वैसे तो 'सनेही' थे सभी थे अपने ही, किन्तु,
बात जो लगी तो बन जाते थे 'त्रिशूल' भी ॥२

प्रेम-व्यञ्जना में रही भावना समर्पण की,
अनुभूति दर्पण - सी दिव्य द्युति वाली है।
करुणा - विहास - अनुराग - ओज - आगमयी,
रीति काव्य - शैली की अनूप है, निराली है।
बनके 'हितैषी' रहे जग में 'कलाधर' से,
मुक्तक - परम्परा 'निशंक' हो सँभाली है।
मुखर - प्रखर, मृदु, सहज सिंगार किये,
सुकवि सनेही जी की भाषा टकसाली है ॥३

विजया - तरंग में उमंग लिये आगे बढ़े;
हर रंग में ही उनका ही रंग चोखा था।
कितने महान् थे, प्रधान थे, प्रमाण भी थे,
स्नेहियों को उनसे हुआ न कभी धोखा था।
प्रेरणा - प्रभाव से बनाये कितने ही कवि,
लेखनी में दम थी; कवित्व भी अनोखा था।

काव्य के पयोधि पे बनाया भाषा - सेतु कभी,
बनके अगस्त्य शत्रु - यश - सिंधु सोखा था ॥४
बामन से हो गये विराट् निज साधना से,
लायें आसमान से सितारे तोड़-तोड़ के।
कवि कर्म द्वारा बतलाया कविता का मर्म—
उन्हें, जो बने थे कवि तुक जोड़-जोड़ के।
लाये उन्हें यति-गति-छन्द के सुपथ पर
भागे जा रहे थे जो कि लीक छोड़-छोड़ के।
दासता की कारा से उबारा दे सहारा निज,
पागये किनारा युग-धारा मोड़-मोड़ के ॥५

वार्डेन निवास
जय नारायण डिग्री कालेज,
लखनऊ।

□

सनेही

श्री रामजीदास कपूर

कवि वृन्द-प्रसून किये जिसने, वराचार्य हुए पहले ही यही।
अवलम्ब दिया प्रतिभा रत को, कला-कौशल मे पटु थे ही यही।
विविधाविधि मे बरसी कविता, गिरापूत त्रिशूल सनेही यही।
जिस काल रहे सर काल चढे, किया काल सनाथ विदेही यही ॥१

महाकाल के साथ उड़े नभ में, लखते शशि का रस-कूप मिले।
किया पान पीयूष चलें फिर वे, गुरुलोचन मारुत रूप मिले।
बड़े वेग से वेध बढ़े रवि को, प्रणयेश हितैषी अनूप मिले।
उठा वाद्य का नाद प्रसून झरे, निज आसन दे सूरभूप मिले ॥२

कर नाश त्रिशूल त्रिशूल वही, घन घोष घना घहराने लगा।
चमकी चपला चख तेवर हो, सुर चाप स्वरूप सजाने लगा।
नभ भास जगा नभ के उर में, अलमस्त प्रकम्पन छाने लगा।
झुलसी वसुधा पै सनेही सुधी, रस जीवन का बरसाने लगा ॥३

प्रतिवर्ण की गोपी सुलक्षणा को, वर व्यंजन तो छलके ही रही।
प्रतिभा-मुरली की रसीली गिरा, मन-कानन गुंजन में ही बही।

शुचि भाव-विभाव का रास महा, सज के अभिधा रथ के ही कही।
सविता-दुहिता-कविता के सखा, रस राजाधिराज सनेही सही ॥४

अलमस्त स्वभाव तरंगी सदा, रस राग अमाप बने ही रहें।
मणि-कांचन-योग से वर्ण बसे, नव छन्द तड़ाग खने ही रहें।
जब आन अड़े अविचारी अघी, रिस में हो त्रिशूल तने ही रहें।
यशकाय दुलार हो भारती के, रसिकों में सनेही सने ही रहें ॥५

वीर-भक्ति-रीति का व्यतीत हो चुका था काल,
भाषा का प्रवाह परतन्त्रता मे खोया जब।
सुषमा सरस्वती का मानस-मराल रूप,
विजयातरंगी अलमस्त बन सोया कब?
कवि-वाहिनी को दे प्रताप वर्तमान आज,
तूने शूलपाणि के त्रिशूल को सँजोया तब।
माधुरी सुधा सनी वही है जनमण्डली में,
सुकवि सनेही की कपूर पुण्यतोया अब ॥६

□

कवि सम्राट् सनेही शताब्दी श्रद्धाञ्जलि सप्तक

श्री सेवकेन्द्र त्रिपाठी

सीप बन जाता था समीप जो तुम्हारे उसे,
मोती आबदार द्युति दक्ष बना देते थे।
रसराज, अभिराम, मंजुल, अनूप, रूप,
बाण, हर्ष, व्यास समकक्ष बना देते थे।
व्यक्ति नहीं, सुकवि सनेही शक्ति मंडल थे,
पक्षहीन को भी जो सपक्ष बना देते थे।
जिसमें बिलोका प्रतिभा का स्वल्प अंकुर भी,
उसे कल्पना का कल्पवृक्ष बना देते थे ॥१

महावीर युग में स्वदेश भक्ति गंगा बहा,
काव्य महारथी भगीरथ से बने ही थे।
हिन्दी के हितैषी किये कितने ही स्वकीय तुल्य,
स्वाभिमान माप में झुके नहीं तनेही थे।

कवि सम्राट् थे विराट् भाव भाषा लिये,
मंजु रस माधुरी मे सन्तत सनेही थे।
वृत्त वृत्ति वृत्त में थे इतने प्रवृत्त हुये,
निज देह गेही नहीं सबके सनेही थे ॥२

सुकवि समाज बीच ऐसे फबते थे आप,
बैठे सुरगुरु हों सभा में जैसे सुर की।
ब्रज, अवधी में, खड़ी बोली, उरदू में कहीं,
समता नहीं थी ऐसी क्षमता प्रचुर की।
इनकी सदैव वाणी कंठ की विहारिणी थी,
भाव भंगिमा तो हारिणी थी उर उर की।
जान देश प्रेम की थे, आन स्वाभिमानियों की,
सुकवि सनेही जी थे शान कानपुर की ॥३

मान्यौ 'गया' तुम्हें पूर्वज वृन्द ने,
औ कविता ने 'प्रसाद' सो मान्यौ।
शुक्ल शिरोमणि मान्यौ यशस्विन्,
शारदा बीन निनाद सो मान्यौ।
काव्य की बेलि नवेलिन ने,
तुम्हें जीवन वर्द्धक खाद सो मान्यौ।
साहित ने हित मान्यौ तथा,
रस वादिन ने सुधा-स्वाद सो मान्यौ ॥४

काव्य के साधक सिद्ध भये,
तुम्है पावन जाह्नवी कूल सो मान्यौ।
भारत भारती संस्कृति ने अपनो तुम्हें,
लाज-दुकूल सो मान्यौ।
ज्ञान-निधान सुकोविद वृन्द ने,
ज्ञान को वृक्ष समूल सो मान्यौ।
मान्यौ सनेही सनेहिन ने औ,
अनेहिन तीक्ष्ण त्रिशूल सो मान्यौ ॥५

सैलन सिखरिनी पै चढ़ि मढ़ि चावन सों,
इन्द्रवज्रा सत्रु पै गिराइबो करत है।
सारदूलविक्रीड़ित अभय स्वतंत्र ह्वै कै,
मन्दाक्रांता भूमि सुख पाइबो करत है।

आलमी प्रकृति हरियारी भरी सेवकेन्द्र,
बानी अमृतध्वनि सुनाइबो करत है।
सुकवि सनेही वर्षगाँठ अगवानी हेत,
पन्द्रह अगस्त इतै आइबो करत है ॥६

तेरी भाव व्यंजना के व्यंजन विविध विधि,
मोद भरि बोई करै भारती भवानी में।
सेवकेन्द्र पानीदार छन्दन को पानी खरो,
दूसरो दिखान्यो नाहिं पानीदार सानी में।
गति में प्रगति यति नियति निरालो ठाठ,
अवघट घाट नाहीं कीरति प्रमानी में।
कवि सरोजन के तुमहीं सनेही साँचे,
बानी में अजस्र रस राखत रवानी मे ॥७

सेवक सदन, झाँसी-२।

□

कविराज सनेही

श्री प्रभात शुक्ल

है समता कर पाता न कोई, कभी यहाँ आये गये कितने ही।
हो ऋतुराज सके न, भले, कहने को बने ऋतुराज घने ही।
काव्य का मर्म न जान सके, यो असंख्य रहे मर्मज्ञ बने ही।
है अपनी उपमा स्वयमेव ही, मेरे गुरू कविराज सनेही ॥१

होता 'प्रभात' छिपा तम में, यों 'अनूप' हितैषी बने ही न होते।
वे 'प्रणयेश' 'ललाम' 'असीम' ही, क्या कितने कितने ही न होते।
होता सवैय्या सवैय्या न और, कवित्त के वर्ण घने ही न होते।
होती ब्रजी न खड़ी किसी भाँति भी, जो गुरुदेव सनेही न होते ॥२

पाया इष्टदेव निज ही में गुरुदेव ने था,
ढूंढ़ने गये थे कभी काबा में, न काशी में।
भाव भरने में सिद्धहस्त रहे नित्य, नये,
व्यञ्जन सजाये क्षेत्र-कल्पना उपासी में।
समता प्रभात क्या करेगा अब कोई भला,
उपमा मिलेगी भाषा ताजी में न बासी में।

चसका रहा था नव-रस का पच्छत्तर में,
रस बरसाया वर्ष वयस बयासी में।
परतन्त्रता का पाश काटने में सिद्धहस्त,
रुद्र के 'त्रिशूल' जैसा पवित्र ही होगा अब।
मृदुल प्रसून सा कठोर बज्र के समान,
देहधारियों में नर-छवि नहीं होगा अब।
तम-हर विमल प्रभात दे, जगाये ज्योति,
दिनमणि तुल्य, ऐसा रवि नहीं होगा अब।
यों तो है सुकवि कितने ही और होंगे किन्तु,
सुकवि सनेही सा सुकवि नहीं होगा अब।
भाषा का प्रपंच रंच भी न मनभाया उन्हें,
अपनी अलग एक शैली ही बना गये।
ब्रजी औ खडी के एक गति से 'सनेही' बन,
रस की सरस-रस-धार ही बहा गये।
फारसी की आरसी मे निज मुख-छवि देख,
हिन्दी में अनेक नये कौतुक दिखा गये।
हर के 'त्रिशूल' शूल-पाणि के समान नित्य,
'कवि' से प्रकट हो 'सुकवि' में समागये।

जुही गोशाला,
कानपुर।

□

'सनेही' सपूत से

श्री कुमुदेश वाजपेयी

वृष्टि सदारस-काव्य की की, प्रतिभा में रहे नित दिव्य अछूत से।
तोले तुले नहीं, वाग्मी वीर वसुन्धरा से नये होके अकूत से।
कोई विधा कविता की बची नहीं, लेखनी के धनी वाणी के पूत से।
यों तो यहाँ कवि कर्मी बड़े हुए, हैं कितने जो 'सनेही' सपूत से।

□

सनेही स्तवन

श्री सिद्धिनाथ मिश्र

शास्त्र की प्रसिद्ध रीतियों में सिद्ध प्रीतिकर,
सुकवि स्वरूप अंग अंग है सनेही का।
दंग दुश्मनों को तंग करता त्रिशूल बन,
जंग में बड़ा दबंग ढंग है सनेही का।
गंगाजल जैसा शब्द-शक्ति का प्रवाह और,
गंगाधर जैसा मुक्त संग है सनेही का।
कैसा रस भंग भरी भंगिमा उमंग वही,
काव्य की तरंग वही रंग है 'सनेही' का ॥१

'प्रेम की पचीसी' रची 'क्रन्दन कृषक' का भी,
काव्य है कि कसक भरी सी फरियाद है।
हरके त्रिशूल से त्रिशूल-हर कविवर,
हर सहृदै का हरा गहरा विषाद है।
देह रीति देह री कला की देहरी पे हुई,
निस्सन्देह सुकवि 'सनेही' साधुवाद है।
वाग-वेदिका पर स्वकीय कुसुमाञ्जलि से,
स्वतः सवैय्या-सा चढ़ा मयाप्रसाद है ॥२

रस-सिन्धु शुक्ति सावियुक्त मूर्त महाकवि,
भाव-महि महिम स्वभाव का महीप है।
करती प्रदक्षिणा सुदक्षिणार्थ शब्द-शक्ति,
गो-व्रत प्रवृत्त नव्य-युग का दिलीप है।
रुद्र का त्रिशूल है समूल वीरभद्र यह,
प्रतिपक्ष दल यदि दर्प से प्रतीप है।
पथ सैंकड़ों को दिखला के हो गया अशोक,
पुण्य-श्लोक सुकवि सनेही शुभ्र दीप है ॥३

हर्षनगर,
कानपुर

□

सुमन 'सनेही'

श्री आदित्यनारायण अग्निहोत्री

तृषित बिहाल बिललात देखि जग जन,
सरस सुधारै कौन सावन सनेही सों।
श्रमित थकित जीव विपति बिदारन कौं,
देत भक्ति सक्ति कौन राम की विदेही सों।
आपन लुटाय गेह औरहि निहाल करै।
ऐसो बरदानी कौन औढर सनेही सों।
धूरि ते उठावै, दुलरावै, बरसावै नेह,
सुमन सनेही कौन सुमन 'सनेही' सों।

प्रवक्ता, अंग्रेजी विभाग,
जयनारायण डिग्री कालेज, लखनऊ

□

श्री सनेही

हरिवल्लभ वाजपेयी 'हर्ष'

जाग्रति दे जनजीवन को, जनतंत्र की शक्ति बढ़ायी जिन्होंने।
क्रान्ति दिवापति की पहिली, किरणों पर भैरवी गायी जिन्होंने।
दे नवप्राण नये युग को, पथ में नयी ज्योति दिखायी जिन्होंने।
पूज्य सनेही वही कवि थे, जनभाषा की नींव जमायी जिन्होंने।१

पूज्य 'सनेही' सनेह भरे, रस की सरिता कहे जा सकते हैं।
और नवीनयुगी कवियों के, समाजपिता कहे जा सकते हैं।
आधुनिका जनवाणी के मण्डल, के सविता कहे जा सकते हैं।
केवल हैं कविमात्र नहीं यह तो कविता कहे जा सकते हैं।।२

कुरसवाँ, कानपुर

□

पूज्य बाबा सनेही जी

श्री महेन्द्र मोहन शुक्ल

पौत्र हूँ प्यारा सनेही त्रिशूल का सानी नहीं जिनका इसलाह में।
मोहन प्यारे पिता जी रहे थी विचित्र ही सूझ कवित्त की राह में।
जन्म से स्नान रहा करता रस-भाव भरी कविता के प्रवाह में।
चाह यही सुनूँ छन्द नये-नये और रहूँ कवियों की निगाह में।१

शुक्ल पक्ष श्रावण त्रयोदशी को जन्म लेके,
जिन्दगी सँवारी कवियों की कितने ही की।
"लिखना है लिखो पर चुस्त औ दुरुस्त लिखो"
और की न बात बात बाबा अपने ही की।
वैसा इसलाहक न देख पड़ता है अब,
शेष बची केवल कहानी कहने ही की।
सजित सुमन से अमृत-काव्य-घट ढारो,
आगई शताब्दि शुभ सुकवि सनेही की।२

था घमण्ड का लेश भी शेष नहीं पर गर्व गंठी न भूल से खोली।
लाख विपत्तियाँ घेरे रहीं उनमें भी सदा अलमस्तियाँ घोली।
छानना शाम सबेरे पसन्द अभाव में भी गटकी नहीं गोली।
उच्च स्वरों में पढ़ा जब छन्द तो जान पड़ा माँ सरस्वती बोली।३

छन्द प्रतिभा से पूर्ण पढ़ा अलमस्त ने तो
जहाँ कहीं रस लवलेश गूँजने लगा।
वाणी की प्रमाणी वाणी रसना से ऐसे कढ़ी,
काव्य शास्त्र मूर्त हो विशेष गूँजने लगा।
धरी जो सनेही ने है कवि सम्मेलन नींव,
घर, गाँव, नगर, प्रदेश गूँजने लगा।
मुखर हुआ जो स्वर प्रखर त्रिशूल का तो
प्राणवान जीवट से देश गूँजने लगा।४

२७०/२, शास्त्रीनगर,
कानपुर

□

भावाञ्जलि

डॉ० रामस्वरूप त्रिपाठी

सीख के कवित्व जो गये हैं 'सनेही' सों ,
कवियों में आज वही दिखते नराट हैं।
छल छन्द करके छलावा देने आये जो ,
देख के त्रिशूल हुए वहाँ से तिराट हैं।
गुरुता गुरु ज्ञान औ महान की महत्ता लखि ,
लगता यही है आप सक्षम विराट हैं।
रस बरसाया राष्ट्र-प्रेम उपजाया भूरि ,
ये रसिक समाज के सनेही सम्राट हैं ॥१

भूलि सकै जग कैसे 'सनेही', भले ही भुलाइबो भूलन भूलैं।
हैं कर लेत विपच्छ सुपच्छ में नाहिं त्रिशूल की हूलन हूलैं।
पौध लगाइ दई सुकवीन की, आज वही बहु फूलन फूलैं।
कान्ह कवित्त सवैया-सी राधिका, कान-कलिंदी के कूलन झूलैं ॥२

□

श्रीप्रवर सनेही

डॉ० विद्याशंकर दीक्षित

छन्दोमय काव्य के धुरीण समाराधक हे !
भवदीय कीर्ति के सुकेतन प्रखर हैं।
युगचेतना स्वराष्ट्रधर्म से समन्वित हो
अल्पप्राणस्वर महाप्राण से अमर हैं।
कर्ण में सुवर्ण कर्णपुर के सुकवि वृन्द
रस बरसाते आप ही के वंशधर हैं।
जिस वट के हैं, तने-शाखें पत्र-फल-फूल
वह मूल विटप सनेही श्रीप्रवर हैं।१

सुस्मृति शेष विशेष महाकवि ;
जो कभी भी कहीं हारा नहीं है।
साधना शुद्ध वशिष्ठ - सी है
उसकी, किसी छप के द्वारा नहीं है।

धारा अजस्र सनेही रसामृत है,
मृग वारि का मारा नहीं है।
है उन्हीं की शती का समारोह ये
वारिशों का बटवारा नहीं है ॥२

१०० एफ, किदवई नगर,
कानपुर

□

कवि सम्राट् सनेही के प्रति

श्री अनन्तराम मिश्र

साहित्य-वाटिका के गौरवशाली माली !
अलि-तुल्य पानरत नित कविता-विजया-मरन्द ;
रागात्मकता को ब्रजवाणी में व्यक्त किया—
हुंकार खड़ीबोली में की तुमने अमन्द ।

सुविशाला हृदय, अनुपम प्रबुद्ध, चैतन्य स्रोत,
वर्चस्वी-ओजस्वी, अजस्र रस-घनापन्न—
भाषाओं के, वादों के द्वन्द्वों से ऊपर—
हो कविर्मनीषी, तत्त्वदृष्टि से सुसम्पन्न ।

प्रिय थे यथार्थ, लेकिन आदर्शों में बिम्बित,
कल्पनाकान्त होकर भी तुमको रुचे तथ्य ।
अब तक जन-जन की जिह्वाओं पर नर्तित हैं—
सीधे-सादे शिल्पामोदित चन्दनी कथ्य ।

कसके 'त्रिशूल' बनकर विदेशियों के मन में,
राष्ट्रीय चेतना के दिगन्त-व्यापी निनाद ।
टसके न तनिक भी थे अपने रस के पथ से,
जीवन के अन्तिम क्षण तक सक्रिय-निष्प्रमाद ।

'कवि' 'सुकवि' सुसम्पादक, 'कवीन्द्र' के दिग्बोधक !
दासता-अमा से छीन लिया स्वातन्त्र्य-प्रात ।
कल्याणी वाणी करती रही सतर्क सदा—
अगणित कुरीति-कुधरों के शिर पर वज्रपात ।

थे 'लहरी लहरपुरी' 'अलमस्त'' सनेही' तुम—
साहित्य-'तरंगी' काव्य-भंग छाने अभंग—
दे 'हास्य' 'व्यंग्य' 'शृंगार' 'राष्ट्रमूलक' कृतित्व ;
उपनाम सभी कर दिये शुभार्थक काव्य-अंग।

विपदा-झंझाऐं लौट गयीं होकर निराश ;
पर झुका न पायीं तिल भर भी उन्नत ललाट ,
चलते-फिरते साहित्य-तीर्थ, साधना-पूत—
तुम देह-बिन्दु में सृष्टि-सिन्धु, लघु हो विराट्।

जिस नाम-रूप में जहाँ कहीं हो, बरसाओ—
सारस्वत पीढ़ी पर वरदानों के वसन्त।
इस जन्मशती के पावन अवसर पर, मैं भी—
कविराज सनेही। देता श्रद्धाञ्जलि 'अनन्त'।

केन ग्रोअर्स नेहरू डिग्री कॉलिज,
गोला गोकर्णनाथ-खीरी (उ० प्र०)

□

सनेही—काव्याञ्जलि

डॉ० गणेशदत्त सारस्वत

ख्याति प्राप्त कवि थे, समीक्षक प्रतिष्ठित थे,
भाषा-भाव-भूषण थे, श्रेष्ठ कलाकार थे।
काव्य-कला-कौशल तुम्हीं से अनुशासित था,
विविध विधा के उर सुकवि-दुलार थे।
देश के पुजारी भव्य भक्त भारतीयता के,
दासता-विनाशी कविता के कर्णधार थे।
वाणी के वरद पुत्र कल कल्पना से पूत,
बिन्दी दिए हिन्दी भारती के कण्ठहार थे।१

राष्ट्र के स्वरों में प्राण फूंकने का श्रेय श्रेष्ठ,
देन है तुम्हारी देवनागरी-विकार-क्षार।
वाणी जो विलास-हास-लास्य करती विमुग्ध,
हो गई 'त्रिशूल' फेंक रीतिकाल का शृंगार।

जोष महावीर सुन शीश पै कफन बाँध,
टोलियाँ अनेक मातृभूमि पै हुईं निसार।
सुकवि 'सनेही' कवि-पुंगव-विधाता धन्य,
वर्ण-अक्षतों से अभिवंदन अनेक बार।२

सारस्वत-सदन,
सिविल लाइन्स,
सीतापुर

□

कवि सम्राट् गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही'

श्री दीपनारायण शुक्ल 'दीप'

काव्य प्रतिभा की गरिमा की गहराई और,
तरल लुनाई कभी सिन्धु भी न पाया नाप।
कितने महान औ उदार थे 'सनेही' 'दीप',
ऊँची कल्पनाओं को न अन्तरिक्ष पाया माप।
व्यक्ति नहीं वह तो समष्टि के प्रतीक से थे,
उनके गुरुत्व-क्षमता की पड़ी ऐसी छाप।
ऐसे अलमस्त मनमौजी स्वाभिमानी थे वे,
उनके समान हुए वही अपने ही आप।

कवि-कुटीर
आर्यनगर,
कानपुर

□

गुरुदेव !

श्री मगन अवस्थी

मगन उदार थे 'सनेही' शम्भु के समान ,
कृपा कोर जिस शिष्य पर कर देते थे ।
अपनी उदात्त भावनाओं प्रतिभा के कण ,
शिष्य के हृदय मे भरपूर भर देते थे ।
तुक जोड़ना भी जिन्हें ठीक से न आता; नहीं ,
कवि बन जाता यदि कर धर देते थे ।
कोई प्रतिद्वन्दी सामने न टिक पाया कभी ,
बड़े से बड़े को 'गुरु' सर कर लेते थे ।१
शीश पर वरद् हस्त हंसवाहिनी का और ,
शिव जी भी जिनके सदैव अनुकूल थे ।
केवल न काव्य के, प्रणेता-कवि कोविदों के ,
प्रतिभा के पुञ्ज कभी करते न भूल थे ।
प्रतिद्वन्दियो को बात बात पर देते मात ,
बड़े-बड़े दिग्गजो को चटवाते धूल थे ।
सुकवि सनेही थे 'मगन' नेहियों के किन्तु ,
कुटिल कुचालियो के हेतु तो त्रिशूल थे ।

शान्ति कुटीर,
७६/४५ हालसी रोड,
कानपुर

□

वाणी के वरद पुत्र

कु० आसिया खातून

माँ वाणी के वरद पुत्र तुम मातृभूमि - अभिमान ।
व्यक्ति नहीं संस्थान स्वय मे मूर्तिमान आह्वान ।
वर्ण-साधना थिरक उठी अधरों पर बन मुसकान ।
'जय हिन्दी', 'जय देवनागरी', का गूँजा जयगान ।
'कवि' का तेज प्रकाश 'सुकवि' का लाया नवल विहान ।
मचल उठा तारुण्य - ज्वार साकार हुआ बलिदान ।

कीर्ति तुम्हारी भू से नभ तक परिव्याप्त अम्लान।
लोकोत्तर आनन्द - विधायिनि काव्य - कला द्युतिमान।
तुमने स्नेह 'सनेही' बनकर किया जगत को दान।
हो 'त्रिशूल' दासता मिटा दी, रखी सुरक्षित आन।
मस्ती के 'अलमस्त' आप पर्याय हुए छविमान।
वन्दन स्वीकारें कविता-कामिनि के कान्त महान।

प्राध्यापिका,
राजकीय बालिका इण्टर कालेज,
बिसवाँ (सीतापुर)

□

काव्य-गुरु 'सनेही'

श्री उपेन्द्र शास्त्री

बने वाणी के शुक्ल प्रसाद तभी तमाज्ञान महान डरा हुआ है।
बढ़ते दुख-द्वन्द संहारने को उपनाम 'त्रिशूल' धरा हुआ है।
जिसपे कृपा शुक्ल 'सनेही' ने की, उसका स्वर ही उभरा हुआ है।
कितने कवियों की प्रदीप्तियो मे उनका ही सनेह भरा हुआ है।

भरे भाषा में भाव सदैव नये कला को नये शोध अलंकृति दे दी।
रसभार से ढीले पड़े हुए तारो को राष्ट्र की नूतन झंकृति दे दी।
रसराज मे डूबे हुए कवि युगबाध की चेतन हुंकृति दे दी।
कितने कविता के सनेहियो को गुरु ! आपने काव्य की संस्कृति दे दी।

२/२५ ए (१) नवाबगंज,
कानपुर

□

सनेही, त्रिशूल, अलमस्त

पं० उमादत्त सारस्वत 'दत्त'

लेखक श्रेष्ठ कहूँ तुमको कवियों के सम्राट या हिन्दी-पुजारी।
पारखी काव्य-कला का कहूँ अथवा कलाकार कहूँ अधिकारी।
लाल थे माता सरस्वती के वह जाती सदा तुम पै बलिहारी।
थे दृढ़ खम्भ स्वतंत्रता के तुम सत्य ही सेवा-महाव्रत-धारी।१

जीवन में सदा जौहरी-तुल्य रहे कविता-मणि-राशियाँ तोलते।
वैद्य नये कवियों के बने उन्हे प्रेम से पालते, नाड़ी टटोलते।
भाषा-विकास के पक्ष मे लौह से, वज्र से भी दृढ़ होकर बोलते।
खोलते ग्रन्थियाँ थे उलझी कवि-कोविदो मे थे सुधा रस घोलते।२

पद्य का निश्चित रूप न था उसको तुमने हे व्रती! है सँभाला।
रत्न छिपे जो पडे हुए थे उनको बड़े यत्न से ढूँढ निकाला।
थी खड़ी बोली अभी शिशु रूप मे, रक्त से सींचा-सदा उसे पाला।
धन्य है ग्राम तुम्हारा हुआ कवि! देने लगा 'हड़हा' भी उजाला।३

हिन्दी-प्रचार ही में दिन-रात हे आर्य! जुटे रहे शक्ति लगाई।
श्वास में, जीवन में, रगो में, हर रोम मे, रक्त मे हिन्दी समाई।
श्री 'अलमस्त', 'सनेही', 'त्रिशूल' के रूप मे काव्य-त्रिवेणी बहाई।
सत्य ही थे तुम हिन्दी-तपी उसके ही लिए सदा धूनी रमाई।४

माधव-कवि-निवास,
बिसवाँ
(सीतापुर)
उ० प्र०

□

पूज्य सनेहो

वीरेश कात्यायन

मोक्ष सुरूप हो नित्य परोक्ष से
वे सहजोक्तियाँ बोल रहे हैं।
वर्ण सुवर्ण से दे कवि को—
कविता में सुधारस घोल रहे हैं।
स्नेह सनेही सनेहियों शिष्यो में—
है कितना वे टटोल रहे हैं।
यों तो हुए क्षर किन्तु वे विश्व में
अक्षर होकर डोल रहे हैं।

अक्षर-अक्षर काव्य विशेष की—
शेष अशेष विभा बिखरी है।
है कृति नित्य उपस्थित विश्व मे
सुस्मृति संस्कृति तीर तरी है।
योगी बने गुरु शिष्य के योग—
की शस्य प्रशस्य प्रभा प्रसरी है।
पूज्य सनेही शताब्दि उजागरी—
छंद विभावरी हो मुखरी है।

अनुरंजिका-आश्रम
४७/६० हटिया, नान बाजार,
कानपुर-२०८००१

□

आचार्य सनेही के प्रति

श्री गुरुप्रसाद रस्तोगी

हे सौम्य रूप, हे ज्योति धाम,
हे पुण्य श्लोक, हे पूर्ण काम,
हे प्रखर प्रभाकर मंजु नाम,
गुरुवर को मेरे शत प्रणाम ।।

तुम मस्त रहे अलमस्ती में,
तुम सिंह सदृश अजबस्ती में,
तुम विद्यु रेखा घन गर्जन में,
तुम थे त्रिशूल अरि मर्दन में,
तुम थे गणेश का कालपाश,
परतंत्र भाव का महानाश,
तुम मे था रूप विनायक का,
वाणी के विरुद विधायक का,

तुम तपः पूत थे अग्नि पुंज,
रस सिद्ध कवीश्वर दिव्य मंजु।
अत्यन्त सहज सुकुमार हृदय;
तुम मे करुणाशुचि स्नेह अभय,
तुम मानसरोवर के मराल,
अतिशय कोमल अतिशय कराल;
तुम राष्ट्र जननि के भाल बिंदु,
तुम काव्य सुधा के महा सिंधु,

तुम से गर्वोन्नत कवि समाज,
तुम शिव किरीट के चंद्र हास,
तुम गंगा का उद्दाम वेग,
शशि मुख पर छिटके धवल तेज,
तुम काव्य कलश के कंठ हार,
दीप शिखा निःसृत प्रकाश,
तुम मूक साधना शृंग शीर्ष,
तुम रस सागर गहन तीर्थ।

तुम कवि माला में मणि समान,
तुम स्नेह सुरभि के कण ललाम,
तुम महा सिंधु के ज्वार प्रबल,
तुम कवियों के आधार सबल,
तुम नील कंठ के कंठ नील,
तुम तीक्ष्ण गरल को गये लील,
तुम युग द्रष्टा युग चेता थे,
तुम उद्दालक, नचिकेता थे।

तुम उर्दू की सरल रवानी थे,
तुम अपनी आप कहानी थे,
तुम महाक्रान्ति के ज्ञानी थे,
तुम दीन कृषक की वाणी थे,
तुम विद्रोही भरी जवानी थे,
कपोत श्वेत कल्याणी थे।
तुम काल भाल पर कीर्ति बिंदु,
तुम विश्व पटल पर अखिल हिन्दु।

मलियानिल की मैं मृदु सुवास,
हूँ, गया प्रसाद गुरु का प्रसाद,
मैं गुरु उपवन का खिला सुमन।
श्री गुरु पद को शत बार नमन॥

☐
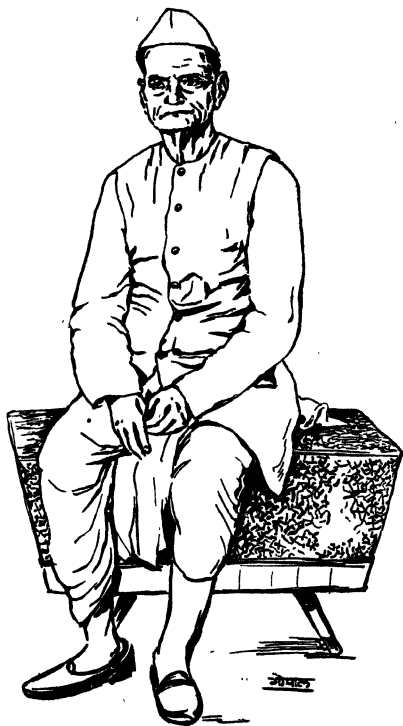
खण्ड : दो
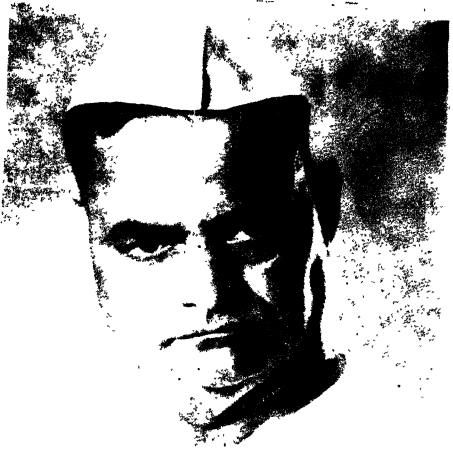
क्रान्ति और राग के महाकवि

श्री गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'

क्रान्ति और राग के महाकवि

सनेही जी

श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'

२१ मई, १९७२ के अखबार में खबर छपी कि हिन्दी के प्रसिद्ध कवि, घनाक्षरी, मनहरण और सवैये के अद्भुत कलाकार तथा कानपुर के बेताज के बादशाह पण्डित गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' का २० मई को कानपुर के अस्पताल में स्वर्गवास हो गया। आज 'आर्यावर्त' के दफ्तर को मैंने फोन किया कि कोई सनेही जी की मृत्यु के विषय में थोड़ी जानकारी दे। जिस पत्रकार ने फोन उठाया, उसने शायद मुझे डाँटने के लिए कहा कि "साहित्यकों के लिए सनेही जी की मृत्यु हुई है, अखबारवालों के लिए नहीं।" यानी सनेही जी कौन थे, कब मरे, इसकी जानकारी अखबार वाले क्यों रखें? शायद बहुत दिन जीवित रहने पर भी आदमी मृतकतुल्य हो जाता है और तब जब वह सचमुच मरता है, लोग उसकी मृत्यु की नोटिस नहीं लेते। लेकिन मेरी मान्यता है कि सनेही जी के मरने से बहुत बड़ा साहित्यकार हमारे बीच से उठ गया है। आज की डायरी में मैं उन्हें अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित कर रहा हूँ।

जिस समाज में हम लोग जीते हैं, उसके प्रोप्राइटर, राजनीतिज्ञ और मैनेजर अफसर हैं। *मनीषी उस समाज का सहज मजदूर है। और अगर वह लेखक है, तो ऐसा* अभागा मजदूर है कि अपने पेशे से उसकी रोजी नहीं चलती, उसे कोई और काम भी करना पड़ता है।

सनेही जी भी १९२० ई० के पूर्व तक मुदर्रिस थे। असहयोग आन्दोलन के समय उन्होंने मुदर्रिसी छोड़ दी थी। उसके बाद से उनकी रोजी कैसे चलती रही, इस बारे में हमें निश्चित ज्ञान नहीं है, यद्यपि वे अभी-अभी स्वर्ग सिधारे हैं। उन्होंने अपना सारा जीवन साहित्य-सेवा में लगाया और यह कोई छोटा जीवन नहीं था। उनका जन्म अगस्त, १८८३ ई० में हुआ था और सन् १९७२ ई० के मई मास में उन्होंने शरीर छोड़ा है यानी उन्होंने ८९ वर्ष की आयु पायी, जो किसी भी भारतीय के लिए लम्बी आयु मानी जायगी। आरम्भ के १९ वर्ष को हम छोड़ भी दें, तो रेकार्ड यह बनता है कि साहित्य-सेवा का कार्य उन्होंने सत्तर वर्ष तक किया। इस दृष्टि से भी सनेही जी भारतीय साहित्यकारों के बीच विलक्षण दीखते हैं। क्योंकि साहित्यिकों को सत्तर वर्ष की आयु भी मुश्किल से मिलती है।

किन्तु लम्बी आयु पाकर भी वे पुस्तकें अधिक नहीं बना सके। पं० शम्भुरत्न त्रिपाठी ने उनकी नौ पुस्तकों का उल्लेख किया है, जिनमें से मैंने केवल तीन किताबें—प्रेम पच्चीसी, कृषक-क्रन्दन और त्रिशूल-तरंग ही पढ़ी हैं। किताबें तैयार करने की अपेक्षा

कवि तैयार करने की ओर उनका अधिक ध्यान था। किताबें तो उनके शिष्यों ने जबरदस्ती तैयार कर दीं। सनेही जी अपने पद्यों की मंजूषा बनाने को जरा भी उत्सुक नहीं थे।

वे उस समय जन्मे थे, जब रीति की परम्परा पूरे जोर पर थी। कविता ब्रजभाषा से निकलकर खड़ीबोली में आ रही थी, मगर जो कवि खड़ीबोली की ओर प्रवृत्त होते थे, उन्हें भी अपनी खड़ीबोली की कविता पसन्द नहीं आती थी। सनेही जी को भी इस दौर से गुजरना पड़ा था। काफी दिनों तक अपनी काव्य-साधना वे ब्रजभाषा मे ही तैयार करते रहे और जब उस वाटिका से वे निकले, घनाक्षरी और सवैये का संबल उन्होंने अपने साथ ले लिया। इन दो छन्दों का प्रयोग खड़ी बोली में उन्होंने इस सफाई और सरसता के साथ किया कि सभी साहित्य-प्रेमी उनकी ओर आकृष्ट हो गये और साहित्य में उनका नाम अमर हो गया। मेरा पक्का विचार है कि जो सवैये या कवित्त उन्होंने खड़ीबोली में लिखे, उन्हीं पर उनकी कीर्ति ठहरी रहेगी।

करने चले तंग पतंग जला कर
मिट्टी मे मिट्टी मिला चुका हूँ।
तम-तोम का काम तमाम किया,
दुनिया को प्रकाश में ला चुका हूँ।
नहीं चाह 'सनेही' सनेह की और,
सनेह मे जी मैं जला चुका हूँ।
बुझने का मुझे कुछ दुःख नही,
पथ सैंकड़ों को दिखला चुका हूँ।

हिन्दी वालों ने इस छन्द को यो ही सिर पर नही उठा रखा है। इस छन्द मे रस है, विदग्धता है और है वह सफाई और सीधी चोट करने की शक्ति, जो केवल आचार्यों में होती है, महाकवियों में होती है।

सनेही जी ने अपनी राष्ट्रीय कविताएँ 'त्रिशूल' नाम से लिखी थी। कहते हैं, इसका कारण यह था कि 'सनेही' सरकारी नौकरी में थे और सरकार की दृष्टि से बचने को ही राष्ट्रीय कविताएँ वे 'त्रिशूल' नाम से लिखते थे। कोई दस साल तक यह छद्मनाम उनका सहायक भी हुआ, क्योंकि दस वर्ष तक कोई यह जान नहीं सका कि 'सनेही' और 'त्रिशूल' एक ही व्यक्ति के दो नाम हैं। यह भी था कि 'त्रिशूल' नाम से वे मुख्यतः उर्दू छन्द ही लिखते थे। उस समय लोग का ख़याल था कि सनेही जी की उर्दू रचनाएँ ब्रजनारायण चकबस्त की रचनाओं के टक्कर की होती हैं। उनकी उर्दू की कविताएँ कलामे-त्रिशूल के नाम से निकली थी।

सनेही जी ने कुछ साप्ताहिक पत्रों के लिए जो मोटो लिखे थे, वे भी हिन्दी में बहुत प्रसिद्ध हैं।

जो भरा नहीं है भावों से,
बहती जिसमें रसधार नहीं।
वह हृदय नहीं है पत्थर है,
जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं।

यह मोटो 'स्वदेश' के मुखपृष्ठ पर छपा करता था और 'वर्तमान' में छपने वाला यह मोटो भी सनेही जी का ही रचा हुआ था—

शानदार था भूत, भविष्यत् भी महान है;
अगर सँभालें उसे आप, जो वर्तमान है।

स्वर्गीय शिशुपाल सिंह जी 'शिशु' ने लिखा है कि प्रताप में छपने वाला यह भारत-विदित मोटो भी सनेही जी का रचा हुआ है—

अंधकार है वहाँ, जहाँ आदित्य नहीं है:
है वह मुर्दा देश, जहाँ साहित्य नहीं है।

लेकिन यह पद शायद देवीप्रसाद जी 'पूर्ण' का रचा हुआ है।

जब हम लोगो ने साहित्य की दुनिया मे आँख खोली थी, सनेही जी की वह कविता हिन्दी में बहुत प्रसिद्ध थी, जिसका आरम्भ इन पंक्तियो से होता है—

तू है गगन विस्तीर्ण, तो मैं एक तारा क्षुद्र हूँ।
तू है महासागर अगम, मैं एक धारा क्षुद्र हूँ।
तू है महानदतुल्य, तो मैं एक बूँद समान हूँ।
तू है मनोहर गीत, तो मैं एक उसकी तान हूँ।

सनेही जी ने सन् १९२८ ई० में 'सुकवि' नामक मासिक पत्र निकाला था; जो सन् १९५१ ई० तक बराबर निकलता रहा। उसमे कविता के विषय में निबंध होते थे और स्फुट कविताएँ होती थीं। किन्तु सुकवि की सबसे बडी विशेषता यह थी उसमे समस्यापूर्ति के सौ-पचास छन्द जरूर छपते थे। सन् १९२९ या ३० ई० में 'सुकवि' में मेरी भी एक समस्यापूर्ति छपी थी।

कवि तैयार करने के सनेही जी के साधन तीन थे। जो कवि उनके सम्पर्क में थे, उनकी कविताओ का वे संशोधन करते थे। जो कवि दूर थे, सनेही जी उनका भी मार्ग-दर्शन करते थे; यानी उनकी कविताओं को सुधार-सँवार कर उन्हें 'सुकवि' में छापा करते थे। तीसरा उपाय यह था कानपुर में कवि गोष्ठियाँ वे बराबर करते रहते थे और युवकों को प्रोत्साहन देकर उन्हें काव्य के मार्ग पर आगे बढ़ाते थे। यही कारण हुआ कि सनेही जी का ध्यान अपने काव्य-संग्रहों की संख्या बढ़ाने की ओर नहीं गया। उनके जितने शिष्य हुए, वे ही उनकी रचनाओ के प्रतीक थे। संग्रहों के भीतर से नहीं जीकर सनेही जी ने अपने शिष्यों के भीतर से जीने का रास्ता पसन्द किया था। कविता का जो वातावरण

उन्होंने कानपुर में तैयार किया, वह अब तक कायम है, उन्होंने जो परम्परा बनायी थी, वह चल रही है।

अभी इसी वर्ष १० जनवरी को मैं कानपुर में था। वहाँ सवैया लिखने वाले (यानी सनेही जी की परम्परा के) अनेक कवि हैं। उनमें से सब के सब अच्छी कविता करते हैं। किन्तु कुछ लोग विनम्रता के कारण अपने को कवि कहना नहीं चाहते। उस दिन सवैया-मंडल वाले मुझे अपने बीच ले गये और कोई दो घंटे तक कवित्त और सवैये मुझे सुनाते रहे। सनेही जी तो उस गोष्ठी में नहीं थे, किन्तु लगता था कि गोष्ठी में वे विद्यमान हैं और उन्हीं की कृतियाँ हम सुन रहे हैं।

सनेही जी इधर कुछ वर्षों से बीमार चल रहे थे। सरकार ने उनके लिए सारी व्यवस्था अस्पताल में कर दी थी और वे कई वर्षों से अस्पताल में ही थे। मृत्यु के साथ उन्होंने घनघोर संघर्ष किया। ऐसा कई बार हुआ कि वे जाने-जाने को हो गये, लेकिन मृत्यु को दबा कर वे फिर ऊपर आ गये। सनेही जी की इसी जिजीविषा पर श्री हरि-नन्दन जी 'हर्ष' ने उस दिन एक मार्मिक सवैया सुनाया था, जो इस प्रकार है—

छिड़ा दैव के दंभ में और कवित्व
के ओज में अद्भुत युद्ध-सा है।
पराभूत-सा हो भवितव्यता का
कुमन्तव्य हुआ अवरुद्ध-सा है।
हुए स्वस्थ यों पूज्य 'सनेही' मनो
कढ़ा अग्नि से कंचन शुद्ध-सा है।
कला मृत्यु की फीकी पड़ी हुई है,
महाकाल का स्पन्दन रुद्ध-सा है।

उस दिन कुमुदेश वाजपेयी, हृदयेश, तरल और प्रभात ने भी बड़े अच्छे सवैये सुनाये थे।

सन् १९६२ ई० में जब मैं भवानीप्रसाद मिश्र के अभिनन्दन के सिलसिले में कानपुर गया था ठीक उसी दिन कानपुर के साहित्यकार सनेही जी का जन्म-दिवस मना रहे थे। उस समारोह में मैं भी गया था और सनेही जी को मैंने अपना भक्तिपूर्ण अभि-नन्दन अर्पित किया था।

१९६९ ई० में मैं जब कानपुर गया था, तब ८ दिसम्बर को अस्पताल जाकर सनेही जी के मैंने दर्शन किये थे। मैंने पूछा, "अब कैसे हैं?" वे बोले, "क्या बताऊँ? सरकार ने सारा बन्दोबस्त कर दिया है। बस, पड़ा हुआ हूँ।"

साहित्य की चर्चा छेड़ने पर उन्होंने कहा, "मैथिलीशरण और रामनरेश त्रिपाठी कवि नहीं थे केवल पद्यकार थे। छन्दों के भीतर शब्दों को बिठाकर पद्य तैयार कर लेते थे और कुछ नहीं।"

मुझे बड़ा ही विस्मय हुआ कि जिस कवि को हम मैथिलीशरण जी और रामनरेश जी का समानधर्मा समझते हैं, वह उन दोनों को कवि मानने से ही इनकार कर रहा है।

जब तक सनेही जी जीवित थे, हमें यह सोच कर सुख होता था कि उन दीपकों में से एक अभी जल रहा है, जिन्हें रोशनी लगभग भारतेन्दु-युग में मिली थी। लेकिन अब वह दीपक भी बुझ गया।

दागे फिराके-सोहबते-शब की जली हुई।
एक शम्मा रह गई थी, सो वो भी खामोश है।

सनेही जी ने मनीषी धर्म का पालन किया क्योंकि वे सरकारी नौकरी में नहीं थे, न किसी के आश्रित या अधीन थे। स्थायी आय के बिना उनके जीवन का निर्वाह कैसे हुआ; यह सोच कर आश्चर्य होता है। आजादी की लड़ाई के समय उन्होंने डटकर राष्ट्रीय कविताएँ लिखीं। सारा जीवन उन्होंने साहित्य-सेवा में लगा दिया और उसके लिए किसी शुल्क की माँग नहीं की। उन्होंने बुझते हुए दीपक के लिए नहीं, शायद अपने ही लिए लिखा था—

परवा न हवा की करे कुछ भी, भिड़ें
आ के जो कीट-पतंग जलाए।
जगती का अंधेरा मिटा कर आँखों में
आँखों की पुतली हो के समाए।
निज ज्योति से दे नव ज्योति जहान को,
अंत मे ज्योति में ज्योति मिलाए।
जलना हो जिसे, वो जले मुझ-सा,
बुझना हो जिसे, मुझ-सा बुझ जाए।

सनेही जी के समान जलना और उनकी तरह बुझना आसान नहीं है। ऐसा जलना और ऐसा बुझना किसी तपस्वी को ही नसीब होता है। हम मनीषियों ने तपस्या का जीवन छोड़ दिया, इसीलिए समाज हमारे हाथ से निकल कर राजनीतिज्ञों के हाथ में चला गया है।

(डायरी से)

□

श्रद्धाञ्जलि

डॉ० रामकुमार वर्मा

आधुनिक हिन्दी काव्य को भावमयी भंगिमाओं से भूषित करने वाले शिल्पी श्री सनेही जी साहित्य के इतिहास में सर्वव ही स्मरण किये जावेंगे। आज से लगभग ६२ वर्ष पहले मेरी स्मृति में उनका नाम अंकित हो गया था, जब कानपुर के श्री वेणीमाधव खन्ना ने राष्ट्रीय काव्य-लेखन में पुरस्कारों की घोषणा की थी और मेरी कविता के निर्णायक के रूप में श्री सनेही जी का नाम ज्ञापित हुआ था। उसी समय कानपुर के दैनिक 'प्रताप' मे उनके उपनाम 'त्रिशूल' से कविताएँ पढ़ने का सुयोग मुझे प्राप्त हुआ था।

सन् १९२५ में विश्वविद्यालय में पढ़ने के लिए प्रयाग आने का सौभाग्य मुझे मिला था। उस समय कवि-सम्मेलनों के आयोजन वसन्तागम की भाँति स्थान-स्थान पर बँधे जाते थे और नये-नये कवियों की टोलियाँ भ्रमरों की भाँति अपने काव्य का गुंजन करने के लिए एकत्र हो जाती थी। ऐसे स्थानों में कानपुर का नाम प्रमुख था और उस स्थान पर कवि-सम्मेलन का आयोजन सनेही जी के हाथो में ही रहता था। ऐसे ही एक कवि-सम्मेलन में सनेही जी के दर्शन हुए और प्रथम दर्शन मे ही मैं उनके साहित्यिक व्यक्तित्व से प्रभावित हुआ था।

ब्रजभाषा में कवित्त और सवैये की जो काव्य-शैली थी उसे उन्होंने नये ढंग से खड़ीबोली में सँवारा। समस्या-पूर्ति को आधार मान कर उन्होंने नये-नये भावों को आधुनिकता की परिधि में बाँध कर जैसे कवित्त और सवैये को एक नया संस्कार दिया। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने 'प्यारे हरिचन्द की कहानी रह जायगी' नाम का जो कवित्त लिखा था उसी को समस्या बना कर सनेही जी ने एक नये परिवेश में समस्या-पूर्ति की—

मानी मन मानता नहीं है, मुझे रोको मत,
मातृभूमि बानी बिना मानी रह जायगी।
जीवन के युद्ध में है जाने का सुयोग फिर,
जोश ही रहेगा, न जवानी रह जायगी।
एक दिन जानी जान, जानी यह जानी बात,
कुछ तो जहान में निशानी रह जायगी।
धीरता की धाक बँध जायेगी विरोधियों में,
बीरता की विश्व में कहानी रह जायगी।

सनेही जी ने काव्य-क्षेत्र में एक क्रान्ति उपस्थित कर दी थी। अनेक नामी और अनामी कवि उनके निर्देशन में माँ भारती के मन्दिर में अपनी काव्याञ्जलियाँ समर्पित करते रहे।

अभी हाल ही में साहित्य-संस्थान के आयोजन में हम लोगों ने सनेही जी के जन्म-स्थान हड़हा की यात्रा की थी। बड़ी श्रद्धा से हमने वहाँ की पवित्र रज अपने मस्तक पर चढ़ायी। वह भूमि निरन्तर कवियों को प्रेरणा प्रदान करती रहेगी, ऐसा मेरा विश्वास है। उनकी स्मृति में मेरी श्रद्धाञ्जलि समर्पित है।

साकेत,
४, प्रयाग स्ट्रीट,
इलाहाबाद—२११००२

□

जीवन्त सुकवि सनेही

डॉ० भगीरथ मिश्र

पण्डित गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' एक अद्भुत प्रतिभा के व्यक्ति थे। वे दो उपनामों से कविता करते थे—एक 'त्रिशूल' रूप में और दूसरे 'सनेही' रूप में। दोनों उपनामों की सार्थकता थी। वह राष्ट्रीय आन्दोलन का युग था, अतः 'त्रिशूल' नाम से तो वे राष्ट्रीय कविताओं की रचना करते थे और अन्य सूक्ति-नीति-प्रेम और व्यंग्य की रचनायें वे 'सनेही' उपनाम से करते थे। उनकी दूसरी प्रकार की रचनाएँ अधिक मार्मिक होती रहीं; अतः वे सनेही नाम से ही अधिक विख्यात हुए।

सनेही जी का समय वास्तव में संघर्षों और चुनौतियों का युग था। एक ओर तो राष्ट्रीय संघर्ष था ही और उसमें योगदान उस समय के लगभग सभी कवियों ने किया। दूसरी ओर यह समय द्विवेदी युग और प्रसाद-युग अथवा छायावादी युग के बीच का समय था, अतः उस समय खड़ीबोली की रचनाओं को प्रतिष्ठित करने में भी संघर्ष चल रहा था। उनको एक ओर तो परम्परा से चलती आ रही मँजी हुई ब्रजभाषा की रचनाओं का सामना करना पड़ रहा था और दूसरी ओर उर्दू शायरी की मुहावरेदानी उनको चुनौती दे रही थी। पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी ने तो राष्ट्रीय और सामाजिक धरातल पर खड़ीबोली में सामयिक विषयों पर रचना करने की प्रेरणा दी। पर ऐसी रचनाओं में रस लेने वाले और उधर प्रवृत्ति होने वाले कम ही लोग थे। समस्या-पूर्तियों और कवि-सम्मेलनों की धूम थी जिनमे ब्रजभाषा की ललित रचनाएँ जमती थी या फिर उर्दू मुशायरों का बोलबाला था। आगे छायावाद ने जिस नयी धारा का प्रवर्तन किया, वह रोमांटिक या स्वच्छन्दतावादी धारा थी जिसका सनेही जी के युग मे विरोध हो रहा था। प्रसाद और निराला के मुक्त छन्दों को लोग रबड़-छन्द और केंचुआ-छन्द कहकर खिल्ली उड़ा रहे थे। अतः उसके पाँव जम नही पाये थे। फिर परम्परावादी लोग उसमे भाषा-भाव और छन्द-सम्बन्धी दोष भी निकाल रहे थे।

उस संक्रमण काल में सनेही जी ने अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने एक ओर तो ब्रजभाषा-रचनाओं का जबाब उन्हीं के क्षेत्र में, उन्हीं विषयों पर और उन्हीं दोहा, सवैया, घनाक्षरी छन्दों में खड़ीबोली की रचनाएँ प्रस्तुत करके दिया और दूसरी ओर अपने छन्दों में उर्दू शायरी की मुहावरेदानी और नाज़ुक खयाली का समावेश करके खड़ीबोली के छन्दों-द्वारा सूक्ष्म सौन्दर्य चित्रण प्रस्तुत किया। बारीक कल्पना बिन्दुओं को तराशी हुई

परिमार्जित खड़ीबोली मे प्रस्तुत करके उन्होंने परम्परागत छन्दो को एक नया लालित्य प्रदान किया। इन दोनो प्रकार के साहित्य-रचना के कार्यों में 'सनेही' जी का नेतृत्व और मार्ग-दर्शन अद्भुत था। इन्होंने अपनी शिष्य मण्डली और मित्र मण्डली की गोष्ठियों में भाषा के मुहावरों और कल्पना की बारीकियो को निखारने के लिए बड़ा सूक्ष्म मार्ग-दर्शन किया जिसका परिणाम यह हुआ कि कानपुर, उन्नाव, लखनऊ आदि नगरों से अनेक प्रतिभावान् कवि सामने आये और एक 'सनेही मंडल' के रूप में प्रखर कवि-समुदाय तैयार हो गया। अनूप शर्मा, जगदम्बा प्रसाद हितैषी, नरवाप्रसाद मिलिंद, हरिजू, प्रणयेश, करुणेश, निशंक, आदि अनेक कवियो ने सनेही जी की काव्य-परम्परा में योगदान किया और खड़ीबोली कविता का एक नया प्रवाह फूट निकला। सनेही जी ने अपने मंडल के कवियो को प्रोत्साहन देने के लिए तथा सामान्यतया लोगों की कविता मे रुचि उत्पन्न करने एवं जन सामान्य के काव्य-संस्कार बनाने के लिए 'सुकवि' नामक कविता-पत्र का प्रकाशन किया, जो बड़ी धूमधाम से चला। उसमे समस्यापूर्तियाँ भी छपती थीं तथा स्वतंत्र रचनाएँ भी। उसका इतना प्रचार हुआ कि गाँव-गाँव मे उसके ग्राहक बने और ग्रामीण लोग भी कवित्त-सवैया छन्दों को याद करके और अपनी गोष्ठियो में सुनाकर उसका रस लेने लगे। 'सुकवि' ने एक वातावरण तो बनाया। पर उसका दायरा सीमित ही रहा। किसी दिग्गज साहित्यकार ने या महारथी समीक्षक ने उसका प्रोत्साहन संरक्षण नही किया, अतः वह अपनी सीमा से बाहर अधिक प्रचारित नहीं हो पाया। इसके साथ ही आगे छायावादी रचनाओ का जब अधिक जोर बढ़ा, तब वह और भी संकुचित हो गया तथा सनेही जी के उपरान्त बन्द भी हो गया। यह एक प्रसन्नता की बात है कि पण्डित श्रीनारायण चतुर्वेदी के संरक्षण मे, श्री लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक' ने अपने संपादकत्व द्वारा उसे पुनर्जन्म प्रदान किया और पिछले कई वर्षों से वह 'सुकवि-विनोद' नाम से उस परम्परा के तथा नये, काव्य को प्रकाशित कर रहा है।

सनेही जी ने उक्त प्रकार के काव्य-प्रवाह का केवल मार्गदर्शन ही नही किया स्वयं भी बड़ी प्रौढ़ रचनाओं के द्वारा उसे प्रोत्साहित और पोषित किया। सनेही जी के प्रत्येक छन्द की अपनी विशेषता होती थी और उसमे किसी न किसी प्रकार की नवीन अभिव्यंजना रहती थी। उसमे एक तो कोई नया विचार या भाव होता था। दूसरे उस विचार और भाव को साकार बनाने के लिए उनकी कल्पना शक्ति नये-नये बिम्बों की की सर्जना करती थी। ये बिम्ब कभी-कभी तो पूरे छन्द या पूरी एक पंक्ति को जगमगाते रहते थे और कभी-कभी या प्रायः किसी चुटीले मुहावरे को आलोकित करते थे जिसके माध्यम से मुहावरे में नये-नये अर्थों की व्यंजना लुकाछिपी खेलती रहती थी। उनके छन्दों की एक भी पंक्ति और पंक्ति का एक भी पद थोथा, खोखला अथवा भर्ती का नहीं होता था कि जिसे आप आसानी से हटा सकें। इस प्रकार सनेही जी की रचना आद्यन्त रसभरी रहती थी जिसकी सबसे बड़ी विशेषता स्मरणीयता थी। आप उस पंक्ति को याद

करके और उसे बार-बार गुनगुनाकर उसका रसास्वादन करते रह सकते थे और उसका रस फिर भी भरा ही रहता था। उसे हम वास्तविक कविता कह सकते हैं। इसके प्रमाण में हम उनकी अति प्रसिद्ध रचनाओं को उद्‌धृत न कर एक देशप्रेम और स्वतंत्रता संग्राम के लिए आवाहन और ललकार भरे छन्द को यहाँ दे रहे हैं।

जीवन समर में अमर वर वें अमर
जीत ले विरोधियों को विश्व के विजेता ! जा।
लाख भय भ्रान्ति हो अशान्ति का न लेना नाम,
परम प्रशान्त चित्त होके शान्तिचेता ! जा।
वायु प्रतिकूल है, हुआ करे न चिन्ता कर,
नाव नीति की तू निज बल पर खेता जा।
साथी वही जिसने कि हाथी के लगाया हाथ,
एक बस साहस 'सनेही' साथ लेता जा।

एक इसी छन्द से ऊपर की विशेषताएँ स्पष्ट हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त उनके प्रत्येक शब्द में अर्थ को साकार बनाने वाली अद्‌भुत गति और भाव को प्रस्फुरित करने वाला ओज रहता है। जो सनेही जी के कवि व्यक्तित्व को उजागर करता रहता है। इस प्रकार सनेही जी अपने छन्दों मे अमर हैं। सारा काव्य-प्रेमी संसार उनके छन्दों का सनेही है।

एच-६, पद्‌माकर नगर,
मकरोनिया कैम्प,
सागर—(म०प्र०)

□

जलना हो जिसे वो जले मुझसा......

डॉ० रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

अपने जीवन मे पहला कवि-सम्मेलन मैंने सन् १६३० में लखनऊ के क्रिश्चियन कालेज के सभाकक्ष मे सुना था जो आचार्य सनेही की अध्यक्षता में आयोजित था। एक अर्धशती से भी अधिक के बाद जब उसकी याद करता हूँ तो पूरा जीवन आँखों के सामने घूम जाता है। दिसम्बर की सर्दीली रात में बाहर से आये हुए कवि अपना-अपना कम्बल लिये मंच पर आसीन थे। अधिकांश कवियों को रात को ही कानपुर, सीतापुर, रायबरेली, उन्नाव, बाराबंकी लौट जाना था। निराला जी उन दिनों लखनऊ में ही थे और वह भी मंचासीन थे। सनेही जी के प्रति उनके मन मे अगाध आदर था। सनेही की 'शैव्या विलाप' कविता उन्हें पूरी याद थी जिसे वे भाषा की सफाई और करुण संवेदना की चर्चा चलने पर सुनाया करते थे। सनेही की अनेक अन्य कविताओं के प्रचुर उद्धरण वे अपने लेखों में देते रहते थे। दूर से ही हाथ जोड़कर "सनेही जी प्रणाम करता हूँ" कहते हुए उन्हें शीश नवाते थे और सनेही जी आह्लादपूर्वक आगे बढ़कर उन्हें हृदय से लगा लेते थे।

मैं बचपन से ही 'सुकवि' का पाठक था। उस युग के दिग्गजों में सनेही जी का नाम गूँजता था। उनके दर्शन मुझे पहली बार हो रहे थे। ओजपूर्ण भाव-भंगिमाओं से सजीव उनका काव्य-पाठ पहली बार मैं सुन रहा था। उन दिनों 'माइक' का चलन नहीं था। कड़कती हुई वीरोल्लासपूर्ण वाणी उनके राष्ट्रीय भावोद्दीप्त कथ्य को उजागर कर रही थी। सन् १६३० का वर्ष गांधी जी के नमक सत्याग्रह और देशव्यापी क्रूर सरकारी दमन का बलिदानी वर्ष था। सनेही जी के ठीक पहले निराला जी 'अभी न होगा मेरा अन्त' और 'जागो फिर एक बार' सुनाकर वातावरण को दहका चुके थे। सनेही जी वीर रस के साकार रूप बने अपने छन्दों द्वारा बिजली का संचार कर रहे थे। दोनों कवि-कुल-गुरु थे।

एक बार कहीं कविगोष्ठी में किसी साहित्यकार ने कहा—सनेही जी! आपने कोई महाकाव्य क्यों नहीं लिखा?

सनेही जी ने आक्रोशरंजित स्वर में कहा—"कहाँ हैं अनूप, कहाँ हैं हितैषी? दोनों को बुलाओ फौरन"।

गुरु की पुकार सुनते ही उस युग के वे दोनों प्रख्यात कवि सामने खड़े हो गये। दोनों उनके अग्रणी शिष्य थे। सनेही जी ने प्रश्नकर्ता की ओर दृष्टि डालते हुए सगर्व कहा—"मैंने ये दो महाकाव्य लिखे हैं।"

प्रश्नकर्ता निरुत्तर हो गये ।

सनेही जी सच्चे अर्थ मे जनकवि थे । वे काव्य की उस रसमयी, आनन्ददायिनी लोक-प्राण-धारा के जीवन्त प्रतीक थे जो आज भी हिन्दी भाषी क्षेत्रों में गाँव-गाँव, कस्बे-कस्बे में बह रही है । उन्होंने आजीवन न जाने कितनों को काव्य की प्रेरणा और अभिव्यक्ति की संस्कारशीलता प्रदान की । न जाने कितने कवि बनाये, जाने कितनों के निर्माण में योगदान दिया । एक युग तक सुकवि के सम्पादन द्वारा कविता की जनरुचि को जगाने और परिष्कृत करने का उन्होने अथक प्रयास किया । छायावाद के समानान्तर वे रीतिकालीन काव्य-परम्परा को तो जिलाये ही रहे, देशभक्ति और राष्ट्रीय चेतना से प्रेरित, प्रसूत, अनुप्राणित कविताओं के द्वारा वे नवयुग का द्वार भी खोलते रहे । त्रिशूल जैसी बेधक उनकी अनेक कविताएँ उनके इस पैने उपनाम को सार्थक करती हैं । हिन्दी कविता मे ओज और माधुर्य की जीती-जागती कीर्तिमयी कड़ी बन कर वे साहित्य के इतिहास में अमर हैं । उन्होंने युग बनाये हैं—युग चेतनाएँ रची हैं । गणेशशंकर विद्यार्थी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' और श्री कृष्णदत्त पालीवाल जैसे देशभक्तो ने उनकी रचनाओं से आत्मदान की प्रेरक स्फूर्ति पायी है ।

छायावादी अस्पष्टता, अधिकाधिक छीजती जाने वाली अनुभूति के स्थान पर कल्पनाओं की आकाशी उड़ान और अप्सरा लोक के अशरीरी बिम्बों की योजना के उस युग में सीधी जाकर हृदय को बेधने और रसाभिभूत कर देने वाली भावाभिव्यक्ति के कवि के लिए सनेही जी के पास केवल एक ही प्रशंसात्मक वाक्य था । एक बार मैं पूछ बैठा—पंडित जी ! प्रदीप (प्रसिद्ध चलचित्र गीतकार और उन दिनों के उदीयमान गायक कवि) कैसा लिखते हैं ?"

सनेही जी अपना गरिमा मंडित शीश हिलाकर बोले—"साफ लिखते हैं ।"

मुझे याद नही आता कि किसी भी होनहार कवि के लिए उनके पास इससे बड़ा प्रमाण पत्र उन दिनों कोई था । छायावादी अरूपाभिव्यंजन के उस शर्मीली कुहेलिका भरे युग में साफ लिखना एक उपलब्धि थी—यह पचास वर्ष बाद भी मुझे ज्यों का त्यों याद आ रहा है । यही उनका आशीर्वाद था जो मेरी पीढ़ी के किशोर कवियों को उन दिनों उनसे जब तब मिल जाया करता था ।

सनेही जी आचार्य थे, उस्ताद थे, एक मंडलीक काव्याग्रणी थे । भाषा को तराशने, छन्दों को सँवारने और निखारने की, कथ्य की शक्ति को इस प्रकार बढ़ाकर उसे अधिक से अधिक आघातकारी बनाते रहने की उनकी कवि-सर्जक प्रक्रिया अन्त तक चलती रही । 'सुकवि' का पूरा अंक उनकी संशोधन-पटुता से भरा रहता था । 'सीमाब' की पंक्ति—'वही क़लीम है जो हर लफ़्ज पर अटकता है' उनके द्वारा दी गयी जीवनव्यापी इस्लाह की देन को ही रेखांकित करती है । जो भाषा-संस्कारी कार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी गद्य में (पद्य के क्षेत्र में भी) किया वही सनेही जी ने दशकों तक ब्रजभाषा और खड़ीबोली के

स्वीकृत प्रचलित छन्दों में लिखी जाने वाली परम्परानुमोदित कविता के लोकव्यापी विपुल सृजन में किया। उनकी साहित्यनिष्ठा, लगन, निस्पृहता और हिन्दी कविता के लिए उनकी सम्पूर्ण समर्पित साधना हिन्दी जगत् में इतिहास की यादगार बन गई है।

उन दिनों कोई भी कवि-सम्मेलन सनेही जी के बिना सूना लगता था। उनका व्यक्तित्व पूरे माहौल पर छा जाता था। जिस मंच पर वे होते थे उस पर किसी और के अध्यक्ष होने की कल्पना ही नहीं की जा सकती थी। उनका सौम्य, निरभिमान पर स्वाभिमान से दीप्त रसाकार व्यक्तित्व दूर से ही अपने को पहचनवा देता था। उनके तेवर, उनकी भंगिमाएँ, उनका लहजा, उनका काव्य-शास्त्र-विनोदी स्वभाव, कविता के प्राण की उनकी पकड़ उन्हें एक विचित्र घटक की संज्ञा प्रदान करती थी। उनके लखनऊ आने की खबर पाते ही हम फड़क उठते थे। उनके साथ पूरी कवि-मंडली चलती थी। ब्रजभाषा और खडीबोली के वे जीते-जागते, चलते-फिरते संगम थे। उर्दू भाषा पर उनका अधिकार अच्छे-अच्छे शायरों को चकित कर देता था। तीक्ष्ण सामाजिक चेतना राष्ट्रीय पराभव, देश के औपनिवेशिक शोषण की वेदना और स्वाधीनता प्राप्ति के प्रति उत्कट आकांक्षा की अभिव्यक्ति की दृष्टि से वे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और प्रतापनारायण मिश्र की विचारधारा से सीधे जुड़े थे। आजीवन वे जैसे उन्हीं के द्वारा उर्वरित, दासता के प्रति तीव्र आक्रोश-प्रतिशोध की भावना को अपने मे जगाये रहे।

निकट से निकट देखे जाने और मन के आदर के कँगूरे पर बिठाये किसी साहित्य पुरुष का संस्मरण उसके साथ अपने मन की बातें करने के समान है। वैसे भी कोई श्रद्धासिक्त याद जब शब्दो की लकीरो से गुजरती है तो रुकना जानती ही नहीं—यों चाहे जितने वर्ष मन मे पड़ी रह जाय। एक मुश्किल यह भी तो है कि सनेही जैसे जन-जीवन-जल-रस धारा के सदेह प्रतीक का संस्मरण उस सम्पूर्ण काव्य-रस-पिपासु, विराट पाठक-श्रोता-समाज का संस्मरण है जो सारे देश मे फैला है। अदम्य मनोबल, आत्म गौरव और संघर्षों में आजीवन प्रखरतर होती आयी दृढ़ता में, निराला जैसे ही, वह भी अपना सानी नही रखते थे। मेरी गिनती भी वे साफ़ लिखने वालो में करते थे और एक बार तो मेरी कविता की जाँफिसानी की बात उन्होंने उन दिनों कही थी जब मैं इस शब्द का अर्थ भी भली प्रकार न जानता था। हम जैसों के लिए उनकी एक दो शब्दों की नपी-तुली प्रशंसा ही उन दिनों मादक बन जाती थी। उनकी पंक्ति 'सुकवि सनेही बेपिये ही मतवाले हैं' हम पर भी घटित होने लगती थी।

अनेक कठिन, लगभग असाध्य बीमारियों को पराजित कर वे बयासी वर्ष से ऊपर का सार्थक, परहित-रत और सफल जीवन जी गये। कभी शायद ही उन्हे किसी पर क्रोध आया हो, किसी के प्रति उन्हें उत्तेजना लगी हो। उनके उदार महानद जैसे सतत प्रवाहित मन ने कभी किसी की कैसी भी भूल को अक्षम्य नहीं माना। क्षमा का ऐसा पूर्ण प्रणम्य साकार रूप आज तो क्या, उन दिनों भी दुर्लभ था। देश की रक्त शोषक ब्रिटिश सत्ता पर इतने प्रखर और घृणात्मक प्रहार करने वाला तेज-पौरुष-सम्पन्न कवि अपने सामान्य जीवन

में इतना सहिष्णु, शालीन और सात्त्विक रहा होगा इसे बिना उन्हें जाने और अंतरंग सम्पर्क में आये समझा ही नहीं जा सकता है।

जीवन के प्रत्येक अंकुर को आत्मीय प्यार से अपनाने वाला केवल अपने लिये ही नहीं जीता। जो भी उसके सम्पर्क में आता है वह उन्हीं में से स्वयं को भी एक समझता है। दूसरों के लिए जिया गया इतना लम्बा जीवन, बाहर से चाहे जितना कठिन, अभावग्रस्त और देश-समाज द्वारा उपेक्षित दिखता हो, यह भीतर-भीतर वह अधिक से अधिक समृद्ध, सुन्दर और सुखद होता जाता है। जहाँ प्राणिमात्र के प्रति आस्था हो, वहाँ संशय, कुंठा और अविचार के लिए स्थान कहाँ ? ऐसा मुक्त, निर्मल मानस जिजीविषा की प्रतिमूर्ति बन जाता है। उसकी प्राणता अबाध होती है जो सबके अनुभवों को समेटे चलती है, सबसे ऊर्जा की साँसें सहेजती है।

सनेही जी के साथ कवि-सर्जक आचार्यों की पीढ़ी ही समाप्त हो गयी। दूसरो के लिए उनकी मृत्यु का दिन कितना ठंडा-अँधेरा दिन रहा होगा पर उनकी यह पंक्ति आज भी परार्थ की स्वर-लहरी जैसी गूँजा करती है—

"तम-तोम का काम तमाम किया,
दुनिया को प्रकाश मे ला चुका हूँ।
बुझने का मुझे कुछ दुःख नहीं,
पथ सैकडो को दिखला चुका हूँ।

दक्षिण सिविल लाइन,
पचपेडी,
जबलपुर

□

सनेही जी की काव्य-यात्रा—साधना

डॉ० लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक'

राष्ट्रीय काव्य-धारा

द्विवेदी युग के अन्तिम चरण मे हिन्दी-कविता स्पष्ट रूप से दो वर्गों में विभाजित हो गयी थी। पहली धारा छायावादी कवियो की थी जो असीम और अनन्त की ओर उन्मुख थी। उसमें व्यक्तिगत आशा-निराशा, लौकिक-अलौकिक सौन्दर्य-चेतना तथा आरोपित आध्यात्मिकता के स्वर थे। युग-दर्शन के स्थान पर उसमें जीवन-दर्शन की प्रधानता थी। दूसरी धारा राष्ट्रीय कविताओ की थी जिसमें जन-मानस की पीड़ा और युग-चेतना के स्वर थे। राष्ट्रीय काव्य-धारा के कवियो ने स्वाधीनता-आन्दोलन को न केवल प्रेरित किया था वरन् उस संघर्ष मे उन्होने अपने स्तर से उसका नेतृत्व भी किया था। उनकी कविता राष्ट्रीय संदर्भों एवं ऐतिहासिक घटना-चक्रो से सीधे जुड़ी हुई थी। स्वतन्त्रता की लड़ाई केवल नेताओं या प्रबुद्ध वर्ग तक ही सीमित नहीं थी। उसका प्रभाव ग्रामीण अंचलों पर भी पडा था। अतः शहरों से लेकर गाँवो तक लोगों के मन में संघर्ष की चेतना उत्पन्न करनी थी। आजादी का जोश बढाने, नवयुवकों मे त्याग और उत्सर्ग की भावना जागृत करने तथा बलिदानियो के शौर्य पर गर्व करके वीरों को बलिवेदी की ओर अग्रसर करने की आवश्यकता थी। इस धारा के कवियो ने अपनी रचनाओं द्वारा उत्साह, उमंग, त्याग और बलिदान की भावना जन-जन मे जागृत की। गुप्त जी की भारत भारती के स्वर सर्वत्र गूंज उठे। श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान की 'झांसी की रानी' और 'वीरों का कैसा हो वसन्त' तथा पं० माखनलाल चतुर्वेदी की 'एक फूल की चाह' रचना ग्रामीण अंचलों को भी छू गयी और स्कूलो के बच्चो के कण्ठो मे ये कविताएँ गूंज उठीं।

सनेही जी ने इस राष्ट्रीय काव्य-धारा की अगुवाई की। वे 'त्रिशूल' बन कर सामने आये और तिलक, गांधी, सुभाष के स्वर मे स्वर मिलाकर उनके संदेशों को सामान्य जन तक पहुँचाया। सनेही जी काव्य-रचना के साथ-साथ जन-जीवन से जुड़े हुए थे और समाज एवं राष्ट्र की पीड़ा का भी उन्हे अनुभव था। क्रान्ति के केन्द्र कानपुर से सम्बद्ध होने के कारण कांग्रेस के नेताओं से लेकर स्वयंसेवको तक से उनका परिचय था और उनकी गतिविधियों का उन्होंने खूब अध्ययन किया था। सनेही जी की इस राष्ट्रीय काव्य परम्परा में सर्वश्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', छैलबिहारी 'कण्टक', राजाराम शुक्ल

'राष्ट्रीय आत्मा', डॉ० आनन्द, बंशीधर शुक्ल, गजराज सिंह 'सरोज' और अवध बिहारी अवस्थी 'विमलेश' जैसे अनेक कवि सामने आये जिन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा राष्ट्रीय आन्दोलन को अनुप्राणित किया। 'विमलेश' जी तो राष्ट्रीय गीतों की छोटी-छोटी पुस्तकें कानपुर और लखनऊ में गा-गा कर प्रचारार्थ बेंचते थे। ये कवि साहित्यकार बनने की अपेक्षा आन्दोलनकारियों तथा जनता के कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने के अभ्यासी थे। छायावादी कवियों की भाँति शाश्वत-काव्य की रचना कर साहित्य में स्थान बनाने का प्रयास इन कवियों ने कभी नहीं किया। युगीन आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्रयत्न करना इन्हें अभीष्ट था। राष्ट्रीय काव्य-धारा के ऐसे अनेक कवि स्वतन्त्रता-मन्दिर की नींव के पत्थर बन कर नीचे दब गये। आज का प्रबुद्ध पाठक उनके नाम भी नहीं जानता। उनकी रचनाएँ भी धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही हैं। इतिहासकार केवल प्रवृत्तियों और शैलियों के अध्ययन तक सीमित रह गये हैं। उन्हे इस ऐतिहासिक सम्पत्ति को सुरक्षित रखने में न कोई रुचि है और न अवकाश ही।

सनेही जी ने अपनी कवि प्रतिभा का उपयोग सही दिशा में किया। उन्होंने आत्म-श्लाघा के स्थान पर देश के गौरव की रक्षा का वरण किया। वे प्राइमरी स्कूल के अध्यापक थे और नौकरी के नियमों से बँधे थे। इसीलिए उन्हें सनेही से 'त्रिशूल' बनना पड़ा। त्रिशूल उपनाम से उन्होने धुआँधार कविताएँ लिखीं और छपवाईं। उन्होंने यह अनुभव किया कि गांधी जी के सत्य, अहिंसा, असहयोग, स्वदेश एवं देश-प्रेम को घर-घर तक पहुँचाना है और वैचारिक जनान्दोलन चलाना है।

राष्ट्रभाषा के प्रेरक

राष्ट्रीय एकता को सुरक्षित रखकर आम आदमी तक अपना सन्देश पहुँचाने के लिए उन्होंने भाषा का वह स्वरूप अपनाया जो सर्वसाधारण के लिए बोधगम्य था। यहाँ पर इस बात का उल्लेख करना आवश्यक है कि उस समय उर्दू भाषा एक प्रकार से राजभाषा बन गयी थी उसे अंग्रेजों का प्रश्रय प्राप्त था। हिन्दी उस समय राष्ट्रीयता अथवा क्रान्ति की भाषा की द्योतक समझी जाती थी। इसी से वह सरकारी संरक्षण से वंचित रही। कचहरियों, जिला परिषदों तथा नगरपालिकाओं का सारा काम या तो अंग्रेजी मे होता था या फिर उर्दू में। विद्यालयों में भी उस समय उर्दू प्रमुख भाषा थी। ऐसी स्थिति में संस्कृत-निष्ठता का हठ त्याग कर सनेही जी ने जन-भाषा में अपनी बात कहना उचित समझा। उनका प्रमुख कार्य राष्ट्रीय-भावना का प्रचार था। उन्होंने राष्ट्र-हित मे अपने कवि के व्यक्तित्व को दबा दिया। यह उनका कम त्याग नहीं था। उनकी राष्ट्रीय रचनाओं की भाषा पैनी और प्रखर थी। वह तुरन्त चोट करने वाली थी। उसमे मुहावरेदानी के साथ गतिमयता थी। 'आइनये हिन्द' नामक कविता उन दिनों बड़ी लोक-प्रिय हुई थी। उसकी निम्नलिखित पंक्तियों से उनकी भाषा के स्वरूप का अन्दाज मिल जायगा—

हाथ ग़ैरों के पड़े और हुई ज़िल्लत अपनी ;
फिर तो रुख़सत हुई वह फ़हमो-फ़रासत अपनी।
ख़्वाब सी हो गई वह ताक़तो-क़ुदरत अपनी ,
हाय ! मिट्टी में मिली जुरअतो, हिम्मत अपनी।
सींचते नाले हैं हर वक्त जरस की सूरत।
आशियाँ हमको बना अब तो कफ़स की सूरत।

× × ×

मुल्क जब नशे में आज़ादी के सरशार हुआ,
आगे गाँधी जी बढ़े, प्रेम का अवतार हुआ,
दिल में फिर पैदा 'स्वदेशी' के लिए प्यार हुआ,
तारे-ज़र फिर हमें चर्खे का कता तार हुआ,
सिक्का मलमल की जगह बैठ गया खादी का।
हर तरफ शोर मचा मुल्क में आज़ादी का।

आचार्य द्विवेदी हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में समर्थ बनाने के लिए जीवन भर प्रयत्नशील रहे। वे हिन्दी को देश की सम्पर्क भाषा के रूप में भी विकसित करना चाहते थे। कविता एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा सहज ही लोक को आकर्षित किया जा सकता है। सनेही जी ने द्विवेदी जी के इस कार्य को बख़ूबी पूरा करके दिखाया। उन्होंने भाषा का सरल, सहज और सुबोध रूप अपना कर राष्ट्रभाषा-अभियान को सफल बनाया और हिन्दी का सिक्का जमाया। प्रेमचन्द की भाँति उन्होंने भाषा के उसी स्वरूप को निर्मित किया जो सामान्य जनता को प्रभावित कर सके। भाषा में मुहावरों का प्रयोग जितना सनेही जी ने किया उतना अन्य किसी भी कवि ने नहीं किया है। उन्होंने प्रचलित शब्दों और जनजीवन से जुड़े हुए मुहावरों के प्रयोग से भाषा को सँवारा। ठेठ ग्रामीण शब्दों का खड़ी बोली में प्रयोग कर उन्होंने नयी पीढ़ी के कवियों का मार्ग प्रशस्त किया। व्रजभाषा कविता में भी उन्होंने मुहावरों के प्रयोग से नयी जान डाल दी और उसे अधिक मुखरता प्रदान की। उदाहरणार्थ उनका बंशी पर लिखा हुआ एक छन्द प्रस्तुत है—

बंस की हूँ कै छुड़ावति बंसहिं, तीर-सी हूँ हनै तीर-सी तानै।
बेधी गयी तऊ बेध की वेदना बूझै न, बेधति खेद न आनै।
सूखि गयी हरियारी तऊ रही, हूँ कै हरी है सुखावति प्रानै।
पीवै सदा अधरामृत पै, बरै बाँसुरिया, बिषु बोइबो जानै।

सनेही जी की भाषा विषयवस्तु और उसके परिवेश के सर्वथा अनुकूल है। ऐसी भाषा हृदय को सीधे प्रभावित करती है और स्वदेशाभिमान जागृत करती है। इसी प्रकार की भाषा के माध्यम से उन्होंने अपनी बात जन-जन के हृदय में जमायी। जिस उद्देश्य को लेकर उन्होंने राष्ट्रीय रचनाएँ लिखीं, उसमें वे पूर्णरूपेण सफल रहे। यही कारण है कि

उनकी कविताएँ कोटि-कोटि कण्ठों मे गूँजती रही। वे अपने युग में सिद्ध-प्रसिद्ध आचार्य हो गये और उनकी लिखी पंक्तियाँ पत्र-पत्रिकाओं के मुखपृष्ठ पर मोटो के रूप में प्रकाशित होने लगीं। पत्र के अनुकूल चुटीली सूक्तियाँ लिखने में वे बड़े कुशल थे। कानपुर के 'वर्तमान' पत्र के मुखपृष्ठ पर—

शानदार था भूत, भविष्यत् भी महान् है।
अगर सँभालें उसे आप, जो 'वर्तमान' है।

आगरे से प्रकाशित 'सैनिक' के मुखपृष्ठ पर—

कमर बाँध कर अमर समर मे नाम करेंगे।
'सैनिक' हैं हम विजय-स्वत्व-संग्राम करेंगे।

और गोरखपुर से निकलने वाले 'स्वदेश' के मुखपृष्ठ पर—

जो भरा नही है भावो से बहती जिसमे रसधार नही,
वह हृदय नहीं है पत्थर है जिसमे 'स्वदेश' का प्यार नही।

बराबर छपती थी। ये पंक्तियाँ इतनी लोकप्रिय हो गयी थीं कि जेलों, जुलूसों और प्रभात-फेरियों में बड़े जोश के साथ पढ़ी जाती थी। इसी से उनकी लोकप्रियता और रचना-धर्मिता का अनुमान लगाया जा सकता है।

प्रगतिवाद के संस्थापक

सनेही जी यहीं तक नही रुके। वे काव्य की मंजिल तक पहुँचने के लिए निरन्तर आगे बढ़ते रहे। राष्ट्रीयता के साथ समाज-सुधार, अन्धविश्वासो पर प्रहार, विषमता के विनाश एवं प्रगति-विकास के लिए भी वे प्रयत्नशील रहे। सन् १९१४ मे 'प्रताप' मे उनकी 'कृषक-क्रन्दन' नामक कविता छपी थी। उस समय तक प्रगतिवाद का नामकरण भी नहीं हुआ था। उनकी 'साम्यवाद' शीर्षक रचना 'त्रिशूल' उपनाम से १२ अप्रैल १९२० को 'प्रताप' मे प्रकाशित हुई थी। साम्यवाद का जो नारा काव्य मे सन् १९३० के बाद आया उसका सूत्रपात सनेही जी बहुत पहले कर चुके थे। 'त्रिशूल तरंग' मे अनेक ऐसी रचनाएँ हैं जिनमे मुनाफाखोरी, शोषण, पूँजीवाद तथा आर्थिक वैषम्य पर तीखे व्यंग्य हैं। सनेही जी विशुद्ध मानवतावादी कवि थे। वे किसी भी वाद या राजनैतिक सिद्धान्त के प्रतिपादक नहीं बने। उनके हृदय में मानव के प्रति सहज करुणा और संवेदना थी। वे स्वयं एक कृषक थे और किसान-मजदूर की पीड़ा से पूर्ण परिचित थे। समाज के निम्न-वर्ग के प्रति उनके मन मे गहरी सहानुभूति थी और उनकी व्यथा व्यक्त करने मे वे कभी नहीं चूके। चोरबाजारी की चर्चा आज कविता मे भी होने लगी है। सनेही जी पचास वर्ष पूर्व इस पर अपनी पीड़ा व्यक्त कर चुके हैं—

रत्नगर्भा वसुधा के लाल
भोगते घोर क्षुधा का कष्ट।

अन्न-धन रहते पड़ा अकाल
हो रही है विधि की विधि नष्ट।
बुभुक्षित छोड़ रहे हैं प्राण
गगन तक गूँजा हाहाकार।
हजारों ठण्डे होते इधर,
उधर है गर्म 'चोर-बाजार'।

'दहेज-प्रथा' समाज के लिए अभिशाप बन गयी है। आज उसके विरोध के नारे लगाये जा रहे हैं। सनेही जी ने दूसरे दशक मे ही समाज को इस कुप्रथा से सावधान किया था। उन्होंने 'बीसा-बिसुवा', 'कुलीन की उच्चता' और 'नवयुवकों की दहेज-प्रियता' का खुल कर विरोध किया था :

अति व्याकुल धाकर ब्याह बिना,
कुलवान दहेज को रो रहे हैं।
ससुराल का है जो भरोसा बड़ा
लड़के भी कुलक्षणी हो रहे हैं।
हुए छिद्र हैं सौ-सौ स्वदेश की नाव में
नाम समेत डुबो रहे है।
चिर संचित गौरव खो रहे हैं
'बिसुवे' बस ये विष बो रहे हैं।

सनेही जी सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय कवि थे। वे अपने युग के नेता थे और दलितो, पीड़ितों, शोषितों और विपन्न लोगों की पीड़ा मुखर करने में सबसे आगे थे। परम्परावादो होते हुए भी वे सुधार के कट्टर समर्थक थे। आर्थिक वैषम्य के वे घोर विरोधी थे। समाज में समता भाव लाने हेतु वे सदैव प्रयत्नशील रहे। उनका 'साम्यवाद' समाज-कल्याण की भावना से प्रेरित है। उन्होंने उसे राजनैतिक मुद्दा नहीं बनाया। इसी को लक्ष्य करके उन्होंने लिखा था—

समदर्शी फिर 'साम्यरूप' धर जग में आया,
समता का सन्देश गया घर-घर पहुँचाया।
धनद-रंक का, ऊँच-नीच का भेद मिटाया,
विचलित हो वैषम्य बहुत रोया-चिल्लाया।
काँटे बोये राह में, फूल वही बनते गये।
'साम्यवाद' के स्नेह में सुजन-सुधी सनते गये।

उनकी कविता का मर्म जानने के लिए 'त्रिशूल' और सनेही का अन्तर समझना आवश्यक है। उन्होंने स्वयं लिखा है—

कण्ठों में विराजा रसिकों के फूल माल होके ,
कुटिल कलेजों में 'त्रिशूल' होके कसका ।

सनेही जी के उपनाम—

सनेही जी को नाम का मोह नहीं था । जो उनके मन में आता था उसे वे निःशंक होकर व्यक्त करते थे । इसी से उन्होंने भिन्न-भिन्न बातें भिन्न-भिन्न उपनामों से कही । देश के विरोधियों के लिए वे सदैव 'त्रिशूल' बनकर उनके कलेजो मे चुभते रहे । वे जीवन भर दुष्प्रवृत्तियों का विरोध करते रहे । उनकी राष्ट्रीय भावना साहित्यिक परिवेश तक सीमित नहीं रही वरन् वह जन जीवन की वाणी बन गयी । 'सनेही' और 'त्रिशूल' उपनाम प्रसिद्ध हो चुके थे । अतः समय-समय पर वे 'तरंगी', 'अलमस्त' और 'लहरी लहरपुरी' के नाम से भी कविताएँ लिखते थे । उनका उद्देश्य सत्य का उद्घाटन था, अपना नाम रोशन करना नहीं । 'सुकवि' पत्रिका के सम्पादन-काल में उन्हें अनेक मधुर एवं कटु अनुभव हुए । सन् १९१८ में उन्होंने गोरखपुर से निकलने वाली 'कवि' पत्रिका का सम्पादन किया । पाँच वर्ष बाद सन् १९२३ में वह बन्द हो गयी । सन् १९२४ मे स्वामी नारायणानन्द सरस्वती के सम्पादकत्व मे कानपुर से 'कवीन्द्र' नामक पत्रिका निकली । उसे सनेही जी का पूरा संरक्षण प्राप्त था । कुछ महीनो चलकर वह भी बन्द हो गयी । अप्रैल सन् १९२८ मे उन्होंने आचार्य द्विवेदी जी के आग्रह पर 'सुकवि' निकाला जो सन् १९५१ तक चला । 'सुकवि' के मई १९३० के अंक मे उन्होने 'अलमस्त' के नाम से निम्नलिखित सवैया प्रकाशित किया; जो सम्पादक की कठिनाइयों के साथ-साथ उस समय के कवियों की मनोवृत्ति का भी परिचायक है:—

बिगड़े कुछ हैं कविता न छपी,
कुछ चित्र निकालने को मचले हैं ।
कुछ देख के वी०पी० हुए भयभीत
बहाने बताकर बीसो टले हैं ।
धनहीन घने, कुछ सूम भी हैं
निरसे कुछ हैं, रस में न पले हैं ।
इसी से 'कवि' और 'कवीन्द्र' मिटे
कविता के न पत्र चलाये चले हैं ।

कवि सम्राट्-सनेही

सनेही जी अपने युग के नायक और काव्य-गुरु थे । प्रारम्भ में 'हरिऔध' जी को 'कवि सम्राट्' की उपाधि से विभूषित किया गया था । बाद में यह उपाधि सनेही जी को मिली । पहले कवि सम्मेलनों की अध्यक्षता प्रायः 'हरिऔध' जी या 'रत्नाकर' जी करते थे । 'सुकवि' के प्रकाशन के बाद से सनेही जी ही कवि सम्मेलनों के अध्यक्ष बनाये जाते थे ।

सनेही जी ने कवि सम्मेलनों का संगठन किया और राजदरबारों या रियासतों में इसका पुन: प्रचलन किया। अनेक कविता-प्रेमी राजाओं को भी उन्होंने हिन्दी में काव्य-रचना करने के लिए प्रेरित किया सन् १६३७ तक ये रियासतें बड़ी प्रभावशाली रहीं। कला, संस्कृति एवं भाषा के क्षेत्र में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहता था। मध्यप्रदेश और राजपूताने के अनेक राजा-रईस सनेही जी के भक्त थे और वहाँ उनका बड़ा मान था। अवध के राजाओं और ताल्लुकदारों में भी सनेही जी की बड़ी प्रतिष्ठा और धाक थी। 'सुकवि' पत्रिका के प्रकाशन मे इन राजाओं का महत्त्वपूर्ण सहयोग रहा था। उस समय विद्यालयों में होने वाले कवि सम्मेलनो में भी प्रायः सनेही जी ही अध्यक्षता के लिए आमन्त्रित किये जाते थे। उन्होंने कवियो का एक अच्छा खासा दल तैयार किया था; जिसमें सभी रसों और शैलियों के कवि थे। कवियो के चयन का कार्य भी प्राय: सनेही जी ही करते थे। यही कारण है कि उस समय के अधिकांश छोटे-बड़े कवि उन्हें गुरु मानते थे और उन्हे कवि सम्राट् कह कर सम्बोधित करते थे। इन कवि सम्मेलनो से हिन्दी का प्रचार हुआ तथा कविता के माध्यम से राष्ट्रीय विचारधारा का ग्रामीण अंचलो तक प्रसार भी हुआ।

काव्य-गुरु सनेही

नवोदित कवियो को प्रोत्साहन देने में सनेही जी बड़े उदार थे। 'इसलाह' या 'संशोधन' की कला मे वे इतने दक्ष थे कि रचना में तुरन्त सुधार कर उसे भाषा और भाव की दृष्टि से स्तरीय बना देते थे। भाषा और व्याकरण की त्रुटियाँ वे तुरन्त पकड़ लेते थे। दोष बताना तो सरल है किन्तु उसे निर्दोष बनाना कठिन कार्य है। सनेही जी तुरन्त संशोधन भी कर देते थे। शब्दो की अर्थ-व्यंजना से वे पूर्ण परिचित थे। कौन शब्द कहाँ पर उपयुक्त है इसे वे भली-भाँति जानते थे। इसके लिए उन्हे सोचने-विचारने की आवश्यकता नही पड़ती थी। वे संशोधन बड़े स्नेहपूर्वक करते थे। इसीलिए कवि उनकी गुरुता से प्रभावित होकर उनका भक्त बन जाता था। आज वह परम्परा लुप्त होती जा रही है। अतः सनेही जी का स्मरण होना स्वाभाविक है। वे सच्चे काव्य-गुरु थे और रस, छन्द, अलंकार और भाषा-प्रयोग का उन्हे अच्छा ज्ञान था। अपने कविता-गुरु लाला गिरधारी लाल से उन्होने युवावस्था में ही विधिवत् काव्य-शास्त्र की शिक्षा प्राप्त की थी। उन्होने उनसे फारसी और उर्दू की भी शिक्षा पायी थी। वे भाषा की सहजता के पक्षपाती थे। जान-बूझकर भाषा को प्राञ्जल बनाकर उसकी प्रेषणीयता मे बाधा पहुँचाने की प्रवृत्ति उनमें नहीं थी। 'कवि कौतुक' शीर्षक उनका निम्नलिखित छन्द द्रष्टव्य है—

> कैसी चतुराई कैसी कला में निपुणता है,
> बिना रंग कैसे चित्र सुन्दर सँवारे हैं।
> प्रकृति-रहस्य भेदने में कैसी तीव्र गति,
> रवि की न गम्य वहाँ सुकवि पधारे हैं।

अतल वितल तलातल की खबर लेते
'अलमस्त' कौतुकी विचित्र ही निहारे हैं।
ऊँची जो उड़ान भरी, कल्पना विमान चढ़
तोड़-तोड़ तारे आसमान से उतारे हैं।

भाषा

ऊपर सनेही जी के भाषा-सिद्धान्त एवं राष्ट्रभाषा के स्वरूप पर प्रकाश डाला जा चुका है। यहाँ पर सनेही जी की काव्य-भाषा की चर्चा आवश्यक है। द्विवेदी-युग खड़ी-बोली का युग माना जाता है। उस समय कुछ विद्वानों का मत था कि खड़ीबोली मे ब्रजभाषा जैसा माधुर्य और बाँकपन नही लाया जा सकता है। सनेही जी ने यह चुनौती स्वीकार की और उन्होंने खड़ीबोली में ब्रजभाषा जैसा अभिव्यक्ति-सौष्ठव एवं मार्दव लाने का सफल प्रयास किया। उनकी भाषा के सम्बन्ध में डॉ० भगीरथ मिश्र ने इस बात को बड़ी दृढ़ता के साथ सिद्ध किया है :

"उनकी भाषा ऐसी है जिसे हम टकसाली और शुद्ध हिन्दी कह सकते हैं। सनेही जी की भाषा में शुद्ध हिन्दी का रूप न संस्कृत पदावली से ओतप्रोत है और न फारसी शब्दावली से बोझिल। वास्तव मे कविता के क्षेत्र मे भाषा की दृष्टि से सनेही जी की शैली को वही स्थान प्राप्त है जो गद्य के क्षेत्र मे प्रेमचन्द को।"

सनेही जी की भाषा विषयक विशिष्टता और कल्पना-शक्ति ने उनके काव्य को अत्यन्त प्रभावशाली बना दिया है। वे सीधी बात को सीधे शब्दो मे कहने में अभ्यस्त हैं। उनकी यह सादगी बड़ी तीखी है और हृदय को भेदकर रस की सृष्टि करने वाली है। भाषा की दृष्टि से उनका प्रत्येक छन्द अपनी अलग पहचान रखता है। उनकी 'बुझा हुआ दीपक' शीर्षक रचना भाषा, भाव और कल्पना की दृष्टि से बड़ी पुष्ट और प्रभावोत्पादक है। मुहावरों के प्रयोग से भाव मुखर हो उठा है, भाषा सँवर गयी है और अभिव्यक्ति मे कवि का आत्मविश्वास प्रखर हो गया है :

करने चले तंग पतंग, जलाकर मिट्टी मे मिट्टी मिला चुका हूँ।
तम तोम का काम तमाम किया, दुनिया को प्रकाश मे ला चुका हूँ।
नहीं चाह 'सनेही' सनेह की और, सनेह में जी मैं जला चुका हूँ।
बुझने का मुझे कुछ दुःख नही, पथ सैकड़ो को दिखला चुका हूँ।

काव्य-शैली

भाषा की भाँति सनेही जी की काव्य-शैली भी सरस और मार्मिक है। उनकी रचनाओं में अलंकरण का कोई आग्रह नहीं दिखायी देता। उन्होंने अलंकारों का उतना ही प्रयोग किया है जितनी उनकी आवश्यकता है। उनकी भाषा स्वयं इतनी समर्थ है कि उसे अलंकारो की अपेक्षा नहीं प्रतीत होती। कविता में अलंकार आवश्यक हैं, अनिवार्य

नहीं। सनेही जी को अलंकारो की झड़ी लगाना पसन्द नही है; किन्तु जहाँ भाव व्यंजना को प्रभावशाली बनाना है अथवा किसी विशेष रस की सृष्टि करनी है वहाँ उन्होंने अलंकारों का सहयोग लिया है। सामान्यतया उपमा, प्रतीप, उत्प्रेक्षा, यमक-श्लेष, परिसंख्या, रूपक, अपह्नुति, एकावली, उदाहरण और विरोधाभास आदि अलंकारो का उनकी कविताओं में प्रयोग मिलता है। यथा—

श्याम सनेही को पानिप पेखत काई-सी लागै मनोज निकाई।
(प्रतीप)

बेलें तरुओं पे चढ़ी बेलो पर चढ़े फूल
फूलों पे भ्रमर, छिड़ा समर वसन्ती है।
(एकावली)

परम समीप होके रहते हैं दूर दूर
रूपवान होकर अरूप रूप धारे हैं।
(विरोधाभास)

दान गज में है, मानिनी के मन मे है मान
आँखें लड़ने में रही अब तो लड़ाई है।
(परिसंख्या)

सनेही जी की अभिव्यक्ति का अन्दाज ही कुछ और है। उनका शब्द-सौन्दर्य ही अलंकार का काम करता है। मुहावरे उसमें नयी चेतना का संचार करते हैं और स्वाभाविक कथन वक्रता चमत्कार उत्पन्न करती है जो पाठकों के हृदयों को स्वतः आन्दोलित कर देती है। निम्नलिखित छन्द से ये सभी बातें स्पष्ट हो जायेंगी। काव्य में मरण का वर्णन वर्जित है। कुशल कवि विरह की दसवीं दशा को व्यंजना करते समय मरण की स्थिति को बचा जाते हैं। सनेही जी के इस छन्द मे यही बात बडी खूबी के साथ व्यक्त हुई है :—

नारी गही बैद सोऊ बनिगो अनारी सखि!
जानै कौन व्याधि याहि गहि-गहि जात है।
कान्ह कहे चौंकति, चकित-चकराति ऐसी
धीरज की भीति लखि ढहि-ढहि जात है।
कही कहि जात नहिं, सहि सहि जात नहिं
कछू को कछू 'सनेही' कहि-कहि जात है।
बहि-बहि जात नेह, दहि-दहि जात देह
रहि-रहि जात प्रान, रहि रहि जात है।

महान् आचार्य

सनेही जी अपने युग के महान आचार्य थे। उन्होने कोई भी लक्षण ग्रन्थ नहीं लिखा और न काव्यशास्त्र की विवेचना ही की, फिर भी लोग उन्हें आचार्य मानते थे।

वे भाषा और छन्द के तो आचार्य थे ही, युग एवं परिस्थितियों का उन्हें सही ज्ञान था। देश और समाज की आवश्यकताओं का उन्हे अच्छा अनुभव था। पं० किशोरीदास वाजपेयी ने उनके आचार्यत्व के सम्बन्ध में बड़ी सटीक बात कही है—

"सुकवि समय को पहचानता है कि किस समय क्या चीज देनी चाहिए। परन्तु वे आचार्य भी हैं। आजकल हिन्दी में 'आचार्य' शब्द जिस अर्थ में चल रहा है, उससे मतलब नहीं। सनेही जी 'कवि-गुरु' हैं, कवियों के आचार्य हैं। उनके शतशः कवि शिष्य हैं। उनका अपना एक विशिष्ट कवि सम्प्रदाय है, एक पृथक् स्कूल है। उसके वे आचार्य हैं। इस कवि सम्प्रदाय को जीवित रखना है, आगे बढ़ाना प्रमुख कर्त्तव्य है।"

वाजपेयी जी ने उनके आचार्यत्व को स्पष्ट कर दिया है कि वे अपने स्कूल के आचार्य थे—काव्य-गुरु थे। वे छन्द की लय पहचानते थे। किस छन्द में किस प्रकार की भाषा का प्रयोग उचित है, इसे वे भलीभाँति जानते थे। यही कारण है कि उनके कवित्त, सवैयों, वर्णवृत्तों और छप्पय छन्दों की भाषा अलग-अलग है।

सनेही जी को मुख्यतया कवित्त सवैया-शैली का कवि कहा जाता है, किन्तु उन्होंने अपने समय के प्रचलित प्रायः समस्त छन्दो एवं शैलियों का प्रयोग किया है। इस सम्बन्ध में उनका दृष्टिकोण बड़ा व्यापक था। लोक-जीवन मे व्याप्त गजल, ख्याल और लावनी से लेकर संस्कृत के वर्णवृत्तो तक उन्होने अनेक प्रचलित छन्द-शैलियों का प्रयोग कर अपनी काव्य रचना की क्षमता व्यक्त की है। 'प्रिय-प्रवास' में प्रयुक्त वर्णवृत्तों की छटा उनकी 'करुणा-कादम्बिनी' मे दिखायी देती है। छायावादी गीत शैली मे उन्होंने सैकड़ों भावपूर्ण गीतों की रचना की है। उर्दू की अनेक बहरों को उन्होंने हिन्दी में ऐसा ढाला है कि वे उसके अपने छन्द ज्ञात होते हैं। बाबू मैथिलीशरण गुप्त की हरिगीतिका शैली का 'कुसुमाञ्जलि' मे प्रचुर प्रयोग हुआ है। सनेही जी ने 'गीतिका' छन्द का प्रयोग किया है। इस छन्द में २६ मात्राएँ होती हैं। अन्त मे। ऽ का तुक रहता है।

वीर बालक देश की आशा-लता तुम बन रहे,
परम निधि हो देश की, तुम इस निधन के धन रहे।
भेंट है तुमको समर्पित, चित सुवासित कीजिए,
कलित 'कुसुमाञ्जलि' कुमारो! कमल कर मे लीजिए।

गजल और रुबाई का सनेही जी ने हिन्दीकरण किया और उन्हें मचो पर लोक-प्रियता प्रदान की। इन छन्दों में दो विशेषताएँ होती हैं। पहली, भाषा की गतिमयता है और दूसरी विशेषता इनका तुकान्त-सौष्ठव है। सनेही जी इन दोनों विशेषताओं मे पारंगत थे और इनके प्रयोग का 'गुर' जानते थे। मुक्तक या रुबाई जैसे छोटे छन्द में भाषा के कसाव के साथ प्रवाह और सरस तुकान्त का संयोजन कर भावभंगिमा को चार पंक्तियों में पूर्णता प्रदान करना सामान्य कवि के बूते की बात नही है। सनेही जी में इसकी अद्भुत क्षमता थी। निम्नलिखित मुक्तक से यह बात स्वतः स्पष्ट हो जायगी—

ऐसे मेहमान, कहाँ मिलते हैं,
कौम की जान, कहाँ मिलते है।
है ये मुमकिन कि फरिश्ते मिल जायें,
सच्चे इन्सान, कहाँ मिलते हैं ?

उक्त मुक्तक में रदीफ और काफिये की कसावट के साथ भाव मुखर हो उठा है। अन्तिम पंक्ति मे वह पूर्णता को प्राप्त हुआ है। सनेही जी ने आगे की पीढ़ी के मुक्तककारों का मार्ग प्रशस्त किया।

कवित्त-सवैया-शैली के उन्नायक

खड़ीबोली मे कवित्त सवैया शैली की स्थापना का श्रेय मुख्यतया सनेही जी को ही है। खडीबोली मे सवैया छन्दो की गणात्मकता बाधक होती है। पूर्ववर्ती सवैयाकारो ने गणात्मकता की रक्षा के उद्देश्य से फूंक-फूंक कर पग रखा है। फलतः उसमें प्रवाह की कमी है। सनेही जी के सवैयों मे छन्द-शिल्प उभर कर सामने आया है। भाव-व्यंजना मे प्रवाह एवं बाँकपन है। उन्होंने गणात्मकता की परवाह नही की है। भाषा को लयात्मक बनाकर तुकान्त-सौष्ठव के साथ इन छन्दो को सनेही जी ने ऐसा माँजा है कि वे खड़ी-बोली के भी उतने ही सगे और आत्मीय बन गये जितने वे ब्रजभाषा के थे। सफल भाव-व्यजना और तुकबन्दी मे अन्तर होता है। सनेही जी की भाव-व्यंजना सर्वत्र मुखर हो उठी है। यह कला आगे चल कर हितैषी जी, कमलेश जी एवं तरल जी के छन्दो मे पूर्ण-रूपेण विकसित हुई है। उनके 'स्कूल' के अनेक कवि इस कला मे सिद्धहस्त हैं।

नया प्रयोग

'हिन्दी मे सवैया-साहित्य' शीर्षक अपने शोध-प्रबन्ध पर कार्य करते हुए मुझे सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य मे दो सवैये ऐसे मिले जिनका उल्लेख किसी भी छन्दःशास्त्र मे मुझे नहीं दिखायी दिया। पहला छन्द छत्रमाल का है और दूसरा कवि सम्राट् सनेही जी का। सनेही जी का यह सवैया २५ वर्णों का है जिसमे ८ जगण+ IS का क्रम है। मैंने इसे उन्ही के नाम पर 'सनेही' सवैया कहा है। इस छन्द मे तुकान्त वैभव, भाषा-प्रवाह और भाव-भंगिमा दर्शनीय है। प्रत्येक पद मे मुहावरो के प्रयोग से भाव मुखर हो उठा है। यह खडीबोली का ऐतिहासिक छन्द है और हिन्दी मे एक अभिनव प्रयोग है—

चबाई चबाव से चूके नही
किसकी नहीं बाते सही, कह दीजिए।
रही सो कही न रही सो कहीं,
अब क्या कहने को रही, कह दीजिए।
'सनेही' न तो भी सनेही हुए
भ्रम से ही सनेही कही, कह दीजिए।

'नहीं-नहीं' में नहीं साफ है हाँ नही,
हाँ कहिये, कि नही कह दीजिए।

सनेही जी के सवैयों का रूप-विधान, शब्द-चयन, शिल्प-सौन्दर्य, उक्ति-वैचित्र्य और कथन-वक्रता अद्वितीय है। उनके काव्य-कौशल से ये छन्द खडीबोली में सँवर कर प्रयुक्त हुए।

इसी प्रकार घनाक्षरी छन्द को भी सनेही जी ने खड़ीबोली के उपयुक्त बनने की क्षमता प्रदान की। इन छन्दो की भी दो प्रमुख विशेषताएँ हैं—मार्मिक भाव और अलंकृत अभिव्यक्ति। उन दोनो के सफल योग से छन्द की रमणीयता प्रस्फुटित होती है। यदि इनमे से एक भी पक्ष हल्का हुआ तो छन्द का सौष्ठव कम हो जाता है। ब्रजभाषा के कवित्तों मे ये विशेषताएँ खूब पायी जाती हं। खड़ीबोली मे ठाकुर गोपालशरण सिह ने कवित्त लिखे थे; किन्तु उनमे वर्णनात्मकता अधिक है। वह खडीबोली का प्रारम्भिक युग था और भाषा मे उतना कसाव एव प्रवाह नही आ सका था। सनेही जी के कवित्तो मे ब्रजभाषा कवियों जैसी अनुप्रासिकता और लयात्मकता सर्वत्र विद्यमान है। ७५ वर्ष की आयु मे उन्होने निम्नलिखित कवित्त लिखा था। इसमे सपाट बयानी के साथ भाषा-प्रवाह, गतिमयता एवं छान्दसिक सौन्दर्य है। अन्तिम चरण मे 'भाव-व्यजना' अनुप्रास के योग से दीप्त हो उठी है—

विश्व मे विचारो के विचरता रहा विवश
बस गया वही पे रहा न मन बस का।
कण्ठो मे विराजा रसिकों के फूल माल होके
कुटिल कलेजो मे त्रिशूल होके कसका।
धाराधर विपदा के बरसे अजस्रधार
तो भी मेरा धीरज धराधर न धसका।
चसका वही है नव रस का 'सनेही' अभी
टसका नही मैं—हूँ पछत्तर बरस का।

समस्यापूर्ति परम्परा के पोषक

हिन्दी में समस्यापूर्ति की बडी पुरानी परम्परा है। भारतेन्दु जी ने इसे बडा प्रोत्साहन दिया था और उन्होने समस्यापूर्ति गोष्ठियाँ आयोजित की थीं। छायावादी कवियों ने इसे निरर्थक और सायास काव्य रचना बताया तथा पाश्चात्य विचारों से प्रभावित काव्यधारा के कवियो ने भी परम्परावादी कह कर इस शैली की उपेक्षा की। भारतेन्दु जी के बाद कानपुर समस्यापूर्ति काव्य का केन्द्र बना और राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' आदि कवियो ने इस शैली को प्रश्रय दिया और सनेही ने उस परम्परा को जीवन्त बनाया। वे मनमौजी कवि थे और किसी 'वाद' मे नही बँधे थे। काव्य-रचना उनका शौक था, व्यवसाय नही। प्राचीन आचार्य आज भी समस्यापूर्ति को कवि-प्रतिभा की कसौटी मानते

हैं। सनेही जी ने समस्यापूर्ति का अभियान चलाया और इसके माध्यम से सामान्य कवियों को भी सामने आने का अवसर प्रदान किया। 'सुकवि' पत्रिका में 'समस्यापूर्ति' का सबसे बड़ा स्तम्भ रहता था। वे स्वयं भी कुशल पूर्तिकार थे। उन दिनों कवि-सम्मेलनों में पहले से ही समस्याएँ दी जाती थीं और कविगण उन्हीं की पूर्तियाँ सुनाते थे। इससे प्रत्येक कवि को कुछ-न-कुछ नया लिखने को बाध्य होना पड़ता था। सनेही जी का कहना था कि अच्छी पूर्ति वही है जो बाद में पूर्ति न मालूम पड़े। एक शब्द की पूर्ति तो सरल है; किन्तु कभी-कभी वे असंगत की भी संगति बिठाने का चमत्कार दिखाते थे। एक समस्या थी—"एक ते ह्वै गईं द्वै तसवीरैं।" उन्होंने इसकी पूर्ति इस प्रकार की थी—

दर्पन मैं हिय के पिय मूरति
आय बसी न चली तदबीरैं।
सो ह्वै दु टूक 'सनेही' गयो
वै परी बिरहागिनि ताप की भीरैं।
दोउन मैं प्रतिबिम्बित ह्वै करि
दूनी लगीं उपजान की पीरैं।
सान्तति एकै रहै उर मैं,
अब एक ते ह्वै गईं द्वै तसवीरैं।

समस्यापूर्ति कोरी तुकबन्दी नहीं होती। उसमें कवि का प्रत्युत्पन्नमतित्व, शब्द-प्रयोग-कुशलता, भाषा-ज्ञान, भाव-संयोजन एवं कुल मिलाकर उसकी कवि-प्रतिभा की जाँच होती है। सनेही जी ने आत्मविश्वास के साथ गाँव-गाँव तक समस्यापूर्तिकार बनाये और हिन्दी कविता का प्रचार किया। उन्होने इन पूर्तियों द्वारा देश और समाज की अनेक समस्याओ और जीवन की गहन अनुभूतियो की व्यंजना की। उनके सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि उन्होने समस्यापूर्तियो मे दार्शनिकता, भावात्मकता एवं राष्ट्रीयता का समावेश कर कुलीन कविता की रचना की परम्परा को विकसित किया। वे प्राय: कहते थे कि सफल पूर्ति वही है जिसे सुनकर श्रोता फड़क उठें। रायगढ में एक समस्या दी गयी थी, 'आये है।' सनेही जी ने उसकी पूर्ति इस प्रकार की थी—

सिन्धु के है बिन्दु, कहते है सिन्धु-बिन्दु मे है
हवा से भरे हैं सिर ऊपर उठाये हैं।
कुछ पल ही मे फिर चलता पता न कुछ
तत्त्व जितने है सब तत्त्वो में समाये है।
अभिमान करे तो 'सनेही' किस ज्ञान पर
आज तक इतना भी जान नहीं पाये है।
भेजा किसने है और उसका अभीष्ट क्या है,
क्या हैं ? और कौन हैं ? कहाँ से हम आये हैं।

उपसंहार

सनेही जी ने जीवन के एक-एक क्षण को हिन्दी-सेवा में लगाया। शिष्यों की कविताओं में संशोधन करने में वे इतना व्यस्त रहे कि उन्हे अपने परिवार को देखने का अवकाश ही नही मिला। वे अपने युग के अकेले साहित्यकार थे, जिन्होने एक 'स्कूल' की स्थापना की थी जिसे आगे चलकर 'सनेही-स्कूल' की संज्ञा दी गयी। उन्होने खडीबोली को कविता के क्षेत्र मे पूर्णरूपेण विकसित किया। सम्पूर्ण भारत में उनके शिष्य थे जो उनसे प्रेरित होकर काव्य-रचना करते थे। सनेही जी जीवन भर अपने शिष्यो की आर्थिक स्थिति भी सुधारते रहे, यह बात बहुत कम लोगो को ज्ञात है। वे कवि-सम्मेलनो के माध्यम से तो पैसा दिलाते ही थे, आवश्यकता पडने पर कानपुर के रईसों को भी आर्थिक सहयोग के लिए प्रेरित करते थे। उनके प्रिय शिष्य श्री किशोरचन्द्र कपूर उनके निर्देश से प्रायः कवियो की आर्थिक सहायता करते थे। इस क्षेत्र मे वे अकेले थे जो कविता सुधारने के साथ कवियों की आर्थिक स्थिति सुधारने का भी ठेका लिये हुए थे। कवि-सम्मेलनो की परम्परा चलाकर उन्होने हिन्दी मचो को सुदृढ एव लोकप्रिय बनाया। उस समय उनके प्रभाव से जनता रुचि के साथ कवियो की वाणी सुनती थी और प्रत्येक कवि-को सम्मान प्राप्त होता था। उस समय पारिश्रमिक तय करके कवि नही बुलाये जाते थे। आज स्थिति दूसरी है। आज कवि-सम्मेलन मात्र मनोरंजन का साधन बन गये है। सनेही जी ने मंचो पर कभी कविता का स्तर नही गिरने दिया। साथ ही, उन्होने सभी को, बिना किसी भेद-भाव के काव्य-पाठ का अवसर प्रदान किया। वे राष्ट्रीय आन्दोलन के सूत्रधार रहे। अपनी रचनाओ द्वारा वे सत्याग्रहियो और वलिदानियो का मनोबल ऊँचा करते रहे। आजादी के बाद भी वे हिन्दी-सेवा मे प्रवृत्त रहे और जीवन के अन्तिम क्षण तक कवियो को प्रेरणा प्रदान करते रहे। वे दीपक की भाँति अपनी प्रतिभा की लौ जलाये रहे और तिल-तिल स्नेह जलाकर प्रकाश देते रहे। कोई भी बाधा या विरोध उनका आत्मविश्वास न डिगा सका। यह आत्मबल ही उनके प्रकाश का सम्बल था। वे सच्चे अर्थ में कवि थे जो स्वयं जलकर अँधेरो से जूझते रहे और अन्त मे उस अनन्तप्रभा मे विलीन हो गये जहाँ प्रकाश-ही-प्रकाश है। उन्होने स्वयं कहा था—

जगती का अँधेरा मिटाकर
आँखो मे आँख की तारिका होके समाये।
परवा न हवा की करें कुछ भी
भिडे आके जो कीट पतग जलाये।
निज ज्योति से दे नव ज्योति
जहान को, अन्त मे ज्योति से ज्योति मिलाये।
जलना हो जिसे वो जले मुझ-सा
बुझना हो जिसे मुझ-सा बुझ जाये।

□

सनेही जी का आवास जिसके ऊपरी कमरे में रहकर वे काव्य-रचना करते थे।
रेखाचित्र—डॉ० जगदीश गुप्त

गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'

डॉ० जगदीश गुप्त

'जलना हो जिसे वो जले मुझ-सा बुझना हो जिसे मुझ-सा बुझ जाये'

सनेही जी के देहावसान के साथ द्विवेदी-युग का अन्तिम सूर्य भी अस्त हो गया। कानपुर का परेड अस्पताल—मुन्नालाल प्राइवेट वार्ड, कमरा नं० १। पूर्व स्मृतियों मे डूबे लोहे के पलँग पर लेटे-लेटे वह कह रहे हैं—क्या बतायें, एक खन्ना पुरस्कार मिलता था, वह हमेशा हमीं को मिले। द्विवेदी जी निर्णयकर्ता थे। उनको भाषा क्यो पसन्द आये दूसरे की। बड़े सख्त सम्पादक थे द्विवेदी जी।

और मैं सोचने लगा कि उन्हे 'महावीर का प्रसाद' गुप्त जी की तुलना मे कम नही मिला, भले ही कमर कस कर उतना उन्होने न लिखा हो। द्विवेदी जी की 'सख्ती' का परिहार सनेही जी ने स्वसम्पादित 'सुकवि' में अतिशय उदार नीति अपना कर किया। पर भाषा के मामले मे टकसालीपन और इस्लाह की प्रवृत्ति द्विवेदी जी से नि:संकोच ग्रहण की। अतत कवि शिक्षा की परम्परा अपनाते हुए अपनी विशाल शिष्य-मण्डली के बीच स्वयं 'गुरु' हो गये। लोचनप्रसाद पाण्डेय ने उन्हे, राष्ट्रीय संस्कार और काव्य गरिमा के कारण, 'स्वराज-राजकवि' कहा, देवीदत्त शास्त्री ने 'काव्यलोक के कल्पतरु' की संज्ञा दी, नाथूराम शर्मा शंकर ने उनकी कविता का लोहा मानकर उन्हे 'शंकर का हथियार' घोषित कर दिया और उन्हे 'कवि सम्राट' कहने वालो की तो गिनती ही नही, विशेषत: कानपुर में। स्वयं उन्होने अपने को क्या समझा, क्या कहा यह उनके 'सनेही', 'त्रिशूल' जैसे प्रसिद्ध और 'अलमस्त', 'तरंगी' जैसे अप्रसिद्ध उपनामो से प्रकट है। 'सनेही जी' के भाषा-बोध को आज जो नही समझ पाते वे उनके नाम को 'सनेही जी' लिख देते हैं और प्रकट हो जाता है कि ऐसी शुद्धता कितनी हास्यास्पद होती है। द्विवेदी-युग भाषा के मामले में अतिशय सुधारवादी होने हुए भी ऐसा निर्विवाद एव जड नही था कि शुद्धता के काव्यात्मक मर्म को न समझ पाता, सनेही जी के घनाक्षरी-सिद्ध शिष्य अनूप शर्मा ने अपने गुरु की प्रशस्ति में यों ही नही लिख डाला—

'भाषा का विधान महावीर लेखनी ने किया, हिन्दी का सिंगार हुआ आपके कलम से।'

यह दूसरी बात है कि 'चित्र' की जगह उनकी दृष्टि मे 'मानचित्र' था पर सनेही जी कवि को 'मानव-चित्रकार' मानते थे और इस बात को गर्वपूर्वक कहते थे—

'मैंने न जाने कितनी कविता बना डाली और कितने कवि बना डाले।'

उनके इस कवि निर्माता रूप की प्रशंसा उन्हीं के समयुगीन मैथिलीशरण गुप्त और समशील माखनलाल चतुर्वेदी ने मुक्तकण्ठ से की है। रचना-शक्ति और सूझ-बूझ की खुले दिल से सराहना करते हुए कवि-निर्माण का जो ऐतिहासिक कार्य 'सनेही जी' और एक 'भारतीय आत्मा' के द्वारा लगभग समानान्तर सम्पन्न हुआ है वह हिन्दी के काव्य-क्षेत्र में द्विवेदी जी के कार्य से कम नही आँका जायगा, कुछ विलम्ब से ही सही पर उचित मूल्यांकन होगा अवश्य। मैं स्वयं दोनों के सम्मिलित गुरुत्व का फल हूँ और यह कहने में मुझे गर्व का अनुभव होता है। जहाँ चतुर्वेदी जी ठहरते थे वह मनीराम बगिया, लाठी मोहाल के सुकवि कार्यालय से दूर ही कितनी है। जिसने मेरी तरह कानपुर में काव्योन्मेष के प्रारंभिक वर्ष बिताये होंगे वह 'प्रताप' और 'वर्तमान' की एकात्म राष्ट्रीय चेतना की तरह दोनो कवि गुरुओ की आत्मिक सन्निकटता का भी साक्षी रहा होगा। जिस तरह 'मुझे तोड़ लेना वनमाली' कविता ने बहुतो को 'मातृभूमि पर शीश चढ़ाने' की सच्ची प्रेरणा दी उसी तरह सनेही जी की ये पंक्तियाँ भी राष्ट्रीय आन्दोलन के जमाने से लेकर स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद तक सब के लिए प्रेरक बनी रही—

जो भरा नही है भावो से बहती जिसमें रसधार नही।
वह हृदय नही है पत्थर है जिसमे स्वदेश का प्यार नही।*

*राष्ट्रीयतापरक, रचनाओ में 'त्रिशूल' के रूप में उनकी क्रान्तिकारी कविताएँ मिलती हैं। यथा—

१. तिरंगे की शान पर

निकले खरे कसौटो में हर इम्तिहान पर,
बरसों ही बाम बटते रहे आन-बान पर,
कितने जवान खेल गये अपनी जान पर
आने दी आँच पर न तिरंगे की शान पर,

तदबीर से बनाने को तकदीर चल पड़े।
दीवाने तोड़-तोड़ के जंजीर चल पड़े।

२. अतीत गौरव

शानदार था भूत भविष्यत् भी महान् है।
अगर सँभालें आप उसे जो वर्तमान है।

३. विद्यार्थी जी की मृत्यु पर (१६३०) उनका गीत देखें—

दीवान-ए-वतन गया जंजीर रह गयी
चमकी चमक के कौम की तकदीर रह गयी।

कहने को हम कितने ही अन्तर्राष्ट्रीयतावादी क्यों न हो गये हों पर क्या स्वार्थपरता की छाया में सोये हुए स्वाभिमान को जगाये रखने के लिए यह आज भी स्मरणीय नहीं है। इनमें 'भारत-भारती' जैसा खरा स्वदेश-प्रेम तो है ही, साथ ही, उनकी सीमित हिन्दू

जालिम फलक ने लाख मिटाने की फ़िक्र की।
हर दिल में अक्स रह गया तस्वीर रह गयी।

४. बलिदान के उत्सुक शीर्षक कविता

मानी मन मानता नहीं है, मुझे रोको मत,
मातृभूमि बानी बिना मानी रह जायेगी,
जीवन के युद्ध में है आने का सुयोग,
फिर जोश ही रहेगा न जवानी रह जायेगी,
एक दिन जानी जान, जानी यह जानी बात,
कुछ तो जहान में निशानी रह जायेगी,
धीरता की धाक बँध जायेगी विरोधियों में
वीरता की विश्व में कहानी रह जायेगी।

५. कानपुर का क्रान्तिकारी महत्व

लवकुश अश्व बाँध कर बिना सेना लड़े
लंक-जेता बाप से भी हार नहीं मानी है।
भूषण की बानी ने चढ़ाया ऐसा पानी यहीं
चमकी भवानी भक्त शिवा की भवानी है।
पहले स्वतंत्रता-समर में सनेही यहीं
नाना राव से मरी फिरंगियों की नानी है।
नाम सुनते ही, हैं पकड़ते विपक्षी कान
यह कानपुर है, यहाँ का कड़ा पानी है।

६. गुरु गोविन्द सिंह संबंधी रचना

भौंहें हुईं बक्र शर आ गया शरासन पै,
पर-हीन पर ऐसा पैना पर हो गया।
सर-सर चलाकर धड़ से उड़ाता हुआ,
अन्धड़ कहो कि कहो 'सर-सर' हो गया।

राष्ट्रीयता से भी मुक्त है। सनेही जी की राष्ट्रीयता और भाषानीति दोनों प्रारम्भ से ही साम्प्रदायिक संकीर्णता से ऊपर रही है। इस मामले में उनका स्वभाव प्रेमचन्द जी से मिलता-जुलता दिखायी देता है जो द्विवेदी-युग से कुछ आगे की मंजिल पर है। अपने जन्म-स्थान हड़हा में समाये 'शेखपुर' और 'इन्द्रपुर' के मिश्रित संस्कार उनमे पूरी तरह उतर आये हैं। प्रसाद जी ने उनके हिन्दी-उर्दू पर समान अधिकार की सराहना की है। यही नहीं बैसवाडे का फक्कडपन और अक्खडपन भी उनकी नस-नस मे समाया था। उन्नाव जिले का पानी निराला से पूर्व सनेही की कविता पर सान की तरह चढ चुका था। वहाँ के स्वभाव पर उन्होने जो आत्मीयतापूर्ण व्यंग्य अपनी बैसवाडी बोली में लिखा है वह सस्मयापूर्ति मात्र नही लगता। यद्यपि उसे लिखकर उन्होने हितैषी जी को दे दिया था पर गुरु का रग इतना गहरा है कि उसे पहचान लेना मुश्किल नही है—

तोता मैना हम न पढी तौ कहौ कैसे पढी,
खोपरी खपावै कौन पढ़ब गा भारे मा।
खेती-बारी कैसे करी काम काछी कुरमी का,
बनिया न वाटू हिंया को परै कबारै मा।
चारि मास आम खायँ, चारि अठ्ली चवायँ,
चारि मास बीतैं ससुरारि के सहारे मा।
गट्टा मे गढ़ित है, बसति बैसवारे मा।

सनेही जी जैसी भाँग घोटने की प्रसिद्धि रखते हुए भी मुझे विश्वास है कि इसे पढकर डॉ० रामविलास शर्मा अवश्य फडक उठेंगे। यह आकस्मिक नही है कि उन्होने सत्तर पार करने के बाद भी एक ठसक के साथ भाषा का तेवर दिखाते हुए लिखा—

चसका वही है नवरस का सनेही अभी टसका।
टसका नहीं हूँ मैं अठत्तर बरस का।

यह छद 'इकत्तर' मे बना और नयी रचना के रूप मे एक ही शब्द बदल-बदल कर अठत्तर तक चलता रहा, क्या यह कमाल की बात नही है। इसके बाद 'गुरु' ने 'वरस नवासी' का चलाना चाहा पर वह छंद इतना दमदार साबित नहीं हुआ। वैसा चुटीलापन उसमे तनिक भी नहीं आ सका। सचमुच सनेही जी को बुढ़ापा यही आकर परास्त कर

अचल सचल हुए, विचल विरोधी गये,
भागे भट भीरु सम भर-भर हो गया।
आ गया अकाल काल कहता हुआ अकाल,
वैरी रेत खेत हुए खेत सर हो गया।

पाया। अन्यथा वे हमेशा अपने चिकने, बेहद पतले मुलायम और एकदम काले बालों की ओर इशारा करते हुए अन्त तक मुझसे कहते रहे, देखो, तुम्हारे बाल सफेद होने लगे हैं और मेरे अभी तक काले हैं ज्यों-के-त्यों, वह अपने बिगड़े हुए श्रवणयंत्र की कीमत के प्रति काफी सजग थे। कभी इसे चार सौ का कभी पाँच सौ का बताते थे पर जो मर्म की बात उसके संदर्भ में उन्होंने कही वह उनके कविता सुनने और सराहने के पीछे निहित दायित्व-शीलता का प्रमाण है। बोले—उसे कवि-सम्मेलन में लगाना जरूरी था। कहीं गलत जगह तारीफ कर दी तो गजब ही समझो। सही जगह दाद देने की इतनी चिन्ता उन्हें थी कि रोग-शय्या पर भी वे उसे भुला न सके। सनेही जी ने अपने जीवनकाल में 'कवि-सम्मेलन' को हिन्दी भाषा और हिन्दी कविता की प्रतिष्ठा का अद्वितीय साधन बनाकर अद्भुत सिद्धि प्राप्त की। उनके साथ 'अखिल भारतीय' एवं 'विराट्' कवि-सम्मेलनों की परम्परा भी समाप्त हुई समझिये। जो आन्दोलनात्मक तथा ऐतिहासिक उपयोग इस माध्यम का होना था सो हो चुका। आज की महत्त्वपूर्ण कविता, गोष्ठी और संवाद के आत्मीयतापूर्ण तथा कम दिखावटी वातावरण की अपेक्षा रखती है। उन्हें अपने समय में रत्नाकर जी, हरिऔध जी तथा हिन्दी की अन्य अनेक सम्मान्य विभूतियों को मंच पर ले आने का श्रेय प्राप्त है। स्वयं वे हिन्दी साहित्य सम्मेलन के जनाकीर्ण अधिवेशनों मे कवि-सम्मेलन के कई बार सभापति बने तथा अन्त में इन सब सेवाओं के लिए उन्हें 'साहित्य वाचस्पति' की ताम्रपत्रित उपाधि तथा डी० लिट्० की सम्मानसूचक कागजी डिग्री प्राप्त हुई। 'कागजी' शब्द का प्रयोग मैंने जानबूझ कर किया है क्योंकि सनेही जी के समीप जब मैं पहुँचा तो वे कुछ घरेलू प्रश्न पूछने के बाद तपाक से कह उठे—'तुम डॉक्टर हो, डॉक्टर मैं भी हो गया हूँ अब, डी० लिट्०।' फिर कुछ याद करते हुए बोले—'यह जो सनद मिली है, रद्दी कागज पर है। मिडिल के सर्टिफिकेट मे कपड़ा चढ़ा रहता था। मैं उनके व्यंग्य के बेलौसपन से चकित हो गया। सरकार अपनी है और उसने उनकी चिकित्सा आदि की वर्षों तक अच्छी व्यवस्था बनाये रखी, इसके लिए उनके मन में कृतज्ञता का भाव एक विचित्र राष्ट्रीय संस्कार के साथ जब तब उमड़ आता था और वे कहने लगते थे—

'दवा और कमरा सरकार की तरफ़ से मिला हुआ है। सौ रुपया और आता है, ऊपर के खर्च के लिए। अब दस हजार का पुरस्कार भी मिल गया है यह तो जानते ही हो। मैंने उसे बिटिया (पोती) के ब्याह के लिए रखवा दिया है। एक पुत्र मोहन प्यारे शुक्ल और एक पुत्री कृष्णा मिश्रा। तीन पौत्र। अब चौथी पुश्त चल रही है। इसके सिवा और चाहिए ही क्या!' फिर सहसा आत्मगर्व से प्रदीप्त होकर बोले—

''सबसे बड़ा काम हमने 'सुकवि' निकाल कर किया। गाँव-गाँव में कवि बन गये। पहले कवि को जादूगर समझा जाता था यानी खास आदमी। हमने उसे आम कर दिया—हर कोई कविता कर सकता है। इस बारे में जो लिखना उसमें 'त्रिशूल' का जिक्र जरूर करना। उस रूप में हम अंग्रेजी के खिलाफ लिखते रहे जमकर।

'त्रिशूल' नाम से हमारे हाकिम डिप्टी लोग घबराते थे। छपी थी 'त्रिशूल-तरंग' कभी और फिर 'कमला कादम्बिनी' भी। मुझे सहसा उनके अन्तिम छन्द की पंक्ति याद आ गयी 'कुटिल कलेजों में त्रिशूल हो के कसका।' मैं उनकी मौन मुख-मुद्रा देखने लगा। झुर्रियों भरा चेहरा कितने अनुभवों की रेखाओं से बना था, पतले पान रँगे होंठ कितनी बार गरज कर शान्त हो चुके थे—आकृति में पूरे युग का इतिहास समाया हुआ था। मैंने देखा—सहसा जैसे कुछ अवांछित आकार उनके मन में अटक गया हो और उसे अधमुँदी आँखों से देखकर वे ठिठक गये हों। कुछ देर सकते की हालत में गुमसुम रहने के बाद अकस्मात् कुछ अजब से पीड़ा भरे स्वर में कह उठे :

"हितैषी और अनूप दोनों नहीं हैं और हम बैठे हैं," अब वह दिन भी आ गया है अब वह न बैठे रहे न लेटे। मृत्यु के भय से उनका कवि मन तो पहले ही पार आ चुका था, २१ मई को उनकी आत्मा भी रोग और मृत्यु की यातना के पार चली गयी।

लघु मिट्टी का पात्र था, स्नेह भरा जितना उसमें भज जाने दिया।
घर बत्ती हिये पर कोई गया, चुपचाप उसे घर जाने दिया।
पर हेतु रहा जलता मैं निशा भर, मृत्यु का भी डर जाने दिया।
मुसकाता रहा बुझते, हँसते-हँसते सर जाने दिया॥

दीपक के प्रतीक को उनकी निजी अनुभूति ने कैसा आत्मोत्सर्गमय रूप प्रदान कर दिया है। 'सनेही' शब्द इसमें नहीं आया है पर 'स्नेह' का श्लेषार्थ उसे अपने में सहेजे है। पता नहीं उस दिन उन्हें क्या विचार आया कि अपना जन्म-दिवस स्वयं बताने लग गये—'सम्वत् १९४० श्रावण त्रयोदशी—अट्ठासी का हो चुका था, अब नवासी भी पार हो गया हूँ। यूरीन में रुक-रुक कर ब्लड आता है। कहते-कहते यो चुप हो गये जैसे कुछ और कहना चाहते थे पर बीच ही में उसे भूल गये हों। सहसा उनका स्वर स्पष्ट हुआ 'अब आज कल ठण्डाई सब बंद, दवाइयाँ खाता हूँ बस, इन्जेक्शनों के सहारे जी रहा हूँ। सारी देह छलनी हो गयी है।'

उनकी व्यथा ने कहीं मेरे मन को झकझोर दिया। कैसी जिन्दगी जी उन्होंने और अब कैसा हाल हो गया है उनका। सिरहाने खिसक कर उनके मत्थे पर हाथ फेरने लगा। उन्होंने सुखस्पर्श पाकर आँखें मूँद लीं, कुछ देर गहरा मौन हमें कुण्डली मार कर घेरे रहा। अब वह टूटा तो मैं सुन रहा था—

'मुझे रुपया देने वाले चल बसे—हरगोविन्द मिश्र जो 'राष्ट्रीय मोर्चा' निकालते थे, लाला फूलचन्द, उनके लिए क्या कहूँ।'

मैंने कहा किशोरचन्द कपूर तो हैं पर वे शायद सुन नहीं सके। मैं जानता हूँ कि 'सुकवि' को अनेक बार कपूर जी ने आर्थिक संकट से उबारा पर वह तो एक दिन की बात थी नहीं, निरन्तर का संघर्ष था जिसे उसके संपादक को ही यथाशक्ति झेलना पड़ता था। कोई मुण्डन पर कविता लिखाने आता, कोई विवाह पर स्वागत-गान। जरूरत अब दूसरे

उपायों से पूरी नहीं होती थी तो सनेही जी वह सब-कुछ भी लिख-लिखा दिया करते थे। पैसा आता था तो उससे कागज, स्याही और छपाई के अन्य सामान के साथ भाँग-ठण्डाई की भी व्यवस्था हो जाती थी। रोगशय्या पर पड़े-पड़े धन तो ज्यों-त्यों सुलभ होता रहा पर जो कमी उन्हें सबसे ज्यादा महसूस होती थी उसे समझ पाना उसी के लिए सम्भव है जो उनके दरबार की जिन्दादिली का थोड़ा-बहुत मजा ले चुका हो। किशोरचंद कपूर का हींग द्वारा सुवासित कमरा बिहारी की उक्ति 'राखौ मेलि कपूर में हींग न होय सुगन्ध' को असत्य सिद्ध करता हुआ वर्षों तक काव्य-सौरभ से सुवासित होता रहा। 'गुरु' की कृपा से कपूर जी ने भी कृष्ण-लीला विषयक हजारों दोहे लिखे, छपाये और सजिल्द ग्रंथों के रूप में 'मूल्य केवल प्रेम' के भाव से बाँट दिये। मैं मान गया हर कोई कवि हो सकता है पर कैसा? यह प्रश्न यहाँ उठाना अप्रासंगिक है। महापालिका कानपुर द्वारा प्रकाशित सनेही अभिनन्दन ग्रन्थ में उन्हें श्रद्धाञ्जलि देते हुए भगवती बाबू का यह कहना गलत नहीं है कि 'सनेही जी रीतिकालीन परम्परा के कवि हैं।' पर इसके साथ उनको यह भी कहना चाहिए था कि वे उससे बँध कर नहीं रह गये। उनको रूढ़ियों का तोड़ना भी पसन्द आता था और उनका युग-बोध रीति कवियों की अपेक्षा कहीं अधिक जागृत था। 'निराला' को जब हिन्दी के रूढ़िवादी आलोचक मुक्त छन्द के लिए तरह-तरह से कोस रहे थे उस समय सनेही जी ने उनके कृतित्व को सराहते हुए लिखा—

पिंगल के पंजे मे पड़ी थी छवि क्षीण हुई,
कविता को काले कारागृह से निकाला है।
समझे न कोई मैं सनेही मैंने समझा है,
कवि है, सुकवि है, महाकवि निराला है।

स्वतन्त्रता संग्राम और गांधीवाद का स्वागत तो उन्होंने उन्मुक्त होकर किया ही था—

सिक्का मलमल की जगह बैठ गया खादी का।
हर तरफ शोर मचा मुल्क में आजादी का।

उन्होंने क्रान्ति का सन्देश भी तरुणाई को दिया यद्यपि उसमें उतनी गहराई नही दिखायी देती जितनी उनकी कुछ राष्ट्रीय कविताओं मे मिलती है—

क्रान्ति के बिना कहाँ है शान्ति
जवानो उठो कर दो क्रान्ति।

आज उनकी यह मुद्रा नाटकीय लगती है। यों साम्यवाद की उनकी परिभाषा से कौन सहमत नहीं होगा—

पृथ्वी पानी पवन पर सब का सम अधिकार।

सनेही जी की हाजिरजवाबी के सैकड़ों किस्से उनके जानने वालों को याद हैं। उत्साहित होने पर बहुत से स्वयं सुनाते थे। अपने विरोधियों को वे कभी माफ नहीं कर पाते थे। विशेषतः अगर उसमें उनके जमे हुए रंग को उखाड़ने की साजिश होती थी।

विरोधी पार्टी को 'मच्छड़ पार्टी' नाम दे रखा था उन्होंने और उसके लीडर रामाज्ञा द्विवेदी 'समीर' को परास्त करने की न जाने कितनी तरकीबें अपने शिष्यों को सिखा रखी थीं।

सन् १९४२ से मुझे सनेही जी का वात्सल्य अजस्र रूप से उनके जीवन के अन्तिम दिनों तक सुलभ रहा। जितनी सराहना और सीख मुझे कविता के विषय में उनसे मिली उसकी माप करना मेरे लिये सम्भव नहीं है, नयी कविता का जहाँ और लोग विरोध करते रहे वहाँ उन्होंने उसकी सुच्चे अर्थों में प्रशंसा की। बदलाव को वे जीवन की प्रवहमानता का द्योतक समझते थे और कविता को कैद कर देने के कतई कायल नहीं थे, चाहे बन्धन कितने ही कीमती क्यों न हों।

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
प्रयाग विश्वविद्यालय
प्रयाग

□

राष्ट्रीयता के प्रतिनिधि कवि सनेही-त्रिशूल

श्री नरेशचन्द्र चतुर्वेदी

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ-काल से राष्ट्रभाषा हिन्दी की काव्यधारा का सफल और सबल नेतृत्व करने वाले जिन गिने-चुने कवियों के नाम साहित्य के इतिहास की वस्तु बन गये हैं, उन्हीं में से एक नाम है पं० गयाप्रसाद शुक्ल सनेही जी का। खड़ीबोली कविता को सजाने-सँवारने और प्रतिष्ठित कराने में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के भगीरथ प्रयत्नों को जिन कवियों के कृतित्व से सफलता प्राप्त हुई, उन कृती कवियों में सनेही जी का अप्रतिम स्थान है। आज की हिन्दी कविता गहन गह्वरों को पाटती हुई जिन नये क्षितिजों का संकेत दे रही है, उसकी पृष्ठभूमि में जिन साधकों की साधना का योगदान रहा है, सनेही जी उनमें से एक हैं। कार्य की विशिष्टता और भाषा की एक दिशा-विशेष का सदैव दृढ़तापूर्वक नेतृत्व करते रहने के कारण, सनेही जी न केवल एक कवि के रूप मे प्रत्युत एक युग और एक स्कूल के नाम से साहित्यिक इतिहास के अंग बन चुके हैं।

सनेही जी ने साहित्य-क्षेत्र में जब कवि रूप मे पदार्पण किया था, तो वह युग हिन्दी के लिए ही नहीं, हिन्दुस्तान के लिए भी भीषण परिस्थितियों का काल था। पराधीनता के विकराल मुख में भारतीय जनता कराहते हुए मुक्ति के लिए छटपटा रही थी। समाज के अंग-अंग गतिहीनता और शैथिल्य के शिकार थे; किन्तु साथ ही, जातीय चेतना कुनमुना रही थी। देश प्रत्यक्ष रूप से दैन्य से ग्रस्त था और व्यक्ति परोक्ष रूप से ज्वालामुखी की भाँति भीतर-ही-भीतर सुलगने लगा था। विदेशी शासन और उसके अलमबरदारों के अत्याचार से संत्रस्त सर्वसाधारण की आँखो में आँसू होते हुए भी, उसके मिटाने का हौसला जगने लगा था। सदियों से सोयी भारत की आत्मा करवट बदलने की तैयारी कर रही थी। राजनैतिक स्वाधीनता, आर्थिक और सामाजिक समता तथा सांस्कृतिक गतिमयता के लिए देश में उथल-पुथल मचने लगी थी। राजनैतिक चेतना के उदय और स्वाधीनता संग्राम के लिए गूँजने वाली तिलक और गांधी की वाणी को कविता के माध्यम से सर्वसाधारण तक पहुँचाने का काम जिन कवियों ने अपना धर्म बनाया था, उनमें सनेही जी का नाम सर्वोपरि है। आर्थिक एवं सामाजिक समता के लिए मार्क्स और गांधी जैसे मनीषियों के स्वरों को जिन कवियों ने अपनी काव्य-वीणा पर झंकृत किया, उनमें सनेही जी का प्रमुख स्थान है। दयानन्द, विवेकानन्द, रवीन्द्र प्रभृति सांस्कृतिक चेतना के प्रहरियों की मानस छवियों को सनेही जी ने अपनी रचनाओं में अंकित किया है।

साहित्य की दशा भी तत्कालीन समाज की दुर्व्यवस्था से भिन्न नहीं थी। हिन्दी भाषा का परिनिष्ठित स्वरूप बन रहा था। ब्रजभाषा का माधुर्य काव्य की कोमल कल्पनाओं को सम्हालने में सक्षम था। परन्तु सामाजिक विस्फोट की धमक सम्हालने की शक्ति उसमें नहीं थी। दुनिया के बदलते हुए रूप तथा बढ़ते हुए वेग को साहित्य के नये मार्ग की आवश्यकता थी। विषय, भाषा, शिल्प, प्रतीकादि सभी में नवोन्मेष की माँग अनिवार्य हो गयी थी। हिन्दी के गद्य-पद्य की भाषा एक बनाने, हिन्दी भाषा का परिष्कार करके उसे व्याकरण-सम्मत बनाने तथा काव्य-क्षेत्र में प्रतिष्ठित करने का आन्दोलन आचार्य द्विवेदी जी ने छेड़ रखा था। हिन्दी और उर्दू की समस्या, हिन्दू और मुसलमान की तरह ही विकास और निर्माण के क्षेत्र में बाधक बन कर खड़ी थी। देश और साहित्य की ऐसी ही विषम अवस्था में सनेही जी ने अपने कवि का निर्माण तथा विकास किया। देश और समाज की जो भी समस्याएँ और दायित्व थे, उन सभी की ओर सनेही जी ने अपनी दृष्टि उठायी। अपने दायित्व के प्रति वे सदैव जागरूक रहे। एक स्वस्थ और उदात्त दृष्टिकोण उनकी रचनाओं में स्पष्टतः उभरता दिखायी पडता है। वे समस्याओं के जाल में उलझने के बजाय साफ और सीधा मार्ग ग्रहण करके चलते रहने के पक्षपाती थे। इसीलिए वे साफगोई अर्थात् स्पष्टवादिता के लिए प्रसिद्ध हैं। सरकारी रीति-नीति, हिन्दू-मुसलमान तथा हिन्दी-उर्दू का प्रश्न उठाने वालों के प्रति उनकी यह उक्ति कितनी सटीक है :

अब वतन देखूँ कि सरकार की अवरन देखूँ,
हिन्द वो देखूँ कि अब मुसलमा हिन्दू देखूँ।
तहकी समझेंगे सखुनफहम जवाँ हो कोई,
काम अपना करूँ या हिन्दिओ उर्दू देखूँ॥

सनेही जी उर्दू तथा फारसी के पण्डित थे। उनका दोनों साहित्य का अनुशीलन बहुत गहरा था। उर्दू को जब एक अलग भाषा के रूप में मान्यता देने के लिए हिन्दी के विरुद्ध व्यूह-रचना की गयी तो अधिकारी प्रवक्ता के रूप में उन्होंने घोषणा की :—

नहीं है तत्त्व कोई और इस उर्दू के ढाँचे मे,
ढली है देखिये यह पूर्णतः हिन्दी के साँचे में।

कहने की आवश्यकता नही कि आधी शताब्दी बीतने के बाद भी सनेही के उपर्युक्त कथन की सत्यता सिद्ध है। भाषा की दृष्टि से उर्दू हिन्दी की ही एक शैली है; हिन्दी से अलग उसके अस्तित्व को मानना कठिन है। सनेही जी को एक ओर हिन्दी भाषा की क्षमता को सिद्ध तथा काव्य-सौन्दर्य एवं विषय-वैविध्य की रक्षा करनी थी, तो दूसरी ओर देश और समाज के जीवन में जो नयी चिन्तनाएँ तथा क्रियाएँ जन्म ले रही एवं घटित हो रही थीं, उन्हें काव्य के द्वारा प्रचारित-प्रसारित करना था।

इन दायित्वों को सनेही जी ने सदैव निभाया। प्रारम्भिक आवश्यकताओं की पूर्ति

उन्होंने बड़े मनोयोग से की। कहना चाहिये कि गहरी नींव को पाटने में ही उनका बहुत-सा समय लग गया। उद्देश्यपूर्ति के लिए स्वयं तथा देश-व्यापी शिष्य-मण्डल तैयार करके कवि-सम्मेलनों तथा सुकवि द्वारा राष्ट्रीय भावनाओं का प्रचार-प्रसार करने में उन्होंने महत्त्वपूर्ण योगदान किया।

कुछ लोगों का मत है कि कला का सामयिक होना श्रेष्ठता की दृष्टि से दुर्बल हो जाना है। सामान्यता, कला का गुण नहीं है और चूंकि कविता भी कला है, अतः उसमें भी सामान्य का स्थान नहीं है। यह ठीक है कि सामान्यता कला को कालातीत नहीं बनने देती; परन्तु काल निरपेक्ष सृजन भी काल सापेक्ष्य ही होता है। सृजन-कार्य में सामान्यता और विशिष्टता दोनों ही आवश्यक हैं। कला का क्षेत्र ही एक ऐसा क्षेत्र है, जिसमें सामान्य को विशेष बना कर आनन्द की प्राप्ति होती है। मर्त्य को अमरत्व और असुन्दर को सौन्दर्य प्रदान करने की क्रिया ही उसका कर्म है। यह भी सही है कि विशिष्टता उच्च धरातल पर कृति को कालजयी और सामान्य को कालपायी बनाती है। कालजयी कृतित्व के कर्त्ता वन्दनीय हुआ करते हैं; परन्तु समय की पुकार को जो लोग पूरा करते हैं, उनका महत्त्व भी कम नहीं होता। वे इतिहास की आवश्यकता को पूरा करते हैं। काल की चाल ऐसे कृतिकारों के कृतित्व से देखी-परखी जाती है।

सनेही जी ने जहाँ सामयिक दायित्व का निर्वाह किया, वहाँ साहित्य के स्थायी मूल्यो वाली रचनाओं से भी साहित्य का भण्डार भरा है। समय की पुकार को उन्होंने अनसुना नही किया और न समाज से मुंह मोड़ कर केवल कल्पना लोक में विचरण करना पसन्द किया। कला से अधिक इतिहास की आवश्यकता की पूर्ति उन्होंने की। सनेही जी का 'त्रिशूल' रूप उनके सामयिक सत्य का उद्घोषक है।

भाषा की दृष्टि से सनेही हिन्दी के और 'त्रिशूल' उर्दू या हिन्दुस्तानी के कवि कहे जाते हैं। विषय की दृष्टि से सनेही व्यक्ति के प्रतिनिधि हैं तो 'त्रिशूल' समाज के। सनेही की रचनाएं श्रेष्ठ कला कृतियाँ हैं तो 'त्रिशूल' की तत्कालीन देश और समाज का दर्पण। काव्य-शास्त्र के साथ कला-पक्ष का सम्यक् विकास सनेही की कविताओं में हुआ और तत्कालीन जीवन की विकलता एवं हाहाकार का सफल चित्रण त्रिशूल ने किया। काव्य की स्थायी मान्यताएँ सनेही में मिलेंगी और जन-नेतृत्व की सामयिक भावनाएँ त्रिशूल में। त्रिशूल की कविताएँ राष्ट्रीय स्वाधीनता, सामाजिक जीवन, विद्रोह तथा जन-जागरण की जीवन्त युगीन तस्वीरें हैं। राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य के त्रिशूल वैताली हैं। बिना संकोच यह कहा जा सकता है कि गत अर्द्धशताब्दी के हिन्दुस्तान की हलचल त्रिशूल की रचनाओं मे स्पष्टतः देखी जा सकती है। सम्भवतः हिन्दी का अन्य कोई कवि ऐसा नहीं है जिसकी रचनाओं में राष्ट्रीय स्वाधीनता के इतने सहज और समग्र दृश्य अंकित हुए हों।

सनेही जी के प्रेम में मानवता की उपेक्षा नहीं होती। वे मानव मात्र के कल्याण की कामना रखते हैं। गांधी की रामराज्य की कल्पना उन्हें प्रिय है। न वे मार्क्सवाद के

प्रचारक हैं और न व्यक्तिवाद के; वे अलमस्त फक्कड़ कवि रहे हैं, इसलिए उन्हें व्यक्तिवादी कहना गलत होगा; और गरीबों, मजदूरों, किसानों के प्रति उनकी ममता गहरी है, इसलिए इन्हें साम्यवादी सिद्ध करना भ्रान्तिमूलक होगा। सच तो यह है कि वे शुद्ध भारतीय राष्ट्रवादी कवि हैं। देश-प्रेम और मानव-प्रेम उनके काव्य में सर्वाधिक महत्त्व का पहलू है। इस कार्य में देशी-विदेशी सभी महापुरुषों तथा उनके विचारों के प्रति सनेही जी का उदात्त दृष्टिकोण रहा है।

सनेही जी का यह कार्य भी कम महत्त्व का नहीं है कि उन्होंने खड़ीबोली में ब्रजभाषा के समान, घनाक्षरी-सवैया आदि छन्दों में कोमल एवं प्रभावपूर्ण काव्य-रचना करके दिखायी। सनेही तथा उनके शिष्यों के छन्दों को देख-पढ़ कर यह भली-भाँति जाना जा सकता है कि घनाक्षरी तथा सवैया छन्दों में खड़ीबोली कविता वैसी ही मार्मिक और प्रभावशाली है, जैसी ब्रजभाषा में। इन दोनों छन्दों को खड़ीबोली में उत्कृष्टता तक पहुँचाने वाले सनेही जी तथा उनके मण्डल के कवियों एवं मुख्यतः 'हितैषी' तथा 'अनूप' अविस्मरणीय हैं।

समस्यापूर्ति के क्षेत्र में भी असीमित भावराशि का प्रणयन और प्रकाशन करने तथा कवि-सम्मेलनों एवं हिन्दी भाषा-साहित्य के द्वारा जनरुचि को परिष्कृत करने का कार्य भी सनेही जी का महत्त्वपूर्ण प्रदेय है।

सरलता और सादगी में भी काव्य-चमत्कार सुरक्षित रह सकता है। इस प्रकार के युगीन प्रश्नों का सनेही जी ने अपनी रचनाओं के माध्यम से उत्तर दिया है। लक्षण ग्रन्थों के अनुसार वियोग की दशाएँ, रसात्मकता, आलंकारिक प्रयोग सनेही जी के छन्दो में उज्ज्वलता के साथ चित्रित हुए हैं। पुराने छन्दों में नव-नव भावराशि का सम्प्रेषण, प्राचीन काव्यधारा में नवीनता के विभिन्न प्रयोग सनेही तथा उनके मण्डल की विशेषता रही है। प्रयोगों में उर्दू बहरों के अतिरिक्त संस्कृत वृत्तों में भी सनेही जी ने सर्वोत्तम रचनाएँ की हैं। कौशल्या-विलाप रचना की ये पंक्तियाँ—

तन-मन जिसपे मैं वारती थी सदैव,
वह गहन वनो में जायगा हाय दैव।
सरसिज तनु हा हा कण्टकों में खिलेगा,
घृत-मधु-पय-साला स्वेद से ही सिंचेगा।
यह हृदय विदारा दृश्य मैं देखती हूँ,
पवि हृदय बनी हूँ आज भी जी रही हूँ।
शठ, पतित, अभागे प्राण जाते नहीं क्यों,
रह कर तन में ये जलाते नहीं क्यों॥
× × ×
दिनकर कमलों को स्वच्छ देता सुहास,
शशि कुमुदगणों को रम्य देता विकास;

जलद बरसते हैं भूमि में अम्बुधारा,
सुजन बिन कहे ही साधते कार्य सारा ॥

द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मक पद्धति पर सनेही जी द्वारा रची कई श्रेष्ठ रचनाओं का सौन्दर्य द्रष्टव्य है। चित्रात्मकता का एक उदाहरण 'शैव्या-सन्ताप' से प्रस्तुत है—

उदासी घोर निशि में छा रही थी,
पवन भी काँपती थर्रा रही थी।
विकल थी जाह्नवी की वारि धारा;
पटक कर सिर गिराती थी कगारा ॥
घटा घनघोर नभ पर घिर रही थी,
विलखती चंचला भी फिर रही थी।
न थे वे बूंद आँसू गिर रहे थे,
कलेजे बादलों के चिर रहे थे।
× × ×
कहीं धकधक चिताएँ जल रही थीं;
विकट ज्वाला उगल प्रतिपल रही थीं;
कहीं शव अधजला कोई पड़ा था,
निठुरता काल की दिखला रहा था।

आधुनिक हिन्दी कविता ने आचार्य द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मकता से लेकर प्रतीकात्मक छायावाद तक की जो मंजिल पूरी कर उसके बीच जितने प्रयोग हुए उनसे अलग परम्परागत छन्दों में ही उन प्रयोगों का समावेश करके सनेही जी ने जिस काव्यधारा को सूखने नहीं दिया, उस विशिष्टता को सनेही-स्कूल की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। यों छायावादी प्रतीक-विधान और सांकेतिकता की छवियों का समावेश सनेही जी के छन्दों में भी देखा जा सकता है। सनेही जी काव्य-जगत् में भाषा की दृष्टि से अप्रतिम हैं। मुहावरेदार भाषा का प्रयोग हिन्दी काव्य-क्षेत्र में इनके अतिरिक्त कदाचित् ही कहीं अन्यत्र मिले। आजाद हिन्द फौज पर लिखी रचना की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

थर्राया आसमान जो भौंहों में बल पड़े,
उमड़ा वो जोश जोर के दरिया उबल पड़े।
काँधे पै गन हथेली पे सर लेके चल पड़े,
जयहिन्द कहके शेरे दिलावर निकल पड़े।
निकले जिधर से साफ ही मैदान कर दिया,
दम भर में सारे खेत को खलिहान कर दिया।

उपर्युक्त पंक्तियों में भौंहों में बल पड़ना, हथेली में सिर ले के चलना, मैदान साफ करना, खेत का खलिहान कर देना जैसे लोकविश्रुत मुहावरों के सटीक प्रयोग ने कविता

को जनता की जबान दे दी है। सनेही जी के काव्य की अभिव्यक्ति की स्पष्टता और भाषा की स्वच्छता ने जनता के जीवन में रस घोल दिया है। जिन थोड़े-से हिन्दी-कवियों की रचनाएँ देश की आम जनता में लोकप्रिय हुईं उनमें सनेही प्रमुख स्थान रखते हैं। सनेही जी निश्चय ही उन कवियों में हैं जो अपनी कविता के माध्यम से जनता के दिल दिमाग पर सीधा असर डाल सकने में समर्थ हुए। सनेही जी खड़ीबोली की स्वच्छता तथा मुहावरेदार भाषा लिखने के लिए अपने समकालीन कवियों में अद्वितीय हैं। लोकप्रचलित कहावतों, कथाओं, घटनाओं और प्रसंगों से उनकी रचनाएँ अलंकृत हैं। सनेही जी की यह सबसे बड़ी विशेषता रही है कि वे सदैव जनता के कवि रहे। जन भावनाओं का समादर उन्होंने साहित्य के प्रत्येक स्तर पर किया। यद्यपि सनेही जी ने किसी महाकाव्य की रचना नहीं की, परन्तु उन्होंने स्फुट रूप में विपुल राशि हिन्दी काव्य-जगत् को प्रदान की है। कदाचित् अलमस्त सनेही जी के निर्बन्ध व्यक्तित्व से महाकाव्य रचना की अपेक्षा भी नहीं की जानी चाहिए। जिस देश में अशिक्षा, अज्ञानता का साम्राज्य हो, जहाँ जीवन की स्वस्थ दृष्टि का अभाव हो, सामाजिक विषमता, राजनैतिक पराधीनता, आर्थिक दैन्य और धार्मिक रूढ़िबद्धता ने पूरे समाज को खोखला कर रखा हो, वहाँ जन-जीवन को छूने का अर्थ ही यह है कि असामान्य भी सामान्य के स्तर पर आ जाये, लेकिन कतिपय हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखकों तथा आलोचकों ने उपर्युक्त प्रकार के कार्य करने वालों को सामयिक की संज्ञा देकर ऐतिहासिक कृतित्व को महत्त्वहीन बना देने मे ही अपनी प्रतिष्ठा समझा लेकिन यह तथ्य है कि खड़ीबोली हिन्दी कविता के प्रचार-प्रसार मे सनेही का बहुत बड़ा हाथ है। भाषा-परिष्कार और काव्य का लोक-स्तर पर प्रचार उनकी विशेषता रही। शास्त्रीयता की रक्षा करते हुए आधुनिक भारत की ज्वलन्त भावनाओं को अभिव्यक्ति देने में वे सदैव तत्पर एवं अग्रणी रहे। हिन्दी कविता के प्रति निभायी गयी, उनकी यह ऐतिहासिक भूमिका क्या भुलाने योग्य है।

१११।७८, अशोक नगर
कानपुर

□

काव्य-जगत् के भीष्मपितामह : गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'

श्री देवदत्त मिश्र

कवि सम्राट् गयाप्रसाद शुक्ल सनेही हिन्दी-जगत् के उन मूर्द्धन्य कवियों की अग्रिम पंक्ति को सुशोभित करते हैं, जिन्होंने अपनी काव्यधारा प्रवाहित कर केवल काव्य साहित्य को ही गौरवान्वित नहीं किया बल्कि भारतमाता को विदेशी शासन की शृंखला से मुक्त करने की दिशा में देश के नवयुवकों में सेवा, त्याग और बलिदान की भावना जागरित करके देश की आजादी की लड़ाई को सफल बनाने में योगदान दिया है। सनेही जी मात्र कवि नहीं बल्कि निर्माता भी थे। उन्होंने हिन्दी-जगत् में अगणित कवियों का निर्माण किया, जो उनके नेतृत्व में कवि-सम्मेलनों में प्राण-संचार किया करते थे। इस दृष्टि से यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि सनेही जी के न रह जाने से नये कवियों के निर्माण का क्रम समाप्त-सा हो गया है। पण्डित कमलापति त्रिपाठी ने सनेही जी को श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए ठीक ही कहा है कि सनेही जी साधारण कवि नहीं हैं। वे पराधीन भारत के उन कलाकारों में रहे हैं जिन्होंने सुषुप्त राष्ट्र की हृदय-तन्त्रियों पर ओजमयी लेखनी से वह झंकार उत्पन्न की, जिससे कोटि-कोटि भारतीय शौर्य और बलिदान के पथ पर अग्रसर हुए। देश के लिए बड़े-से-बड़े बलिदान हेतु राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के आह्वान से प्रभावित होकर सनेही जी स्वयं देश के लिए उत्सर्ग के मार्ग पर चले और अपनी कविता के माध्यम से जन-जागरण का बीड़ा उठाकर कानपुर को अपना कर्मक्षेत्र बनाया। कानपुर में प्रतापनारायण मिश्र और राय देवीप्रसाद पूर्ण के बाद हिन्दी साहित्य मे जो स्थान रिक्त हुआ था, सनेही जी ने उसकी पूर्ति ही नहीं की बल्कि साहित्य-क्षेत्र में कानपुर को प्रयाग और वाराणसी के समकक्ष खड़ा कर दिया। किसी ने ठीक ही कहा है कि हिन्दी काव्य-जगत् के भीष्मपितामह सनेही जी व्यक्ति नहीं संस्था हैं। सनेही जी वह शिलाखण्ड थे, जिन्होंने अपने अस्तित्व की जटिलता का बूँद-बूँद जलाकर, पिघलाकर शिलाजीत प्रस्रवित कर दूसरों को सशक्त बनाया है। सनेही जी एक अजेय दुर्दम्य "त्रिशूल" थे।

ऐसे महान् व्यक्तित्व की जन्मशती के अवसर पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन सनेही रचनावली प्रकाशित कर रहा है, यह उसकी अपनी गरिमा के अनुरूप कार्य है। आशा है कि डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल के सम्पादकत्व में सम्मेलन-पत्रिका का सनेही अंक पत्रकारिता के क्षेत्र में अपनी चिरस्मरणीय छाप छोड़ेगा और साहित्य-प्रेमियों के लिए वह संग्रहणीय होगा।

सम्पादक, विश्वमित्र
कानपुर।

□

आचार्य 'सनेही' जी की काव्य-भाषा

डॉ० त्रिवेणीदत्त शुक्ल

आधुनिक हिन्दी के काव्य-प्रवाह को दो रूपों में सम्पन्न करने का प्रयास कृति रचयिताओं ने किया था। कवियों का एक वर्ग ऐसा था जो सीधे अपने काव्य के माध्यम से जनता से साक्षात्कार करता था। उसका माध्यम होते थे कवि-सम्मेलन और कवि-गोष्ठियाँ। कभी-कभी समारोहों को वे अपनी कविता और वाणी से ओजमय करते थे। स्वाधीनता युग के जुझारू और सिद्ध कवि इसी श्रेणी के होते थे। इसी प्रकार दूसरा वर्ग उन कवियों का होता था, जो एकान्त स्थल पर बैठकर स्वानुभूति को काव्य के रूप में लिपिबद्ध करके उसे प्रकाशित करते थे। सनेही जी पहले वर्ग के कवि थे जिनकी कविता सीधे जनता से जुड़ी थी। उनकी भाषा ऐसी है, जिसे हम टकसाली हिन्दी कह सकते हैं; जो न तो संस्कृत शब्दों के काठिन्य से दबी है और न ही अरबी-फारसी के शब्दों से बोझिल। 'सेनेही' जी सदैव से जन भाषा के पक्षधर थे। उनके विचार से "काव्य की भाषा को सहज, बोधगम्य रखना कवि का प्रथम धर्म है। काव्य की भाषा सारल्य विभूषित होनी चाहिए। इसमे सन्देह नहीं कि कविता में भाव ही मुख्य है, किन्तु भावों का प्रकटीकरण भाषा द्वारा ही होता है। यदि भाषा दोषपूर्ण है तो उसके भावों की सुन्दरता भी मिट्टी में मिल जायगी। जैसे एक निर्बल शरीर में स्वस्थ मन का निवास असम्भव है, वैसे ही गलत-सलत भाषा में लिखा हुआ उत्तम काव्य भी अलभ्य है। अस्तु हिन्दी कवियों को एकमत होकर मुहावरेदार बोल चाल की हिन्दी को अपनी कविता की भाषा का आदर्श बनाना चाहिए। शब्दों की तोड़-मरोड़ से काव्य-शरीर को विकृत न होने देना चाहिए।"[1]

वस्तुतः 'वे उस समय जन्मे थे, जब रीति की परम्परा पूरे जोर पर थी। कविता ब्रजभाषा से निकल कर खड़ीबोली में आ रही थी। मगर जो कवि खड़ीबोली की ओर प्रवृत्त होते थे, उन्हें भी अपनी खड़ी बोली की कविता पसन्द नहीं आती थी। सनेही जी को भी इस दौर से गुजरना पड़ा था। काफी दिनों तक अपनी काव्य-साधना वे ब्रजभाषा में ही तैयार करते रहे और जब उस वाटिका से वे निकले घनाक्षरी और सवैये का सम्बल उन्होंने अपने साथ ले लिया। इन दो छन्दों का प्रयोग खडीबोली मे उन्होंने इस सफाई और सरलता के साथ किया कि सभी साहित्य प्रेमी उनकी ओर आकृष्ट हो गये और साहित्य में उनका नाम

१. आचार्य 'सनेही' अभिनन्दन ग्रन्थ : सम्पा० श्री छैलबिहारी दीक्षित 'कण्टक', पृ० १७७।

अमर हो गया। मेरा पक्का विचार है कि जो सवैये या कवित्त उन्होंने खड़ीबोली में लिखे, उन्हीं पर उनकी कीर्ति ठहरी रहेगी।

"करने चले तंग पतंग जला कर,
मिट्टी में मिट्टी मिला चुका हूँ।
तम-तोम का काम तमाम किया,
दुनियाँ को प्रकाश में ला चुका हूँ।
नहीं चाह सनेही सनेह की और,
सनेह में जी मैं जला चुका हूँ।
बुझने का मुझे कुछ दुःख नहीं,
पथ सैकड़ों को दिखला चुका हूँ॥"

हिन्दी वालों ने इस छन्द को यों ही सिर पर नहीं उठा रखा है। इस छन्द में रस है, विदग्धता है और है वह सफाई और चोट करने की शक्ति, जो केवल आचार्यों में होती है, महाकवियों में होती है'।[1]

ध्यातव्य है कि सनेही जी ने अपनी काव्य-कृतियों मे जिस भाषा का प्रयोग किया है, वह उस युग की खड़ीबोली की लड़खड़ाती हुई भाषा का रूप है। खड़ीबोली का सुष्ठु रूप बन रहा था। उस रूप के निर्माण में सनेही जी जैसे कवि लगे हुए थे। इसी कारण उनकी काव्यभाषा के प्रवाह में कहीं भी रुकावट नहीं है। जहाँ भाषा की मधुरिमा की अपेक्षा है, वहाँ उन्होंने विषय की चित्रमयता का विचार करते हुए भाषा को टकसाली रूप दिया है। ऋतुवर्णन एवं संयोगात्मक गीतों में उनकी यही भाषा है। लेकिन जहाँ उन्होंने राष्ट्रीयता के उद्दाम आवेग में काव्य का प्रणयन किया है, वहाँ उनकी भाषा में एक अजस्र प्रवाह दीख पड़ता है। लाक्षणिकता तथा व्यंजकता के विनियोग के बाद भी शब्दों की स्वाभाविकता, अभिव्यक्ति की सरलता समाप्त नही होती, अपितु भाषा की प्रवाहात्मकता भावों को तीव्र गति से प्रवाहित करती है। 'सनेही' जी की माधुर्य मण्डित भाषा नानाविधि भंगिमाओ के साथ अभिव्यक्त हुई है। भाषा की कोमलता में रूप की मृदुता रूपायित हो हृदयस्थ भाव को कितनी प्रभविष्णुता से प्रकटित कर देती है, द्रष्टव्य है :

"हार पिन्हाइबो को उनके हैं पिरोवती मोतिन की लड़ी आँखें।
दाबि हियो रहि जैबे परै लखि कै गुरु लोगन की कड़ी आँखें॥
हाय, कबै फिर सामुहे ह्वै हैं 'सनेही' सरोज की पंखड़ी आँखें।
सालैं घड़ी-घड़ी जी में गड़ी रस सों उमड़ी वे बड़ी-बड़ी आँखें॥

सनेही जी ने अपनी रचनाओं में सवैया एवं घनाक्षरी छंदों का प्रयोग बड़ी सफलता के साथ किया है। शृंगारिक रचनाओं के प्रसंग में उन्होंने अपना प्रिय छंद सवैया ही चुना

१. दिनकर की डायरी से

है। छंद का भाव और रस से भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। छंद विशेष में भाव अथवा रस विशेष अधिक प्रभावोत्पादक हो जाता है, जैसे संस्कृत वृत्तों में मंदक्रान्ता, द्रुतविलम्बित शिखरिणी और मालिनी में शृंगार, शान्त और करुण रस अधिक मनोहर लगते हैं। इसी प्रकार भुजंग प्रयात, वंशस्थ और शार्दूल विक्रीडित में वीर, रौद्र और भयानक रस विशेष प्रभावोत्पादक हो जाते हैं। हिन्दी छंदों में सवैया और बरवै में शृंगार, करुण और शान्त, छप्पय में वीर, रौद्र तथा भयानक, नाराच में वीर तथा घनाक्षरी, दोहा, चौपाई तथा सोरठा में प्रायः सभी रस उद्दीप्त होते हैं'।[1]

सनेही जी छंदशास्त्र के पण्डित तो थे ही, अतः उन्होंने अपनी रचनाओं में अनुकूल एवं प्रासंगिक छंदों के प्रयोग पर विशेष ध्यान दिया है। काव्य में छंद-सौष्ठव, गतिशीलता एवं प्रवाह के वे प्रबल समर्थक थे। उनके विचार से 'जब तक कविता में अजस्र प्रवाह न हो, छंद बोलते न हों, तब तक आप कहीं से भी भाव और शब्दावली लाइये और इस कोण का ध्यान उस कोण में करते रहिए; कोई परिणाम नहीं।'[2] छद में गति-अवरोध को उन्होंने कभी भी स्वीकार नहीं किया। उनकी धारणा थी कि छंद में गति प्रधान वस्तु है। गणात्म छंदों में तो गण नियमपूर्वक आने से गति ठीक हो जाती है, परन्तु मात्रिक वृत्तों या मुक्तक छंदों में केवल मात्राओं या वर्णों की गणना ठीक होने से ही काम नहीं चलता। जब तक छंद की गति (रवानी, धुन या लय) ठीक नहीं, छंद की रचना ठीक नहीं होती।'[3] सनेही जी ने अपने छंदों में संयोग शृंगार के अन्तर्गत नेत्र आदि पर बड़े ही आकर्षक एवं मोहक चित्र अंकित किया है। प्रेम की प्रगाढ़ता में नेत्रों का योगदान होता है। नेत्रों की भाषा अभिव्यक्ति मे अपेक्षाकृत अधिक सक्षम एवं प्रभावोत्पादक होती है। 'भरे भौंन में करत हैं, नैनन हूँ सों बात।' तथा 'नैकु कही बैननि, अनेक कही नैननि सों, रही-सही सोऊ कहिदीनी हिचकीनि सों।' के द्वारा 'बिहारी' और 'रत्नाकर' आदि ब्रजभाषा-कवियों ने इसे सहज रूप से स्वीकार किया है। नेत्रों के सम्बन्ध मे सनेही जी की अवधारणा भी लगभग इसी प्रकार की है। सुष्ठु छंद योजना से संपृक्त—

> "आई हौ पाँय दिवाय महावर कुंजन तें करिकै सुख सैनी।
> साँवरे आजु सँवार्‌यो है अंजन नैनन को लखि लाजति ऐनी॥
> बात के बूझत ही मतिराम कहा करिये यह भौंह तजैनी।
> मूँदि न राखत प्रीति भटू यह मूँदी गुपाल के हाथ की बैनी॥"

'मतिराम' के उक्त भाव-बोध को उद्‌बोधित करने वाला यह छंद कितना मर्म-स्पर्शी है—

---

१. आचार्य केशवदास : डॉ० हीरालाल दीक्षित, पृष्ठ २०६।

२. सुकवि : सम्पादकीय, अगस्त १६२८।

३. सुकवि : सम्पादकीय, अप्रैल १६२६।

"बात बिचित्र करो कितनी, निज नैनन में भरि कै चतुराई।
लोगन के भरमाइबे को तुम, चाहै अनेक करौ सुघराई॥
अन्तर भाव छिपाइबे को तुम चाहै अनेक करौ निठुराई।
पै न रहेगी बिना झलकै, इन आँखिन में मन की मधुराई॥"

सनेही जी की यह एक बड़ी विशेषता रही है कि उन्होंने ब्रजभाषा के समान ही खड़ीबोली में भी सवैया एवं घनाक्षरी छंदों का प्रयोग अधिकारपूर्वक किया है। श्री नरेश चन्द्र चतुर्वेदी के शब्दों में—'सनेही जी का यह कार्य कम महत्त्व का नहीं है कि उन्होंने खड़ीबोली में ब्रजभाषा के समान घनाक्षरी, सवैया आदि छंदों में कोमल से कोमल एवं प्रभावपूर्ण रचना करके दिखायी। सनेही तथा उनके शिष्यों के छंदों को देख-पढ़ कर यह भलीभाँति जाना जा सकता है कि घनाक्षरी तथा सवैया छंदों में खड़ीबोली कविता वैसी ही मार्मिक और प्रभावशाली हो सकती है, जैसी ब्रजभाषा में। काव्यशास्त्र तथा पारस्परिक लक्षण ग्रन्थों के अनुसार मनोभावों, दशाओं, रस-छंद-अलंकारों के प्रयोग सनेही जी के छंदों में उज्ज्वलता के साथ हुए हैं। पुराने छंदो में नव-नव भावराशि का संप्रेषण, प्राचीन काव्य-धारा में नवीनता के विभिन्न प्रयोग सनेही जी की विशेषता रही है। छंदो, गीतों तथा उर्दू बहरों के अतिरिक्त संस्कृत वर्णवृत्तों में भी उन्होंने अत्युत्तम रचनाएँ की हैं।'[१]

बहुत ही कम कवियों की कविता में वह लालित्य, ओज और प्रवाह मिलता है, जो सनेही जी की काव्य-भाषा मे पाया जाता है। खड़ीबोली के उदाहरण के रूप मे उनकी कविता को यहाँ पर प्रस्तुत करना समीचीन होगा। राम वन-गमन के प्रसंग में सनेही जी द्वारा वर्णित 'कौशल्या-क्रन्दन' का यह अंश हमें 'प्रिय प्रवास' के यशोदा-विलाप का बरबस स्मरण दिलाता है :

"उर उपल धरूँगी और क्या मैं करूँगी।
विधि-वश दुख ऐसे देख के ही मरूँगी।
विधि! सहृदय हो तो प्रार्थना मान जाओ।
अब तुम मुझको ही मेदिनी से उठाओ॥"[२]

इसी प्रकार कर्ण-वध पर दुर्योधन का विलाप कितना हृदय विदारक है—

"शत-शत भट जूझे शीश फोड़ा न मैंने।
सुत-वध तक देखा धैर्य छोड़ा न मैंने।
अब तुम छुटते हो धैर्य कैसे न छूटे।
विधि गति अति वामा वज्र पै वज्र टूटे॥"[३]

---

१. सुकवि सम्राट् सनेही शताब्दी समारोह 'स्मारिका' पृष्ठ ४७।

२. करुणा कादम्बिनी : आचार्य पं० गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' पृष्ठ ५।

३. वही, पृष्ठ २६।

आचार्य 'सनेही' काव्य की कलापक्षीय धारणा के प्रति भी सजग दिखायी पड़ते हैं। उनकी रचनाओं में रस एवं अलंकारों का सम्यक् परिपाक देखने को मिलता है। शृंगार एवं करुण भावनाओं के जाग्रत होने पर मनुष्य में मधुरता की संवेदना तीव्र हो उठती है तथा वीर भाव जाग्रत होने पर चित्त सहज ही ओजयुक्त हो जाता है। सनेही जी की रचनाओं में शृंगार, वीर एवं करुण रस की सर्वाधिक अभिव्यक्ति हुई है। अस्तु उन्होंने शृंगार और करुण रसों के लिए सर्वत्र मधुर भावयुक्त शब्दावली एवं वीर रस के लिए ओजयुक्त शब्दावली का प्रयोग किया है। सनेही जी विभिन्न रसों के लिए उपयुक्त शब्द-चयन में सिद्धहस्त थे। कहीं भी शब्दाडम्बर के जाल में नहीं फँसे हैं। नायिका के रूपराशि का चित्रण करते समय वे नख-शिख का विस्तार से वर्णन भी नहीं करते और सम्पूर्ण सौन्दर्य का चित्रण उपस्थित कर देते हैं। वस्तुतः वे जिन भावों की अभिव्यक्ति करना चाहते हैं, उसके लिए उन्हें समर्थ भाषा का वरदान प्राप्त है। उदाहरण के लिए शृंगाररस पोषित चित्र द्रष्टव्य है :

"काली-काली अलकें निराली काली नागिन-सी,
छहरत विष लखे अंग अंग थहरै।
भृकुटी कमानन तें तीखे नैन-बानन ते,
हिय बड़े-बड़े सूर बीरन के हहरै।
कोऊ कलपत, अलपत कहूँ कोऊ परे,
कोऊ कटे कुटिल कटाच्छन ते कहरैं।
धरि झकझोरे देईं मन को 'सनेही' मेरे,
बोरे देईं तेरे रूप सागर की लहरैं॥"

सनेही जी के काव्य में शृंगार रस के अतिरिक्त करुण, वीर, शान्त आदि रसों का भी पूर्ण परिपाक मिलता है। उदाहरणार्थ शान्त रस का वर्णन प्रस्तुत किया जाता है :

"पुहुमी, अनिल, जल, अनल अकास दियो,
इतनो विभव है तौ और काह चहिए।
काल को कराल चक्र घूमत चराचर मे,
काके बल बूते पर गर्व गैल गहिए॥
चार दिन की है यह चाँदनी 'सनेही' तामे,
काके रूप रीझिए औ काके नेह नहिए।
राधा औ रमा में विसराम औ विराम कहाँ,
मन में रमाए राम रम्य रूप रहिए॥"

उनका विचार है कि 'कविता सुनकर यदि कुछ प्रेरणा न मिल सकी, दिल नहीं फड़क उठा तो वह कविता कविता नहीं है। शृंगार रस की कविता सुनने में बड़ी अच्छी लगती है; पर वीर रस की कविता कौन अच्छी नहीं होती। कविता के लिए कोई रस

बाधक नहीं है। वह तो किसी भी रस में स्नात होकर श्रोता के ऊपर जादू कर सकती है।[1]

सनेही जी ने अपने काव्य में रसों की भाँति ही सहज-स्वाभाविक अलंकारों का भी प्रयोग किया है। भावों की उदात्तता से काव्य में जहाँ सरसता आती है, रस-संचार होता है; वहीं स्वाभाविक अलंकारों के प्रयोग से भाषा की रमणीयता द्विगुणित हो जाती है। अलंकारों के द्वारा ही कविता-कामिनी का शृंगार होता है। किन्तु काव्य में अलंकारों का महत्त्व उनके प्रचुर प्रयोग से नहीं अपितु स्वाभाविक एवं उचित नियोजन से है। स्मरणीय है कि अपनी रचनाओं में सनेही जी ने अलंकारानुयायी कवियों की तरह अलंकारों को बरबस नियोजित करने की कुचेष्टा नहीं की है। यही कारण है कि उनके काव्य में कलापक्ष की अपेक्षा भावपक्ष का उत्कर्ष अधिक हुआ है। यद्यपि यह सत्य है कि 'भूषन बिनु न बिराजई कविता बनिता मित्त' तथापि 'भूषन' को भार नहीं बना देना चाहिए। वस्तुतः बिहारी की नायिका को जिस प्रकार 'भूषण-भार' थे उसी प्रकार सनेही जी की कविता के लिए अलंकार थे। प्रायः उन्होंने अलंकारों का नियोजन भावों को उत्कर्ष प्रदान करने के लिए ही किया है। उनके काव्य में स्वाभाविक ढंग से शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों प्रकार के अलंकारों की नियोजना हुई है। किन्तु सनेही जी का सबसे प्रिय अलंकार अनुप्रास रहा है। उन्होंने जहाँ-जहाँ अनुप्रास अलंकार का प्रयोग किया है, वहाँ-वहाँ उनका लक्ष्य मात्र आनुप्रासिक छटा दिखाना नहीं अपितु भावोत्कर्ष को उद्घाटित करना ही रहा है। विषय और भाव के सजीव प्रतिपादन में अनायास ही आनुप्रासिक शब्दावली की झड़ी लग गयी है। भेदातिशयोक्ति संयुक्त छेकानुप्रास का एक उदाहरण प्रस्तुत है :

"बौरे बन बागन विहंग विचरत बौरे,
बौरी-सी भ्रमर-भीर भ्रमत लखाई है।
बौरी बर मेरी घर आयो न बसन्त हूँ में,
बौरी कर दीन्हों मोहि बिरह कसाई है।
सीख सिखवत बौरी सखिया सयानी भईं,
बौरे भये बैद, कछु दीन्ही न दवाई है।
बौरी भई मालिन, चली है भरि झोरी कहाँ,
बौरो करिबे को औरौ, बौर यहाँ लाई है।।"

भाषा को सजीवता प्रदान करने में लोकोक्तियों एवं मुहावरों का प्रयोग नितान्त आवश्यक है। इनके प्रयोग से भाषा में प्राणवत्ता एवं प्रभावात्मकता स्वतः आ जाती है। सनेही जी के काव्य में लोकोक्तियों तथा मुहावरों का प्रचुर प्रयोग हुआ है और इस प्रकार

१. आचार्य सनेही अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ १६१।

के सभी प्रयोग अप्रयत्नज प्रतीत होते हैं। इसीलिए उनमें स्वाभाविक सौन्दर्य परिलक्षित है। उदाहरणस्वरूप एक छंद द्रष्टव्य है :

> "सूम की-सी सम्पदा गँवाई आई काहू काम,
> शक्ति प्रभुताई सदा साथ रही जिनके।
> पूरित उमंग रहे, चढ़े जिमि चंग रहे,
> भंग हो गये हैं, बड़े रंग रहे जिनके।
> तानिए न आन-बान बानि ये नहीं है नीकी,
> जानिए विचारि बैन मानिए कविन के।
> पाय तरुनाई कुछ कीजिए भलाई यार,
> जीवन जवानी के जुलूस चार दिन के॥"

"काव्य में कल्पना का स्थान महत्त्वपूर्ण है। इसी के द्वारा कवि कुरूप को भी सुन्दर रूप दे देता है। वह जो कुछ सामने पाता है, उसे ग्रहण तो करता है पर अपनी कल्पना शक्ति से उसे उसी रूप में नहीं रहने देता। वह उसके रूप और गुण का उन्नयन करता है। उनमें एक विशिष्ट चमत्कृति को प्रविष्ट कर देता है, जिससे वे सुन्दर और आकर्षक प्रतीत होने लगते हैं। कवि के अतिरिक्त अन्य कलाकार भी कल्पना की रचनात्मक शक्ति का प्रयोग करते हैं। स्वर्णकार धातु को विविध प्रकार के आभूषणों में परिणत कर देता है। चित्रकार भित्ति अथवा किसी अन्य फलक पर रेखाओं और रंगों द्वारा नयनाभिराम चित्र बना देता है। कवि भी अपने शब्दों द्वारा जिस काव्य का निर्माण करता है, मनोरमता के साथ पाठक को अनुभूति के उच्चस्तरों में भी ले जाता है।······ ······कवि की कल्पना में कल्पना शक्ति ही क्रीड़ा किया करती है। उसके बल पर नाना भणिति-भंगिमाएँ, विविध रूपा अलंकृतियाँ, सुष्ठु सूक्तियाँ, ऊर्जस्विनी ऊहाएँ एवं भद्र भावनाएँ पोषण पाती हैं। कवि जो यशस्वी होता है और अमर बनता है, उसके मूल में कल्पना शक्ति की ही लीला विद्यमान है।"[1] कल्पना से रचनाचातुर्य तो प्रकट होता ही है, काव्य में अलंकरण का सहज समावेश हो जाता है। वस्तुतः कवि की कल्पना जितनी सूक्ष्म एवं प्रभावी होगी, रचना उतनी ही उदात्त बन पड़ेगी। सनेही जी के काव्य में कल्पना का चरमोत्कर्ष दिखायी पड़ता है। इस घनाक्षरी में उनकी प्रौढ़ कल्पना का श्लाघ्य स्वरूप द्रष्टव्य है :

> "बध दिवराज का हुआ है पक्षी रो रहे हैं,
> रुधिर-प्रवाह अभी पश्चिम में जारी है।
> दिशा बधुओं ने काली सारी पहनी है, नभ
> छाती छलनी है, निशा रोती-सी पधारी है।

१. आचार्य सनेही अभिनन्दन ग्रन्थ : डॉ० मुन्शीराम शर्मा 'सोम', पृष्ठ १२७-१२८।

सिसक-सिसक के वियोगी प्राण खो रहे हैं,
कैसी चोट चौकस कलेजे पर मारी है।
तमराज नहीं, जमघट जमराज का है,
नव चन्द्र नहीं, क्रूर काल की कटारी है ॥"

सूर्य का वध सम्भाव्य नहीं किन्तु उसका वध कराना, तम को यमराज का जमघट बताना तथा नव चन्द्र को क्रूर काल के हाथ की कटारी से अभिहित करना, कितना अद्भुत प्रतीत होता है। इस अनूठी कल्पना से निश्चय ही मन मोहित हो जाता है।

मूलतः देखा जाय तो सनेही जी की भाषा परिवेशानुकूल पूर्ण सक्षम एवं सटीक है। लाक्षणिक मूर्तिमत्ता, ध्वन्यात्मक शब्दयोजना, व्यंजकता, सरसता, सरलता, ग्राहकता, कोमलता एवं प्रवाह उनकी काव्य-भाषा की अपनी निजी विशेषता है। भाषा की अप्रतिहत गतिशीलता, अलंकार विधान की स्वाभाविकता, रस-स्निग्धता, छंद योजना की सुघरता, विषय की विविधता, उक्ति की विचित्रता एवं भावों की सुकुमारता तथा मार्मिकता के कारण ही उनका सम्पूर्ण साहित्य लोकप्रियता तथा साहित्यिक गरिमा के उच्च पद पर प्रतिष्ठित है। डॉ० बालमुकुन्द गुप्त के इस अभिमत से हम पूर्ण सहमत हैं—"सनेही जी के कवित्त और सवैया छन्द भाव-विभोर करने की क्षमता रखते हैं। खड़ीबोली और ब्रजभाषा पर उनका समान अधिकार रहा है। उन्होंने कविताओं में शिष्ट और टकसाली भाषा का प्रयोग किया है और यत्र-तत्र उर्दू शब्दों का समावेश कर अभिव्यंजना को अधिक सटीक बना दिया है। खड़ीबोली हिन्दी को काव्य-भाषा के रूप में विकसित, पुष्ट और प्रसारित करने में उनका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान है।"[1]

३५० ए-बख्शी खुर्द
दारागंज
प्रयाग

□

१. सुकवि सम्राट् 'सनेही' शताब्दी समारोह 'स्मारिका" पृष्ठ ११।

सनेही जी का गीत-काव्य

डॉ० उपेन्द्र

आधुनिक हिन्दी गीत के स्वरूप का निर्माण पुरानी शैली के पद-गीतों, लावनी, कजली जैसे लोकगीतों व उर्दू के गज़ल, मर्सिया आदि छन्दों के सम्मिलन से हुआ है। यह तो सर्वविदित ही है कि कबीर, सूर, तुलसी, मीरां के गीत आध्यात्मिक रंग में रंगे हुए निर्गुण-सगुण भावना के भक्ति-प्रधान पद-गीत थे। वे संगीत की राग-रागिनियों में निबद्ध होने के कारण अत्यन्त गेय और अलौकिक सत्ता के प्रति पूर्ण समर्पित हृदय की उत्कट रागात्मकता के कारण आत्मनिष्ठ और भावार्द्र थे। यद्यपि व्यक्ति का अपना सुख-दुःख अथवा राग-विराग वहाँ व्यक्त नहीं हुआ था फिर भी भक्त-हृदय की सच्ची भावना उनमें प्रतिबिम्बित थी इसीलिए उन पदों की गणना निःसंकोच भाव से गीत-काव्य के अन्तर्गत की जाती है। ये गीत मुख्यतः ब्रजभाषा में लिखे गये थे जो उस समय साहित्य का सर्व-स्वीकृत माध्यम बन गये थे। रीति-काल मे गीतों का स्थान कवित्त और सवैये ने ले लिया। पद-गीत कम लिखे गये फिर भी जो लिखे गये उनमें संगीतात्मकता और रागात्मकता दोनों तत्त्वों का संयोजन पूर्ववत् बना रहा। भगवत रसिक, ललित किशोरी आदि माधुर्योपासक कृष्णभक्त कवियो के सरस पद सूर और नंददास की परम्परा में ही दाम्पत्य प्रेम की मिठास को लेकर एक कदम आगे बढ़े हुए प्रतीत होते हैं। कवित्त और सवैया के सम्बन्ध में एक दिलचस्प तथ्य यह है कि ये छन्द गीत से भिन्न होते हुए भी अन्य छन्दों की तुलना मे गीत के अधिक समीप हैं। रीति-काल का लगभग सम्पूर्ण काव्य मुक्तक रचनाओं के अन्तर्गत आ जाता है और मुक्तक रचनाओं के कुशल संवाहक ये दो छन्द यानी सवैया और कवित्त (घनाक्षरी) सर्वाधिक गीतात्मक (Lyrical) छन्द हैं। इनके बाद छप्पय, गीतिका और हरगीतिका भी अनेक अंशो में गीत-तत्त्व से संवलित माने जा सकते हैं। पुराने समय मे कवित्त और सवैया का गायन प्रचलित था। आज भी कई पुराने गवैये गायन के मध्य में सवैया और कवित्त का सम्पुट लगाते हुए देखे जाते हैं।

खड़ीबोली मे साहित्यिक दृष्टि से काव्य-रचना भारतेन्दु के बाद शुरू हुई पर खड़ी-बोली के गीत लोक-परम्परा में भारतेन्दु के पूर्व उपलब्ध थे। इनमे मेरठ और दिल्ली के ग्राम्य अंचल के गीतों, महाराष्ट्र और गुजरात तक फैले हुए ख्यालों अथवा लावनियों, जन-समाज में मनोरंजन वितरित करने वाले स्वाँग-भगत (नौटंकी आदि) के साथ नवाबों के प्रश्रय में पले-सिंचे शृंगारी संगीत के ठुमरी गज़ल आदि प्रचलित प्रकारों की गणना की जानी चाहिए। लोक धुनों व फारसी से आये हुए छन्दों पर आधारित कुछ गीत-रूप प्राचीन

समय से प्रचलित थे। खड़ीबोली के प्रथम कवि अमीर खुसरो के गीत की यह पंक्ति शायद आपने सुनी हो—

"किसे पड़ी है जो जा सुनावे
पियारे पी को हमारी बतियाँ।"

इस लय को आधार बनाकर लावनीबाजों ने कितने ही ख्यालों की रचना की। यहाँ तक कि हिन्दी के समर्थ कवि भी अपने गीतों में इस मीठी लय को अपनाने का लोभ संवरण नहीं कर सके।

भारतेन्दु-युग में खड़ीबोली के इन गीतों को पुनर्जीवन मिला, स्वयं भारतेन्दु इन लोक-गीतों की ओर आकृष्ट हुए। उन्होने अनेक सुधारवादी विषय बाल-विवाह, बहु-विवाह, आलस्य, भ्रूण-हत्या, फूट, नशा, देश-दुर्दशा, स्वदेशी-प्रचार आदि का समावेश करते हुए इस जीवन्त "जातीय संगीत" के प्रसार का अभियान छेड़ा। भारतेन्दु का मत था कि "जातीय संगीत की छोटी-छोटी पुस्तकें बनें और वे सारे देश, गाँव-गाँव में साधारण लोगों में प्रचार की जायें।……जितना ग्राम-गीत शीघ्र फैलते हैं और जितना काव्य संगीत द्वारा सुनकर चित्त पर प्रभाव होता है उतना साधारण शिक्षा से नहीं होता।……कजली, ठुमरी, खेमटा, कहरवा, अद्धा, चैती, होली, साँझी, लम्बे, जाँते के गीत, बिरहा, चनैनी, गजल इत्यादि ग्राम गीतो में (उपर्युक्त विषयों का) प्रचार हो।"

(भारतेन्दु-ग्रन्थावली : तीसरा भाग)

भारतेन्दु की एक आदत थी कि वे जो दूसरों से करने को कहते थे, उसे स्वयं पहले कर दिखाते थे। "प्रेम तरंग", "फूलों का गुच्छा", "वर्षा विनोद" शीर्षकों से प्रकाशित उनकी पुस्तकों में खड़ीबोली के ये गीत (भारतेन्दु ग्रन्थावली का प्रथम भाग) जिनमें लावनियाँ है, ग़जले हैं, कजली है, ठुमरी है, उर्दू का तरजीह बन्द है, आधुनिक गीत काव्य के प्रथम स्फुरण कहे जा सकते हैं। इसके बाद भारतेन्दु-मण्डल के अन्य कवियों जैसे प्रतापनारायण मिश्र, अम्बिकादत्त व्यास, 'प्रेमघन' आदि ने सैकड़ों लावनियाँ, कजली, कबीर आदि लिखकर जातीय संगीत की इस धारा के व्यापक प्रचार-प्रसार में अपना-अपना विशिष्ट योगदान किया।

भारतेन्दु के समय से इस शताब्दी के पहले दशक तक ब्रजभाषा और खड़ीबोली का विवाद पूरे जोर पर चला। ब्रजभाषा के पक्षधरों में प्रमुख भारतेन्दु-युग के पण्डित प्रतापनारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी और उसके परवर्ती काल के पण्डित पद्मसिंह शर्मा, जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, जगन्नाथदास 'रत्नाकर', सत्यनारायण कविरत्न आदि साहित्यसेवी थे। खड़ीबोली के विरोध का मुख्य आधार ब्रजभाषा का लालित्य और खड़ीबोली की स्वभावगत रुक्षता ही था। खड़ीबोली की कविता में ब्रजभाषा जैसी मिठास ले आना ही उस युग के कवियों की प्रतिभा के लिए सबसे बड़ी चुनौती थी क्योंकि भारतेन्दु से रत्नाकर तक हिन्दी के सभी समर्थ कवियों ने इसी तर्क को खड़ीबोली के विरोध

में प्रमुख अस्त्र के रूप में इस्तेमाल किया था। सूर, तुलसी, देव, बिहारी, पद्माकर आदि की गौरवमयी परम्परा का अहसास भी उनके ब्रजभाषा-मोह को पोषित करने में सहायक होता था। इसके विपरीत गद्य और पद्य की भाषा एक होनी चाहिए और खड़ीबोली में धीरे-धीरे प्रयास कर उत्तमोत्तम काव्य रचना सम्भव है, इस विश्वास को लेकर जिन्होंने खड़ीबोली में काव्य-रचना का व्यापक अभियान चलाया था उनमें अयोध्याप्रसाद खत्री, श्रीधर पाठक, श्यामसुन्दरदास, बदरीनाथ भट्ट और महावीरप्रसाद द्विवेदी प्रमुख थे। द्विवेदी जी के प्रयत्न "सरस्वती" का अत्यन्त समर्थ माध्यम सुलभ होने के कारण, विशेष प्रभावशाली थे, इसलिए नेतृत्व का श्रेय उन्हीं को मिला। द्विवेदी जी के प्रभाव और निर्देशों से बँधे हुए आरम्भिक खड़ीबोली कविता के सर्जक कलाकारों में जो नाम अग्रगण्य हैं, वे हैं मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', रूपनारायण पाण्डेय, बदरीनाथ भट्ट, रामचरित उपाध्याय, गोपालशरण सिंह और रामनरेश त्रिपाठी। श्रीधर पाठक, राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' और नाथूराम शर्मा 'शंकर' इस वृत्त के बाहर के कवि थे पर "सरस्वती" में उनकी रचनाओं को ससम्मान स्थान मिलता था।

द्विवेदी-युग साहित्य के लिए क्रान्तिकारी युग सिद्ध हुआ। कविता अब मात्र मनोरंजन अथवा विलास-वासना की तृप्ति का साधन नहीं रह गयी थी। उसमें नव जागरण की चेतना का स्वर आने लगा था, पददलित देश को उसके गौरवमय अतीत का स्मरण कराया जाने लगा था, समाज की अर्थहीन रूढ़ियों के उच्छेद के लिए सुविचारित तर्क उपस्थित किये जाने लगे थे और श्रृंगार की मादक रागिनी के स्थान पर राष्ट्रीयता की रस-वृष्टि होने लगी थी। शुरू के वर्षों में उपदेश अथवा शिक्षा देने की प्रवृत्ति भी कुछ अधिक थी, जो छायावाद-युग के जन्मकाल तक किसी-न-किसी रूप में बनी रही।

भाषा की दृष्टि से द्विवेदी-युग की उल्लेखनीय विशेषता थी संस्कृत शब्दावली की ओर विशेष रुचि और शैली की दृष्टि से इतिवृत्तात्मकता। संस्कृत की सामासिक पदावली के प्रति विशेष आकर्षण के सम्भवतः दो कारण थे, एक तो संस्कृत के वर्णवृत्तों का हिन्दी में प्रयोग और दूसरा खड़ीबोली के खुरदरेपन को संस्कृत के मनोज्ञ शब्दों से दूर करने का यथासम्भव प्रयास। 'सरस्वती' में प्रकाशित १९०५ से १९१७ तक की कविताओं को देखने से जो यह लगता है कि ये एक ही कवि की लिखी हुई रचनाएँ हैं, उसका कारण यह बताया जाता है कि द्विवेदी जी कविताओं में इतना अधिक संशोधन अथवा परिष्कार कर देते थे कि भाषा को अपना मूल स्वरूप खोकर उन्हीं के बनाये हुए साँचे में ढलने को विवश होना पड़ता था। द्विवेदी जी "सरस्वती" में प्रकाशनार्थ आये हुए लेखों की भाषा तो सरल चाहते थे जैसा कि दिसम्बर १९०४ की "सरस्वती" के सम्पादकीय दृष्टिकोण से सिद्ध होता है पर कविता में संस्कृत के प्राचीन कवियों की पदावली का इतना गहरा संस्कार उन्होंने संचित कर रखा था कि वे सरल भाषा का महत्त्व स्वीकार करते हुए भी तत्सम शब्दावली के हृदय से कायल थे! उनकी लिखी "सुरम्य रूपे, रसराशि रंजिते, विचित्र वर्णा-

भरणे कहाँ गयी ? अलौकिकानन्द विधायिनी महा कवीन्द्रकान्ते कविते अहो कहाँ ?" पंक्तियाँ उसी प्रेम की द्योतक हैं। द्विवेदी-मण्डल के प्रायः सभी कवियों में यह संस्कृत-प्रेम विशेष मुखर दिखायी पड़ता है—हरिऔध और मैथिलीशरण जी में सबसे अधिक। यहाँ सनेही जी अपवाद हैं। उनकी भाषा संस्कृत शब्दों के मोह से लगभग पूरी तरह मुक्त है। उसके स्थान पर बोलचाल के सरल सामान्यतः प्रचलित उर्दू शब्दों का समावेश मुहावरों के साथ मिलता है। यह देखकर थोड़ा आश्चर्य भी होता है कि द्विवेदी जी ने सनेही जी की भाषा में परिष्कार की लेखनी क्यों नहीं चलायी ? अथवा चलायी भी तो कम क्यों चलायी ? जो भी हो, संस्कृत शब्दों की भरमार से बचते हुए सरल हिन्दी शब्दों से खड़ीबोली को काव्योपयुक्त बनाने का प्रयास मेरी समझ में ज्यादा बड़ी चुनौती थी जो हिन्दी और उर्दू पर समान अधिकार रखने वाला सनेही जैसा कवि ही स्वीकार कर सकता था। सन् १९१५ की "सरस्वती" के अक्टूबर अंक में प्रकाशित सनेही जी के एक प्रगीत "आशा" की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

> दुख मुझे लिखा क्या थोड़ा था, क्या विधि का घोड़ा छोड़ा था ;
> दिल दुःखो ने यों तोड़ा था, मैंने सिर अपना फोड़ा था ;
> यदि आशा तू न पकड़ लेती।
> निज बंधन में न जकड़ लेती ॥
> जब कुटिया में दुख पाता हूँ, आशा के महल बनाता हूँ,
> पद पीछे नहीं हटाता हूँ जब तुझे दाहने पाता हूँ।
> तुझ पर वारूँ तन - मन, आशा।
> तू ही है जीवन - धन, आशा।

इसमें गीतात्मकता तो है ही, एक बात और उल्लेखनीय है। हिन्दी कविता में भावनाओं अथवा अमूर्त वस्तुओं के मानवीकरण और उन्हें सम्बोधित करने की प्रवृत्ति जिसका श्रेय छायावादियों को दिया जाता है, सनेही जी के इस प्रगीत में अपने मूल रूप में विद्यमान है। आगे चलकर प्रसाद जी आदि कवियों के प्रगीतों में रहस्यात्मकता और सांकेतिकता के तत्त्व जुड़ने के साथ इसका विशद विकास हुआ पर द्विवेदी-युग के इतिवृत्तों और उपदेशपरक कविताओं के जंगल में "तुझ पर वारूँ तन-मन आशा, तू ही है जीवन-धन आशा" जैसी प्रगीतात्मक उक्तियाँ अत्यन्त विरल और दुर्लभ ही कही जाएँगी। इसी के साथ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि गीत का आधुनिक स्वरूप छायावादियों की निर्मिति नहीं है, जैसा कि अक्सर लोगों को भ्रम होता है (द्रष्टव्य—हिन्दी साहित्य कोश, भाग एक पृ० २९३) वस्तुतः यह छायावाद के जन्मकाल के पूर्व ही यानी सन् १९१२ से १७ के बीच ही द्विवेदी-युग के कवियों द्वारा निर्मित हो चुका था। इस नये स्वरूप के निर्माता थे मैथिलीशरण गुप्त, बदरीनाथ भट्ट और सनेही जी जैसे कवि। द्विवेदी-युग के बाद गीत का जो बहुमुखी विकास हुआ उसका श्रेय अवश्य ही छायावादियों को है।

पौष-मार्गशीर्ष : शक १९०४]

सनेही जी में प्रगीत-रचना की सच्ची प्रतिभा थी। कवित्त, सवैया, छप्पय, हरगीतिका, लावनी, ग़ज़ल और गीत—सभी कुछ उन्होंने लिखा और साधिकार लिखा। कवित्त और सवैया में समस्यापूर्ति की परम्परा के तो वे सर्वमान्य आचार्य ही थे और उस क्षेत्र में उनकी बराबरी का तो प्रश्न ही नहीं उठता। प्रगीत काव्य की दृष्टि से भी उनकी देन कम महत्त्व की नहीं है। उन्होंने लम्बे आकार वाले, विचार-तत्त्व से परिपूर्ण, टेक-विहीन गीत, जिन्हें हिन्दी में "प्रगीत" की संज्ञा दी गयी है तो लिखे ही, लघु आकार के रागतत्त्व प्रधान संगीत-समर्थित गीत (गेयगीत) भी खूब लिखे। इस दूसरे प्रकार के गीतों की कुछ चर्चा यहाँ अवश्य करना चाहूँगा।

सनेही जी के गीतों में देश-प्रेम, राजनीति, मानवता, जातीय सद्भावना, सुधार-वादी वृत्ति जैसे द्विवेदी-युग के पूर्व स्वीकृत विषयों पर लिखे गीत तो मिलते ही हैं, कुछ गीत विशुद्ध व्यक्तिनिष्ठ रागात्मकता से परिपूर्ण भी दिखायी पड़ते हैं। इन गीतों में भी कहीं-कहीं उनकी दार्शनिक मुद्रा सामने आ जाती है पर अधिकांशतः उनके भावुक हृदय की तरलता इन गीतों को रससिक्त कर गयी है। खड़ीबोली के आरम्भिक विकास के दिनों में जैसा कि मैं पहले संकेत कर चुका हूँ, सनेही जी जैसी साफ-सुथरी मुहावरेदार जीवन्त भाषा जो मानो प्रगीत-रचना के लिए ही बनी थी, देखकर उसकी भावी परिणति का पूर्वाभास हो जाता है।

उनके राष्ट्रीय गीतों में देश की वंदना भी है और नव जागरण का उद्‌घोष भी, ललकार भी है और उद्‌बोधन भी, उत्सर्ग की उमंग भी है और विवेक की चेतना भी। गांधी जी के विचारों की काव्यमय प्रस्तुति उनके लिखे "अहिंसा संग्राम" और "सत्याग्रह" जैसे प्रगीतों में देखी जा सकती है। देश-वंदना के गीत मे जन्मभूमि की भौगोलिक सुषमा के साथ उसकी सांस्कृतिक गरिमा का चित्र भी अंकित है—

सुरसरि सलिल - सुधा से सिंचित,
मंजुल मलय - समीर संचरित,
सुषमा सब सुरपुर की संचित,
करते सुर गुण - गान।
जयति भारत जय हिन्दुस्तान।
पुण्य पुंज पावन पृथ्वी पर
धीर - वीर, वर, धर्म - धुरन्धर
सत्य अहिंसा - दया - सरोवर,
भुक्ति - मुक्ति की खान।
जयति भारत जय हिन्दुस्तान।

और सोई हुई जनता की आँखें खोलने वाला यह उद्‌बोधन कितना प्रेरक है—

जीवन किसने है दिया तुझे,
सामर्थ्यवान है किया तुझे,

तू सोया किसकी छाती पर,
दिन-रात गोद में लिया तुझे,
यह तो अपने मन में विचार,
तू जन्म-भूमि की सुन पुकार।
थक गयी भार धरते-धरते
सेवा तेरी करते-करते
पत्थर बन गया न पिघला तू
कुछ तो करले मरते-मरते
ऋण तुझ पर है मन में विचार
तू जन्म-भूमि की सुन पुकार।

देश के नवजवानों को संघर्ष का निमन्त्रण और बलिदान की प्रेरणा देने वाले इन गीतों का कितना ऐतिहासिक महत्त्व है और इन गीतों ने स्वातन्त्र्य संघर्ष को कितनी शक्ति पहुँचायी थी, यह हम सभी जानते हैं। देश की भावी पीढ़ी को जानने के लिए ये गीत पुस्तकाकार रूप में संकलित करके स्कूल-कालेजों और विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में रखे जाने चाहिए ताकि कल आने वाली पीढ़ी यह जान सके कि इतने बड़े स्वतन्त्रता-संग्राम में हिन्दी के कवियों की कितनी मूल्यवान भूमिका रही है।

शायद ही इस देश का कोई कवि हो जिसने गांधी जी पर कविता न लिखी हो। उनके महिमामय व्यक्तित्व का प्रभाव सन् २० में ही देशव्यापी हो चुका था। गांधी जी की सत्यनिष्ठा, अहिंसा और अविचल दृढ़ता के साथ ही उनके चरखा-आन्दोलन की जादुई युक्ति ने साम्राज्यवादी पशुता को प्रकम्पित कर दिया था। संसार के सामने देश का मस्तक सहसा ऊँचा हो गया था। कवि त्रिशूल ने लिखा—

तू व्याप रहा है घर-घर मे
तेरी चरखा दुनिया भर में
हिंसा के भारी भर-भर में
निज सत्य-अस्त्र लेकर कर में
पशुता को डाँट दिया तूने, संसार प्रेम से दिया पाट।
तू है विराट्, तू है विराट्।
तू एक निराला जादूगर
तेरे छूते सब छूमन्तर
चरखे को दे देकर चक्कर
काता स्वातंत्र्य-सूत्र सुन्दर
करता स्वदेश का सर ऊँचा तेरा प्रशस्त उन्नत ललाट।
तू है विराट्, तू है विराट्॥

जन-जन तक पहुँचने वाले इन गीतों में लोक-व्यवहार की जन सामान्य भाषा सप्रयोजन रखी गयी है। चूँकि इन गीतों में निहित सन्देश को हिन्दू और मुसलमान दोनों तक पहुँचाना था इसलिए यहाँ हिन्दी और उर्दू का गंगा-जमुनी संगम दिखायी पड़ता है। ऐसा ही भाषा की सादगी का सौन्दर्य और प्रवाह इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है —

हृदय चोट खाये दबाओगे कब तक ?
बने नीच यों मार खाओगे कब तक ?
तुम्हीं नाज बेजा उठाओगे कब तक ?
बँधे बंदगी यों बजाओगे कब तक ?
असहयोग कर दो। असहयोग कर दो।

और कष्टों में ढाढ़स बँधाते हुए भयग्रस्त हृदयों में आशा और उत्साह का सँचार करने वाले एक लावनी-गीत की ये पंक्तियाँ भी कम सुन्दर नहीं हैं—

इस अन्धकार से मत घबरा बढ़ चल हे वीर अधीर न हो।
मुझको भय है भय-भ्रान्ति कहीं यह पैरों की जंजीर न हो ॥
पतझड़ से व्याकुल हो जाये वह फुलवारी का माली क्या।
पीले पत्ते गिरते न अगर तो हरियाली फिर डाली क्या ?
जिसने दुख देखा नहीं कभी, उसको घड़ियाँ सुखवाली क्या ?
काली न अमावस होती तो छवि पाती वह दीवाली क्या ?
तकदीर काम कब देती है जब तक कि ठीक तदबीर न हो।
इस अन्धकार से मत घबरा बढ़ चल हे वीर अधीर न हो ॥

दार्शनिक भावना के गीतों में मृत्यु, जीवन, ब्रह्म आदि पर विचार-कण सँजोये गये हैं। कहीं-कहीं विवर्तमान जगत् की विभिन्न स्थितियों के चित्रों के साथ जन्म-जन्मान्तरों के क्रम में जीव की यात्रा का सुन्दर वर्णन मिलता है—

लड़कपन से बहकर जवानी में पहुँचा
जवानी से आगे मिला फिर बुढ़ापा
न अब तक दिखायी दिया है किनारा
लिये जा रही खींचती एक धारा
पता कुछ नहीं है कहाँ जा लगूँगा
नहीं जानता पार हूँगा न हूँगा
मगर पार पहुँचे बिना दम न लूँगा
जहाँ मैं रहा था वहीं पर रहूँगा
युगों से मैं रहता चला आ रहा हूँ।
किसी ओर बहता चला जा रहा हूँ।

"जीवन है एक पहेली", "प्रत्यूष प्रवाह", "सराये दुनियाँ" दार्शनिक भावना के सुन्दर गीत हैं।

राष्ट्रीय गीतों की ओजस्विता और दार्शनिक गीतों के विचार-प्रवाह की झलक देखने के बाद हमारा ध्यान बरबस सनेही जी के मधुर आत्मनिष्ठ गीतों की ओर जाता है। रागात्मक भावना के संस्पर्श से ये गीत अपनी स्वाभाविक भूमि पर स्थित हैं। इसीलिए वे विशेष मार्मिक और हृदयग्राही हो गये हैं। इनमें प्रणय की मादक स्मृतियाँ हैं, प्रिय की निष्ठुरता पर व्यथापूर्ण उपालम्भ है, प्रिय के आगमन की विकल प्रतीक्षा है, भाग्य की कठोरता और निराशा की विषादमयी अनुभूतियाँ—सभी कुछ है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

मीठे मीठे बोल सनेही।
जिनसे मिसरी मात हुई थी
सुधा सुलभ सी ज्ञात हुई थी
कितनी मधुमय रात हुई थी
रस की तो बरसात हुई थी
वे घड़ियाँ अनमोल सनेही।

× × ×

पथ थकते आँखें पथराईं,
किन्तु नहीं वे घड़ियाँ आईं;
पड़ी न देख कही परछाँईं
किरणें कहाँ सुछवि की छाईं,
अर्पण करूँ किसे मैं प्रियतम
अपना संचित प्यार, कहाँ हो?
जीवन के आधार कहाँ हो?

× × ×

हाय वह आशाओं का केन्द्र
हंत वह जीवन-सरिता-स्रोत
आह वह अरमानों का यान,
भावना-सागर का वह पोत,
कहीं क्या डूबा मेरा हृदय?

शोक-गीतों में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की मृत्यु पर लिखा गया गीत सर्वोत्तम है। द्विवेदी जी पर सनेही जी की अगाध श्रद्धा थी। वे उनके वरेण्य गुरु थे और पथ-प्रदर्शक भी। "क्या कहिए गुरुता उनकी गुरु के गुरु भी जिनके हुए चेले"—सनेही जी की द्विवेदी जी के सम्बन्ध में कथित उक्ति प्रसिद्ध ही है। उनके शोक-गीत की ये पंक्तियाँ अविस्मरणीय हैं :—

है शोक मग्न अवनी अम्बर।
उठ गये हाय आचार्य प्रवर॥

जिनकी प्रतिभा थी परम प्रखर,
था प्राप्त जिन्हें वाणी का वर,
तप निरत रहे जो जीवन-भर,
जिनकी है जग मे कीर्ति अमर,
जो थे अजेय निर्भीक निडर
लेखनी विकट थी वह खंजर
प्रतिपक्षी होता था जर्जर
मैदान किये कितने ही सर
हम फूले थे जिनके बल पर।
उठ गये हाय आचार्य प्रवर॥

कवि का जन्म उन्नाव के हड़हा ग्राम में हुआ था। बचपन भी वहीं बीता था। तरुणाई व प्रौढ़ावस्था अवश्य ही कानपुर नगर में बीती पर वार्धक्य आया तो फिर गाँव से सम्बन्ध जुड़ गया। तात्पर्य यह है कि जीवन पर्यन्त किसी-न-किसी रूप में वे गाँव के जीवन से जुड़े रहे; वहाँ के हरे-भरे खेतों, बगीचों, ताल-तलैयों, पशु-पक्षियों के अतिरिक्त ऋतुओं के परिवर्तित क्रम के अनुरूप प्रकृति के नित नवीन परिधानों का चित्रमय सौन्दर्य देखते रहे। गाँव के जीवन से इतनी आन्तरिकता और आत्मीयता के साथ सम्बद्ध कवि-हृदय प्रकृति की रसमयी विभूति पर न रीझा हो, यह सम्भव नहीं। गाँव में बरसात का महत्त्व तो सर्वोपरि है ही, उसका आनन्द भी अद्भुत होता है। बदली पहले तो अचानक आकाश में घिर आती है फिर घुमड़ती हुई झूम-झूम कर बरसने लगती है। जले हृदयों का दाह शान्त हो जाता है। मोर प्रसन्न होकर नाचने लगते हैं, चारों ओर पानी ही पानी दिखायी पड़ता है, ताल-तलैया भर जाते हैं। एक अजीब समा बँध जाता है। कवि का मन बिना गुनगुनाये नहीं रहता—

घूम-घूम बरसी रे बदरिया।
झूम-झूम बरसी रे बदरिया॥
दग्ध हृदय की ताप सिरानी,
हुई मयूरो की मनमानी,
देखो जिधर उधर ही पानी,
भरती सर सरसी रे बदरिया।
झूम-झूम बरसी रे बदरिया॥

इस गीत की शब्दावली पर ध्यान दीजिए। लोक-गीतों की राह पर चलने वाली भाषा यहाँ कितनी मृदुल, सहज और रसभीनी हो गयी है। चित्रात्मकता और ध्वन्यात्मकता—कविता के दोनों ही प्रमुख तत्त्व यहाँ एक साथ मौजूद हैं। बदरिया का चारों ओर घूम-घूमकर और झूम-झूमकर बरसना कवि की चित्रण-क्षमता का ही नहीं, चेतन प्रकृति

की सहृदयता का भी प्रमाण है। "भरती सर सरसी" में "सर्सर्" की ध्वनि तेजी के साथ गिरते हुए पानी की आवाज का ही नहीं, भूमि की फिसलन का भी अहसास कराती है। "ताप सिरानी" में ताप का लिंग-परिवर्तन ठीक ही किया गया है। "सिरानी" में चिर दग्ध हृदय के पुराने ताप की शान्ति का जो भाव प्रकट होता है वह उसके अन्य किसी पर्याय से सम्भव नहीं। ऐसे ही गीत सच्चे अर्थों में 'गीत' होते हैं।

५६/१ बिरहाना रोड,
कानपुर-२०८००१.

रससिद्ध कवि सनेही

डॉ० प्रमिला अवस्थी

सनेही जी रससिद्ध कवि हैं। उनकी कविता में हृदयस्पर्शी भावाभिव्यंजकता का प्राधान्य है। 'सनेही' और 'त्रिशूल' से प्रख्यात सनेही जी के भिन्नार्थी उपनाम उनके हृदय की स्निग्ध भावुकता और संघर्ष का प्रतीक है। 'सनेही' जी का नाम ही उनके हृदय की मूलवृत्ति प्रेम का परिचायक है जोकि मानवमात्र की मूल और आदिम वृत्ति है जिसके अभाव में सरस साहित्य की संरचना कठिन ही नहीं असम्भव भी है। सनेही जी के इस आर्द्र रूप के दर्शन विशेष रूप से करुण प्रसंगों और स्नेह प्रसंगों में मिलते हैं। जिस प्रकार स्व० दिनकर लिखते हैं—'कुरुक्षेत्र' और 'हुंकार' की रचना के बाद भी मेरी आत्मा "रसवन्ती" में ही रमी है उसी प्रकार 'त्रिशूल' के रूप में क्रान्तिकारी स्वरों की प्रेरणा देते हुए भी सनेही जी का अति भावुक हृदय प्रेम और शृंगार की मादक फुहार से बच नहीं पाया है। अक्सर भीग ही गया है। रीतिकालीन परम्परा के अवशेष के रूप में ब्रजभाषा छन्दों, घनाक्षरियों तथा खड़ीबोली गीतों के रूप में वह व्यक्त ही हो गया है। इनके ब्रजभाषा छन्दो में रीतिकालीन चातुर्य, चमत्कार तो है ही, साथ ही, भावभीनी गन्ध भी कम नहीं है—

"चारिहू ओरन तै चरचै यई; चौंचद हाइन की चर्चा हैं
वै उनको मुख देखे जियैं, उनहू की दबैं वहीं दाबी उमाहैं
बाज न आवैं लिहाज करैं नहीं, कैसे कै लोक की लाज निबाहैं
कोटि उपायन कीली रहीं नहीं, ढीली भई हैं रसीली निगाहैं।"

शृंगार के अपर पक्ष में भी सनेही जी खतरे के निशान को पार कर गये हैं। वियोग शृंगार की मरण अवस्था का वर्णन कर भी शृंगार के स्थायी भाव की रक्षा करना बड़े-बड़े कवियों के लिए चुनौती है लेकिन कवि इसे भी बड़ी सजीवता तथा सजगता से वर्णित करता है—

"बहि-बहि जाति नेह दहि-दहि जाति देह
रहि-रहि जात जान रहि-रहि जाति है।"

एक यही नहीं, न जाने ऐसे कितने मार्मिक और मादक घड़ियों की सृष्टि सनेही-काव्य में मिलती है। प्रिय-आगमन की आशा से पुलक, निराशा से पीला पड़ना, अश्रुधार बहना आदि अनेकानेक भावों की लड़ियाँ द्रष्टव्य हैं—

"छन पुलकित होति छन ही में पीरी परै
आंसुन की झारन छलक छहरति है
थहराति आठो याम दीठि की-सी मारी, तन
श्याम भयो कीरति कुमारी कहरति है
आयो कछू काम नहिं वैद हू बुलाये बहु,
काहू बिधि बहराये नहिं बहरति है
सहमी ससी-सी नयी व्याधि सों ग्रसी-सी
काहू कारे की डसी-सी रहि-रहि लहरति है।"

इसी प्रकार—

"फेरि दिन फेर फिरे छाई है बसन्त छवि
मालती खिली है औ गुलाब-पुञ्ज चटके
अटके कहाँ हो देखो घट के उघारि नैन
खाहु न मधुप झरबेरिन में झटके।"

मे प्रकारान्तर से कवि ने अविवेकी प्रणयी की ओर संकेत कर दिया है। प्रिय-आगमन की पाती प्रिया की मन की आग बुझाती है—

"माथ सों छुवाती सियराती लाय-लाय छाती
पाती आगमन की बुझाती आग मन की।"

सहृदयों के हृदय विदीर्ण करने वाले उदाहरणों की यह बानगी पर्याप्त है। करुण रस भी रससिद्ध कवि से अछूता नहीं रहा है। "करुणा-कादम्बिनी" सनेही जी के करुण रस प्लावित कविताओं का संग्रह है। यद्यपि इनको अन्य करुण रस की रचनाएँ भी यत्र-तत्र बिखरी पड़ी हैं। इस संग्रह मे संगृहीत "कौशल्या क्रन्दन", "बन्धु वियोग", "अशोक वन में सीता", "दुःखिनी-दमयन्ती", "शैव्या सन्ताप" आदि हृदयद्रावक एवं अति द्रवणशील कविताएँ हैं। कौशल्या क्रन्दन कविता पढ़ने पर तो सहसा भवभूति की उक्ति स्मृत हो जाती है—

"पूरोत्पीडे तटाकस्य परीवाहः प्रतिक्रिया
शोक क्षोभे च हृदयं प्रलापैरेव धार्यते"

कौशल्या को क्षोभ है कि उसका पुत्र राजपुत्र होकर भी भिक्षुक के समान रहेगा—

"नरपति सुत हो के, भिक्षु का वेश लेगा
विधि मुझ दुखिनी को, दुःख क्या-क्या न देगा।"

एक ओर 'उसे नारी जन्म क्यों दिया' इस पर विधि को कोसती भी है दूसरी ओर उससे प्रार्थना भी करती है कि—

"पर विनय न मेरी है विधाता भुलाना
मम सुत वित जोजी, तू न भूखा सुलाना।"

एक माँ की इससे बड़ी साध और क्या हो सकती है "बन्धु वियोग" कविता में लक्ष्मण-मूर्च्छा पर राम-प्रलाप का वर्णन जैसा हृदयस्पर्शिनी भाषा में किया है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

"शैव्या सन्ताप' कविता में सर्प द्वारा रोहित के दंशजन्य शैव्या का करुण प्रलाप है—वह कहती है—

"अभी तो दूध भी छूटा नहीं था
नजर भर देख सुख लूटा नहीं था।"
× × ×
"अभी कल तक तुम्हें चलना सिखाया
कहाँ से यह पराक्रम आज पाया।"

श्मशान-भूमि में हरिश्चन्द्र को पहचान कर शैव्या फूट-फूट कर रो पड़ती है यह स्थिति करुण रस दृष्टिवत् है—

"कहाँ थे नाथ तुम हा ! लुट गयी मैं।
कुँवर से हाय अपने छुट गयी मैं।।

शैव्या पर लेखनी बहुत कम लोगों ने चलायी क्योंकि करुण रस चित्रण अपेक्षाकृत कठिन होता है किन्तु-सनेही जी ने इस चित्रण में—"अपि ग्रावारोदत्यपि दलति वज्रस्य हृदयं" को सार्थक कर दिया है। "दुःखिनी दमयन्ती" कविता पर संस्कृत के क्लिष्ट 'नैषध चरित' का प्रभाव पड़ने से अपेक्षाकृत सम्प्रेषणीयता का ह्रास हुआ है। सनेही जी की अन्य तमाम करुण रस की कविताएँ— 'दीन की आह', 'आँसू', 'दरिद्र दीवाली', 'दुर्योधन विलाप', 'श्रवण शोक', 'किसान' आदि कवि-हृदय की मूल प्रवृत्ति की ओर स्पष्ट संकेत करती हैं। सनेही जी की कविता उनके हृदय से सीधे आविर्भूत होने के कारण श्रोताओं और पाठको के हृदयों में सीधे प्रविष्ट होकर उन्हें रसोन्मत्त बना देती हैं। सनेही जी करुण रस के धनी हैं। 'करुणा कादम्बिनी' नामक पुस्तक तो उनके इस रस का उपलक्षण मात्र है। सनेही जी रससिद्ध कवि हैं। सामयिक विषय उनके नैसर्गिक प्रवाह को अवरुद्ध नहीं कर पाये। जीवन के कुछ ऐसे शाश्वत सत्य होते हैं जो देश और काल की परिधि से परे होते हैं। कविता उन्हीं शाश्वत सत्यों को वाणी देने के कारण अमर होती है। प्रेम, सौन्दर्य, करुणा ऐसे ही जीवन के शाश्वत सत्य हैं जिनमें कवि-हृदय स्वतः डूब जाता है और उसे रससिद्ध कर देता है। वस्तुतः ऐसे रससिद्ध कवि ही जयी होते हैं—

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः" और सनेही जी ऐसे ही रससिद्ध कवीश्वर थे।

२२/३ फीलखाना
कानपुर—२०८००१
(उ० प्र०)

□

सुकवि सम्राट् आचार्य 'सनेही'

डॉ० रामेश्वर शर्मा

युग और साहित्यकार का सनातन सम्बन्ध है। कुछ साहित्यकार ऐसे होते हैं जो एक प्रकाश-बिम्ब की तरह आगे-आगे चलते जाते हैं। युग उनके पद-चिह्नों पर पद धरता आता है। बनाये हुए रास्ते पर अधिक सुविधा से, अधिक तेजी से, दौड़ता हुआ आता है। पूर्ववर्ती साहित्यकार के पद-चिह्नों पर परवर्ती युग के साहित्यकार अपने पद-चिह्न अंकित करते हैं। प्रथम पद-चिह्न लुप्त हो जाते हैं। साहित्य के प्रांगण मे नये कविगण खड़े हो जाते हैं। साफ बनाये हुए रास्ते पर सुविधा से आने के कारण उन्हें परिश्रम कम पड़ता है। थकान या श्रांति कम रहती है। लिहाजा ये कविगण 'मैं कवि-शृंगार-शिरोमणि', 'मैं ही वसन्त का अग्रदूत' आदि विविध अभिधानों से आत्म-प्रशंसा करते हैं। परम्परा के ज्ञान से अनभिज्ञ परवर्ती पीढ़ी उनके समक्ष नत-मस्तक होकर 'श्रद्धा-सुमन' अर्पित करने लगती है। किन्तु जरा गहराई से छानबीन की जाय तो ये विद्रोही कलाकार भी परम्परानुवर्ती ही सिद्ध होगे।

लेकिन वे कवि जो केवल रास्ता बनाते हैं, जो नये क्षितिज का उद्‌घाटन करते हैं, जो प्रकाश-बिम्ब की तरह आगे चलते हैं, जो प्रथम पद धरते हैं, जो प्रथम चिह्न अंकित करते हैं—और जो, युग उनका अनुवर्तन करे, इसके पूर्व ही चल देते हैं—उन कवियों को क्या कहा जायगा ?

हम लोग पढ़ते हैं, आधुनिक कविता का प्रवर्तन श्री निराला जी से हुआ। वे विद्रोही कलाकार थे। आज के युग का कवि जितना निराला जी को स्वीकार करता है उतना किसी अन्य पूर्ववर्ती को नही। निराला जी के प्रति ही वर्तमान पीढ़ी ने सर्वाधिक श्रद्धाञ्जलियाँ अर्पित की हैं।

अच्छी बात है। हमे इस सिलसिले में कुछ नहीं कहना। हम तो सिर्फ इतना ही कहना चाहते हैं कि कथित विद्रोही पं० सूर्यकांत जी त्रिपाठी 'निराला' कोई विद्रोही कवि न थे। परम्परावादी थे। और भी साफ शब्दों में कि अनुवर्ती कवि थे—परम्परानुवर्ती। निम्न उद्धरण साक्षी हैं :—

(१) चले आओ ए बादलो आओ-आओ।
तुम्हीं आके दो चार आँसू बहाओ॥
दुखी हैं तुम्हारे कृषक दुख बँटाओ।
न जो बन पड़े तो बिजलियाँ गिराओ॥

न रोयेंगे हम धज्जियाँ तुम उड़ा दो।
किसी भाँति आपत्ति से तो छुड़ा दो॥
जमीं जिसमें दिन रात वे सिर खपाएँ।
उसे खाद दे हड्डियाँ तक घुलाएँ॥

—पूर्ववर्ती कवि

जीर्ण बाहु है शीर्ण शरीर।
तुझे बुलाता कृषक अधीर।
ऐ विप्लव के वीर,
चूस लिया है उसका सार।
हाड़ मात्र ही है आधार,
ऐ जीवन के पारावार।

—श्री निराला

(२) तू दिवाकर तो कमल मैं,
जलद तू मैं मोर हूँ।

—पूर्ववर्ती कवि

तुम दिनकर के खर किरण जाल,
मैं सरसिज की मुस्कान।
तुम वर्षा के बीते वियोग,
मैं हूँ उसकी पहिचान॥

—श्री निराला

ये दो उदाहरण हैं। ये उदाहरण श्री निराला जी की अत्यन्त प्रसिद्ध एवं सिद्ध कृतियों से प्रस्तुत किये गये हैं। प्रथम उदाहरण 'बादल राग' से तथा दूसरा उदाहरण 'तुम और मैं' से सम्बन्धित है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना अन्यथा न होगा कि हमारा संकेत श्री निराला जी की मौलिकता पर प्रश्न-चिह्न के रूप में न ग्रहण किया जाय। न ही उनकी उस मौलिकता की मीमांसा ही हमारे लिये अपेक्षित है जिसमे बिहारी की तरह उन्होंने भाव की समृद्धि की है। उनका प्रदेय तो सुविख्यात ही है। हमारा अभिप्राय तो सिर्फ इस मूलभूत तथ्य की ओर संकेत मात्र करना है कि साहित्य एक विकासमान सत्ता है, व्यक्ति का आत्मसाक्षात्कार मात्र नहीं है। अतः साहित्य में कविविशेष को अतिरंजित गौरव प्रदान करना व्याजांतर से अन्य अनेक महत्त्वपूर्ण कृतिकारों के प्रति अन्याय का रूप धारण कर लेता है। फिर कभी-कभी यह अन्याय ऐसे कृतिकारों के साथ भी हो जाता है जो कठिन रास्ते पर प्रथम चरण धर कर उसे सुगम बनाते हैं।

निराला जी तो स्वयं जीवन भर इस प्रकार के अन्याय का विरोध करते रहे हैं। वे अपने को वसन्त का अग्रदूत भी कहते रहे हैं। लेकिन ऊपर के उद्धरण तो कुछ दूसरी ही कहानी कह रहे हैं। उनमे विद्यमान भाववस्तु की व्यंजना तो कुछ और ही संकेत दे

रही है। क्या उनके पूर्व कोई कवि हिन्दी में वसन्त का संदेश लेकर उपस्थित हुआ था? जिसने अपने पंचम स्वर में देश को वसन्त के आगमन का प्रथम संवाद सुनाया हो; जिसने आह्वान किया हो :

आओ वीरो, बढ़ो काम का यह अवसर है।
कहते हैं सब, कुछ वसन्त की तुम्हें खबर है॥

यह वसन्त का सन्देश-वाहक कौन है? वह कवि कौन था जिसने हिन्दी के विख्यात महाप्राण श्री निराला की भाववस्तु पर इतना गहन प्रभाव डाला? जो निराला जी को निरालापन दे गया। ये कवि हैं पंडित गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', जिनकी सिद्धि 'मैदान में' स्वीकार करने के बाद भी साहित्यकार सकुचाते हैं।[१] जिनकी तुलना अपने किसी समकालीन कवि से नहीं की जा सकती; जो अपने ढग के सर्वथा निराले, सर्वथा अप्रतिम और बेजोड़ कवि हैं। अप्रतिहत आत्मतेज से दीप्त, मानव-मंगल की भूमि पर आत्मोत्सर्ग की भावना से आकण्ठ-आपूरित उनके समकक्ष दूसरा कवि नहीं। यही कवि है, जो प्रथम चरण धरता है और जिसका नत-मस्तक अनुवर्तन करती है परवर्ती पीढ़ी : प्रसाद और निराला, हितैषी और महादेवी।

लेकिन श्री सनेही केवल कवि नहीं हैं। वे आधुनिक हिन्दी कविता की नयी परम्परा के प्रवर्तक मात्र नहीं हैं। वे केवल साहित्य के कवि नहीं हैं। वे आधुनिक भारत की ऐसी महान् विभूति हैं- जिसका निर्णय इतिहास संभवत: शताब्दियों बाद करेगा। जैसाकि पूर्व कहा गया है—वे उन कृती महात्मा पुरुषों में से है जो प्रकाश बिम्ब की तरह अपने युग के आगे-आगे चलते हैं। और—युग? वे कविता मे नहीं जन्मते। उनमें कविता जन्मा करती हैं। अपने युग का अनुवर्तन सभी साहित्यकार किया करते हैं। कौन-सा साहित्यकार है जो अपने युग की अभिव्यक्ति नही करता। युग-युगान्तर का साहित्य इसी से भरा पड़ा है। लेकिन कुछ साहित्यकार ऐसे भी होते हैं जो युग के अनुवर्ती नहीं होते—जो युग को जन्म देते हैं। जो राजनीतियो के पीछे नहीं चलते, वरन् राजनीतिज्ञ जिनके पीछे चलते हैं। जिनका असीम शक्तिशाली और तेजस्वी व्यक्तित्व मानो पुकार-पुकार कर साहित्यकार के स्वतंत्र अस्तित्व और व्यक्तित्व का स्वर निनादित कर रहा है। राजनीति उनके पीछे चलती है, उनका अनुवर्तन करती है। यही तो वह भूमि है जहाँ साहित्यकार के व्यक्तित्व की कसौटी पर कसा जाता है। महाकाल की परीक्षाग्नि इसी को कहते हैं। कलाकार की अन्तर्दृष्टि किसे कहते हैं? उनकी दृष्टि क्या है? वह जो काल की सीमा पार कर सके।

लोकनायकत्व का प्रश्न इसी से जुड़ा है। साहित्य में लोकनायकत्व का आशय क्या है? यों तो कुछ लोग आज कल इस शब्द का प्रयोग म्युनिसिपल कमेटी के वार्ड-मेम्बर के लिए करने लगे हैं। लेकिन डॉ० ग्रियर्सन के उस कथन का क्या अभिप्राय था जिसमें उन्होंने तुलसीदास को बुद्ध के बाद भारत का सबसे बड़ा लोकनायक कहा था। यह तो

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, प० रामचन्द्र शुक्ल।

स्पष्ट ही है कि ग्रियर्सन की दृष्टि में राजनीति न थी। बुद्ध और तुलसीदास दोनों ही राजनैतिक नेता न थे। स्पष्ट ही ग्रियर्सन की दृष्टि संस्कृति और केवल संस्कृति पर ही केन्द्रित थी।

संस्कृति के विकास की गति मंद हुआ करती है। नवीन जीवन-दृष्टियाँ आती हैं, जीवन मे घुलती हैं, पचती है और फिर सामाजिक जीवन मे व्यापक परिवर्तन उपस्थित करती हैं। बुद्ध और तुलसीदास ऐसी ही दृष्टियां लेकर उपस्थित हुए थे तथा उन्होंने परवर्ती युगों के सांस्कृतिक जीवन पर दीर्घकाल व्यापी प्रभाव डाला। अतः उनका लोकनायकत्व 'काल-बद्ध' नहीं है। वे लगातार कई पीढ़ियों पर अपना प्रभाव डालते हैं। क्रमशः प्रभावाभिभूत समाज निर्मित होता चला जाता है। वे मात्र समकालीन लोक के नायक नही है। वे तो उस लोक के नायक हैं जो कालातीत है। जो अनेक काल-खण्डो में सतत वर्धमान है। बुद्ध और तुलसी के लोकनायकत्व के रहस्य को इसी सन्दर्भ में समझा जा सकता है। तत्कालीन युग के सीमित आवागमन के साधनों के सन्दर्भ मे तो उस कथन का मूलभूत अभिप्राय ही खो जाएगा। कालातीत लोक के प्राणो में सतत विकासमान भाव या विचार की परम्परा के विकास एवं संवर्धन मे ही लोकनायकत्व का गम्भीर आशय निहित है। श्री सनेही इसी सन्दर्भ मे आधुनिक भारत के सबसे बड़े लोकनायक हैं।

आज का भारत, समाजवाद और साम्यवाद की कल्पना का भारत है। हमारे देश का जीवन-प्रवाह इस विशिष्ट दिशा की ओर ही गतिशील है। यह प्रवाह आज भारतीय राष्ट्र का सर्वाधिक शक्तिशाली प्रवाह है। पंडित जवाहर लाल नेहरू का व्यक्तित्व इस महाप्रवाह की एक उत्तुंग तरंग की तरह रहा है। हमारे राष्ट्रीय जीवन का वह महा-प्रवाह श्री सनेही जी के तेजस्वी एवं प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व से ही आविर्भूत हुआ था। वे इस विराट् जीवन-प्रवाह के आरम्भ-बिन्दु थे। वे केवल कवि नहीं हैं, वरन् हमारे राष्ट्रीय जीवन और संस्कृति के केन्द्र मे साम्यवाद की भाव-भूमिका निर्मित करने वाले प्रथम राष्ट्रीय-सांस्कृतिक जन-नायक हैं। उन्होने ही सर्वप्रथम हमारे राष्ट्रीय-जीवन, स्वाधीनता और साम्यवाद को एक योगसूत्र मे अनस्यूत किया था। आधुनिक हिन्दी की क्रान्तिकारी काव्य-परम्परा के तो वे एक रससिद्ध कवीश्वर हैं ही, भारतीय जीवन तथा राष्ट्र के नवीन-मानस के शिल्पी भी हैं। हमारे साम्प्रतिक राष्ट्रीय-मानस का निर्माण उन्हीं की भाव-चेतना की तूलिका द्वारा हुआ है।

आश्चर्य की बात है कि हिन्दी की शोध-पोथियों में बच्चे बेधड़क यह लिखते हैं कि इस देश की प्रगतिशील और क्रांतिकारी कविता का जन्म तब हुआ जब पं० नेहरू १९२७ में रूस यात्रा कर आए अथवा जब श्री एम० एन० राय आदि ने साम्यवादी दल गठित किया। उसके दस बरस बाद पं सुमित्रानन्दन पन्त को स्फूर्ति हुई तब प्रगतिशील कविता जनमी। ताज्जुब होता है शोधग्रन्थों में ऐसी बेसिर पैर की बातें पढ़ कर। इससे भी बढ़कर ताज्जुब तब होता है जब पता चलता है कि इन शोधग्रन्थों का परीक्षण बूढ़े लोगों द्वारा किया गया है—और फिर भी ये भ्रान्तियां विद्यमान हैं। हिन्दी कविता ने क्रान्ति का

सन्देश पं० नेहरू सहित सम्पूर्ण भारत को दिया अवश्य है—लेकिन उनसे लिया है, यह कहना हिन्दी कविता के ऐतिहासिक क्रम-विकास के प्रति अपने अज्ञान का प्रदर्शन मात्र है। हिन्दी कविता पं० नेहरू और मिस्टर डागे के पूर्व से ही क्रान्तिकारी विचारणा की अभिव्यक्ति करती आई है और हकीकत तो यह है कि हिन्दी कविता ने ही समाजवाद और साम्यवाद की दृष्टि उपर्युक्त नेतृमण्डल सहित सम्पूर्ण भारत को प्रदान की है। १६२० के आसपास लिखी गई अनेक रचनाओं में यह जीवन-दृष्टि श्री सनेही जी द्वारा हिन्दी कविता के माध्यम से राष्ट्रीय जीवन में प्रथम बार प्रस्तुत की गयी थी।

श्री सनेही कर्मयोगी, महान सकल्पों के साधक तथा आमोघ आस्था से चालित तपस्वी पुरुष हैं। अपनी अविनाशी आत्मशक्ति के सम्पूर्ण वेग से उन्होंने राष्ट्रीय इतिहास के रथ को समाजवादी समाज-व्यवस्था की ओर मोड़ दिया। प्रारम्भ मे उनके हृदय मे श्री गोखले के प्रति गहरा सम्मान भाव था। वे सत्याग्रह के तपस्वी योद्धा थे तथा सत्याग्रह को उन्होने गहन आन्तरिक निष्ठा से ग्रहण भी किया था। सत्याग्रह के दार्शनिक-मनोवैज्ञानिक सन्दर्भ की जितनी सुन्दर मीमांसा सनेही जी के काव्य मे प्रस्तुत हुई है—किसी हिन्दी कविता में उस गहनता के साथ नही मिलती। इसी कविता मे सनेही जी ने श्री गोखले का स्मरण करते हुए सत्याग्रह सम्बन्धी उनकी धारणा का उल्लेख किया है—

कहते हैं श्री गोखले सत्याग्रह तलवार है।
जिसमे चारो ही तरफ धरी तीव्रतर धार है॥

लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि १६१७ की रूसी क्रान्ति की घटना ने उनके हृदय पर गहरा प्रभाव डाला। यद्यपि श्री सनेही जी १६१७ से पूर्व से ही कुछ ऐसी कविताएँ लिखते चले आ रहे थे जिनमे क्रान्ति के स्वर की परोक्ष व्यंजना दिखलायी पड़ती है। 'कृषक-क्रन्दन' उनकी इस प्रकार की रचनाओं का संकलन है। इसमें १६१७ से पूर्व की भी ऐसी रचनाएँ हैं जिनमे कवि सामाजिक-आर्थिक शोषण के विरुद्ध कम्बु-घोष निनादित करता है, तथापि १६१७ की रूसी क्रान्ति की घटना ने उनके भाव-प्रवण एवं प्रबुद्ध मानस को अवश्य ही आन्दोलन किया है। इसकी प्रतिध्वनि उनकी 'साम्यवाद' शीर्षक रचना मे मिल जाती है जिसमे वे बोल्शेविक क्रान्ति का स्वागत करते हुए उसके आगमन को समदर्शी का ही आगमन निरूपति करते हैं :

समदर्शी फिर साम्य रूप धर जग में आया।
समता का सन्देश गया घर-घर पहुँचाया।
धनद-रंक का ऊँच-नीच का भेद मिटाया।
विचलित हो वैषम्य बहुत रोया चिल्लाया।
काटे बोए राह में, फूल नहीं बनते गए।
साम्यवाद के स्नेह में सुजन सुधी सनते गए।

ऐसा प्रतीत होता है कि रूसी क्रान्ति की घटना से कवि-मानस मे निर्मित एक

विशिष्ट मनःस्थिति, जिसमें वह देश की दुर्दशा तथा कृषक-समुदाय की पीड़ा से अत्यंत क्षुब्ध है, उपस्थित हुई थी। मानो सनेही जी इस 'बिजली' की प्रतीक्षा ही कर रहे थे। १६१४ की एक कविता में सनेही जी ने बादल से प्रार्थना की थी कि यदि और कुछ नहीं कर सकते तो बिजली ही गिरा दो। यह कविता प्रारम्भ मे उद्‌धृत की गयी है। सोवियत क्रान्ति इसी प्रकार की बिजली थी—जो इस निस्पृह कर्मयोगी के मानस में समा गई। स्वाभावतः वे प्रबल आंतरिक निष्ठा के साथ साम्यवाद का सन्देश लेकर चल पड़े। वे अटल निश्चय वाले व्यक्ति थे। आदर्श के प्रति उनकी निष्ठा उन्हें भक्त कवियो के बीच बिठाती है। कर्मवीर पुरुष की इच्छा शक्ति का परिचय देते हुए मानो उन्होंने स्वयं की ही इच्छा शक्ति की व्यंजना की है—

उनकी इच्छा शक्ति
जिधर को मुड़ जाती है,
आके दैवी शक्ति
उधर ही जुड़ जाती है,
चौपट होते क्लेश
भीति भी जुड़ जाती है,
धज्जी-धज्जी विघ्न वृन्द
की उड़ जाती है।

लगता है, जैसे इसी इच्छा शक्ति को लेकर वे राष्ट्रीय जीवन की दिशा प्रत्यावर्तित करने को चल पड़े। और हम देखते हैं कि उनकी प्रबल इच्छा शक्ति ने इतिहास के रथ को जिधर मोड़ना चाहा था—वह रथ उधर ही मुड गया। आज का भारत उनके महान् स्वप्न का एक अंग है। लेकिन उनका स्वप्न और भी महान् है। वे सम्पूर्ण वसुधा को एक कुटुम्ब के रूप में देखना चाहते हैं। उनका यह स्वप्न आज भी मानवता की धरोहर है—

देखें कब भगवान हमें वह दिन दिखलाएं।
सकल जातियां देश राष्ट्र की पदवी पाएं॥
क्षीर नीर की भांति परस्पर सब मिल जाएं।
बृहद् राष्ट्र बन जायं शान्ति की उड़ें ध्वजाएं॥
साम्यभाव बन्धुत्व से पूरा आठों गांठ हो।
फिर वसुधैव कुटुम्बकम् का घर-घर में पाठ हो॥

सनेही जी के सबल तथा प्रेरक व्यक्तित्व का रहस्य कर्म की निष्काम-साधना तथा अमोघ संकल्प शक्ति में निहित है। वे सच्चे अर्थ मे कर्मयोगी कहे जा सकते हैं जिनका विश्वास अखण्ड तथा सतत दीप्त है। उनके काव्य में आस्था और अटूट आस्था का यह स्वर प्रणय-निष्ठा के सुपरिचित प्रतीकों द्वारा व्यक्त हुआ है। भारत को साम्यवाद की दिशा में मोड़ देने के दृढ़ संकल्प को धारण कर वे मैदान में कूद पड़े थे। इस क्षण में उनकी निष्ठा का स्वरूप चातक के प्रतीक से व्यंजित हुआ है—

कूप, बावली, झील और, कितने ही सर हैं।
सरिताएँ सैकड़ो बहुत झरते निर्झर हैं॥
जिनका पय कर पान सभी के तालू तर हैं।
चातक हैं चिर तृषित नहीं देखते उधर हैं॥
सुधा वृष्टि ही क्यों न हों, उसको क्या परवाह है।
है उनका संकल्प दृढ़, स्वाति बुन्द की चाह है॥

हिन्दी की कविता आस्था और विश्वास के इन अटूट, ऊर्जस्वी स्वरों को एक धरोहर की तरह दुहराती चली आ रही है। 'दीपक' का भी सनेही जी ने ऐसे ही प्रतीक रूप में प्रयोग किया है। उसमें संकल्प की दृढ़ता और अपराजेय आत्मविश्वास का भाव गूंथा है। परवर्ती काल में वही श्रीमती वर्मा का सर्वाधिक प्रिय प्रतीक बना। सनेही जी के संकल्प-सिद्ध, अविचल विश्वासी व्यक्तित्व का कुछ-कुछ आभास नीचे के छन्द से लग जाता है—

हंसों ने कब दीन मीन पर चोंच चलाई।
मरे क्षुधा से पर न घास सिंहों ने खाई॥
रवि कब शीतल हुआ, ताप शशि मे कब भाई।
तेजस्वी संकल्प नहीं तजते हैं भाई॥
कभी छोड़ते हैं नहीं, कर्म वीर निज आन को।
अधिक जान से जानते, स्वाभिमान सम्मान को॥

ऐसे कर्मवीर पुरुष ही 'सम करते हैं विषम भूमि को अपने कर से।' यही नहीं इसके लिए आत्मोत्सर्ग की भी आवश्यकता पड़ती है और वे कर्मयोगी होते हैं जो इस धरती को अपने खून से सींचते हैं :

'अगर न बरसे स्वयं सींचते खून जिगर से।'

यही ज्वाला थी इस शताब्दी के तीसरे दशक के प्रारम्भ-क्षण (१९२०-२१) में सनेही जी ने उत्तरापथ में लहरा दी थी और इतिहास साक्षी है कि वह मंद नहीं पड़ी और तभी उस वसंत का प्रश्न उपस्थित होता है। कौन-सा है वह वसंत? कौन से हैं वे किंशुक के फूल? कौन-सा है वह फाग का गुलाल? जिसके लिए रवीन्द्र नाथ कहते हैं— है भारत के ऋतुराज।' जिसके लिए निराला कहते हैं—मैं ही वसंत का अग्रदूत। वह वसंत कौन-सा है? उस वसंत का मादन-पंचम-स्वर-गायक-पिक कौन है?

वह वसंत हमारे राष्ट्रीय-सामाजिक जीवन में समाजवादी विचारणा के आगमन की ऋतु है। पतझर के पीले पत्ते झरते हैं और नवीन रक्त-किसलय और मंजरियों से जीवन-कानन शोभित होता है। काव्य पादपों पर बैठकर 'नव-वय' का 'नव' 'विहग वृन्द' 'नव स्वर' 'नव लय' में बोलने लगता है।

इस वसंत को अपने रक्त से सींचकर जन्म देने वाले कोकिल हैं—श्री सनेही :

कहते हैं सब, कुछ
वसंत की तुम्हें खबर है।

विचारधारा :

ऐसे युगान्तरकारी, क्रान्तिदर्शी, राष्ट्रीय इतिहास मे मार्गान्तरण उपस्थित कर देने वाले कवि की वैचारिक भाव-भूमिका का किंचित परिचय प्रस्तुत करना अन्यथा न होगा।

अपने समय के सूर्य कहे जाने वाले सनेही जी वैचारिक भूमिका पर अपने युग के विचारकों की अग्रिम पंक्ति मे अग्रगण्य हैं। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने उनकी गणना द्विवेदी मण्डल के बाहर के नक्षत्रो में की है। प० महावीर प्रसाद द्विवेदी नामक एक विद्वान इन दिनो सरस्वती का संपादन कर रहे थे तथा भाषा-संशोधन के क्षेत्र मे जिनका कार्य गणनीय माना जाता है। ये विद्वान इन दिनो हिन्दी के कवियो मे भय की भावना भर-भरकर उन्हे राजनैतिक विषयों पर कविता लिखने से पराङ्मुख कर रहे थे (देखिए—रसज्ञ रंजन, महावीर प्रसाद द्विवेदी) सरस्वती के सम्पादक के रूप में द्विवेदी जी द्वारा दिया जाने वाला यह परामर्श जब नवयुवको मे एक प्रकार की क्लीवता एवं हीनवीर्यता उत्पन्न कर रहा था— उसी समय श्री सनेही जी नवयुवक समुदाय को 'आओ वीरो बढो काम का यह अवसर है,' कहकर पौरुष को उद्दीप्त कर रहे थे। यही कारण है कि ब्रिटिश सत्ता द्वारा किए जा रहे दमन के युग में भय और त्रास के कुंठित वातावरण मे लिखे गए हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थ सनेही जी के कृतित्व का यथोचित मूल्यांकन नहीं कर सके। लेकिन सनेही जी का स्थान साहित्य के इतिहास मे कही अधिक राष्ट्रीय जीवन के इतिहास मे है। साहित्य के इतिहास उसी भूमिका पर आकार ग्रहण करते हैं।

आगे हम संक्षेप मे सनेही जी की विचारणा का परिचय प्रस्तुत करेंगे।

सनेही जी के अनुसार 'प्रेम' ही जीवन और जगत् का मूलभूत तत्त्व है। वह 'ब्रह्म' की तरह सर्वत्र व्याप्त है। प्राणिमात्र मे उसकी सत्ता है। घट-घट मे उसी की माया दृष्टिगोचर होती है। प्रेम अमृत तत्त्व है। मृत्युलोक मे जो अमृत है वह प्रेम से ही उत्पन्न हुआ है। इस संसार मे जो कुल, कुटुम्ब तथा जातियाँ दिखाई पड रही हैं—वे सब प्रेम से ही आविर्भूत है :

प्राणि मात्र मे प्रेम ब्रह्म की तरह समाया,
घट-घट में है देख पड़ रही उसकी माया।

× ×

इसने इस मरलोक मे सदा अमृत की दृष्टि की।
कुल कुटुम्ब की जाति की इसने जग मे सृष्टि की।

प्रेम तत्त्व की यह व्याख्या सर्वथा अभिनव है। कबीर ने कहा था—

पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पण्डित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पण्डित होय॥

और सनेही जी ने 'प्रेम' के इन्हीं ढाई अच्छरों को ब्रह्म का स्थानापन्न कर दिया। आगे चलकर कामायनी में प्रसाद जी ने भी 'प्रेमकला' को ही सृष्टि की मूल शक्ति के रूप मे उपस्थित किया है।

यह लीला जिसकी विकस चली
वह मूल शक्ति थी प्रेम कला।

यहाँ यह प्रतीति अन्यथा न होगी कि 'प्रेम' को इस नयी, विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण भूमिका पर स्थापित करने मे सनेही जी यदि एक ओर संत साधना से प्रभावित हैं तो दूसरी ओर वैज्ञानिक भौतिकवादी दर्शन की द्वन्द्वप्रक्रिया भी अपना कार्य कर रही है। वस्तुत: संतों द्वारा स्थापित प्रेम-तत्त्व मे यह नूतन-अर्थ-विधान पदार्थवादी द्वन्द्व-चेतना की अन्तर्दृष्टि का ही परिणाम है उसके अभाव मे 'प्रेम' की वह व्याख्या सम्भव न हो सकेगी— जिसमें वह ब्रह्म का स्थानापन्न बन सके। इस व्याख्या का विशेष महत्व इस रूप में समझा जा सकता है, कि व्याख्या मे जहाँ संत-साधना नवीन रूप धारण कर अपनी पूर्णता पर पहुँचती है, नूतन-अर्थ-संयोजना द्वारा झंकृत होती है, वहीं द्वन्द्वमूलक पदार्थवाद भी म नव संस्कृति के सनातन मान-बोध मे अन्तर्भूत होकर नव-कान्त तेजस्विता धारण करता है। सनेही जी द्वारा स्थापित इस प्रेम-दर्शन का सम्पूर्ण विकास आगे चलकर प्रसाद द्वारा स्थापित समरसता सिद्धान्त मे मिलता है। प्रेम स्रष्टा है, समरसता का आधार-भूत तत्त्व है। वह उभय पक्षीय है। विषम् उपादानों से निर्मित है। ये विषम उपादान स्वभाविक रूप से संघर्षशील है। द्वद्वमूलक है। समरमता ही सृष्टि का मूलभूत रहस्य है। वही आनन्द है। वही ज्ञानी का ज्ञान और पण्डित की पण्डिताई है। तभी तो कबीर ने कहा था— पोथी पढि-पढि जग मुआ। अमृत तो ये ही ढाई अच्छर हैं। इसी से सनेही जी प्रेम को अमृत का स्रष्टा कहते हैं—जो जगत् को, मरलोक को, मानवता को अमरत्व प्रदान करता है।

इस मूलभूत तत्त्व को भलीभाँति हृदयगम कर लेने पर जीवन-विकास की भिन्न-भिन्न भूमियों का स्वरूप-बोध सहज हो जाता है। इसी भूमिका पर आकर मनुष्य के गौरव की वास्तविक प्रतिष्ठा सम्भव है। तभी मानव-समाज के उस स्वाभाविक एवं आदिम स्वरूप को उसके सही रूप मे समझा जा सकता है तथा मानव सभ्यता के विकास की वैज्ञानिक व्याख्या सम्भव होगी। मानव सभ्यता के प्राथमिक स्वरूप का चित्र अंकित करते हुए सनेही जी ने लिखा है :

समदर्शी ने सकल मनुज सम उपजाए थे।
प्रकृति दत्त अधिकार सभी ने सम पाए थे॥
अमृत पुत्र सम सभी जगत् वन में आए थे।
सबने मेवे मधुर मुक्ति के सम खाए थे॥
जीवन उपवन के लिए जल समान दरकार था।
पृथ्वी पानी पवन पर सब का सम अधिकार था॥

— — —

एक भेड़ हो और दूसरा शेर, नहीं था।
एक बाज हो और अनेक बटेर—, नहीं था॥
एक जबर हो और दूसरा जेर, नहीं था।
आए दिन यह मचा हुआ अंधेर, नहीं था॥
सबको सम संसार में सब सुख सकल सुपास थे।
प्रभु उनमें कुछ थे नहीं, और नहीं कुछ दास थे॥

यह सभ्यता के विकास का आरम्भिक चित्र है। मनुष्य अमृत-पुत्र की तरह संसार के उपवन में प्रविष्ट हुआ था। जीवन मुक्त था। पृथ्वी मुक्त थी। पवन मुक्त था। 'जीवन उपवन के लिए जल समान दरकार था।'

लेकिन सभ्यता का विकास कुछ ऐसा हुआ कि यह स्वर्ग-सा सुहाना दृश्य स्थिर न रह सका। मनुष्यों की प्रकृति ने अपना कर्तव्य दिखलाया। अमृत-पुत्र मनुष्य की स्वाधीनता लुप्त हुई। शक्तिशाली मनुष्यों ने निर्बलों को दास बनाना प्रारम्भ किया। पशुबल के आधार पर समाज संघटित हुआ। वसुन्धरा वीर-भोग्या बनी। एक सुदामा हो गया, दूसरा कृष्ण बन बैठा। एक पुण्यमय, दूसरा पापी और अछूत।

पर मनुजों की प्रकृति रंग कुछ ऐसा लाई।
समय-समय पर घोर क्रान्ति उसने करवाई॥
सबल पड़े बलवान, मौत निर्बल की आई।
बना सुदामा एक, एक धनपति का भाई॥
घोर नारकी एक तो, एक स्वर्ग का दूत-सा।
एक पुण्य यम-दूत अति, पापी एक अछूत सा॥

सभ्यता के विकास को ऐतिहासिक क्रम में चित्रित किए बिना जीवन तथा जगत् के स्वरूप का बोध सम्भव नहीं है, क्योंकि जीवन और जगत् की सृष्टि किसी विशिष्ट मुहूर्त में न होकर इतिहास के सन्दर्भ में हुई है। वह महत्वपूर्ण तत्त्व इतिहास ही है जिसने जीवन और जगत् के वर्तमान स्वरूप का निर्धारण किया है। इसी दृष्टिकोण से सनेहीजी ने मानव-समाज के ऐतिहासिक विकासक्रम को चित्रित किया है। हिन्दी कविता में यह प्रथम प्रयत्न है। दूसरा प्रयत्न श्री प्रसाद में तथा तीसरा प्रयत्न श्री सुमन एवं श्री गिरिजा कुमार माथुर में विद्यमान है। सनेहीजी, प्रसाद जी, सुमनजी तथा गिरिजाकुमार जी एक ही परम्परा की कड़ियाँ हैं जो वैज्ञानिक भूमिका पर मानव समाज का चित्र प्रस्तुत करते हैं।

सनेही जी ने जातीयता (राष्ट्रीयता) के विकास को भी चित्रित करते हुए उसके सामन्त विरोधी स्वरूप की मीमांसा प्रस्तुत की। जातीयता सनेही के यहाँ राष्ट्रीयता की पर्यायवाची है। उसके उदय तथा विकास का निरूपण वे इस प्रकार करते हैं :

कुल मिल कर जब बँधे एकता के बन्धन में।
लगे विचरने भाव एक से मानव मन में॥

हुई एक-सी प्रीति धर्म में हो या धन में।
भव्य भवन बन गए बस्तियाँ बस कर बन में ।।
जन्मी यों जातीयता, पलने में पलने लगी।
विद्युत गति से वह चली, जब पैरों चलने लगी ।।

राष्ट्रीयता के उदय के प्रति कवि के मन में अत्यन्त हर्ष और उत्साह का भाव है। वह अत्यधिक प्रफुल्लता तथा उत्साह के साथ राष्ट्रीयता की भावना के आगमन का स्वागत करता है। लेकिन उसने उसे उसके उसी ऐतिहासिक सन्दर्भ में ग्रहण किया है जिसमें स्वतन्त्रता, समता तथा बन्धुता के आदर्श की घोषणा की गयी थी। सनेही जी वर्तमान युग को राष्ट्रीयता के यौवन काल की संज्ञा प्रदान करते हैं (अब तो जातीयता का जग में यौवन-काल है)। राष्ट्रीय भावना के दो महत्त्वपूर्ण प्रदेय हैं : (१) समानता का भावना का बोध तथा (२) सामन्तवाद का नियन्त्रण।

साम्य भावना का बोध कराते हुए वे कहते हैं—

सप्त रंग इव मनुज मिले हैं एक रंग है।
बूंद-बूंद मिल जलधि बने लेते तरंग हैं ।।

लेकिन इससे भी अधिक उसका महत्व सामन्तवाद के नियन्त्रण में है। राष्ट्रीयता के उदय, विकास और प्रसार ने आज जो परिस्थिति में परिवर्तन उपस्थित कर दिया है, उसके मूल्य को स्वीकार करते हुए वे कहते हैं—

आँख उठाए, रही शक्ति यह किस नृपवर में।

राष्ट्रभावना ने जो योग सूत्र स्थापित किया है उसे एक जंजीर की संज्ञा देते हुए वे कहते हैं—

कड़ी-कड़ी से बन गई,
बहुत बड़ी जंजीर है।
अब गजेन्द्र को बाँधने,
में समर्थ है, धीर है।

सनेही जी संसार की विभिन्न राष्ट्रीयताओं का मानवतावाद में पर्यवसान चाहते हैं। उनका मानवतावाद साम्यवाद प्रेरित तथा भारत की सांस्कृतिक चेतना में अंतर्भूत 'वसुधैव कुटुम्बकम' पर आधृत है। 'साम्यता' और 'बन्धुता' के अभाव में स्वतन्त्रता की कल्पना ही नहीं कर सकते। इसलिए राष्ट्रीयता एकत्व की भूमि पर ही निर्मित हुई। 'साम्यभाव' और 'बन्धुत्व' राष्ट्रीय एकात्मता के संघटक उपादान हैं। उनका स्पष्ट अभिमत है—

साम्यभाव बन्धुत्व एकता के साधन हैं,
प्रेम सलिल से स्वच्छ निरन्तर निर्मल मन हैं।
डाल न सकते धर्म आदि कोई अड़चन हैं ।।

यही नहीं, ये राष्ट्रीयताएँ भी मिल कर मानवता की प्रगति के लिए एक ही अभिलाषा से चालित होनी चाहिए। वे सम्पूर्ण संसार की एक भाषा होने का भी स्वप्न देखते हैं :

मिले रहें मन मनो में अभिलाषा भी एक हो।
सोना और सुगन्ध हो जो भाषा भी एक हो।
जाने कब पूरा होगा यह स्वप्न।

व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध का प्रश्न भी इसी से जुड़ा हुआ है। राज्य शक्ति के स्वरूप पर ही वह निर्भर करता है। सनेही जी के मतानुसार राज्य शक्ति सब को केन्द्रित और नियमित करे। राष्ट्रीय गौरव और देश भक्ति का भाव सबमे भरा हुआ हो। समाज मे समता के प्रति अनुरक्ति तथा विषमता के प्रति विरक्ति हो। राष्ट्र पताका पर 'न्याय और स्वाधीनता' लिखा रहे। राष्ट्र की स्वाधीनता शासन के अधिकार मे ही सुरक्षित है—उद्योगपतियो के अधिकार मे नहीं—'रहे राष्ट्र स्वाधीनता शासन के अधिकार मे।'

लेकिन राष्ट्रीय स्वाधीनता को शासन के अधिकार मे देने से व्यक्ति-स्वातन्त्र्य मे कोई बाधा नहीं है —

रहे व्यक्ति स्वाधीन अबाधित हो उनकी गति,
हों जब निर्मित नियम दे सकें उनमे सम्मति।
करे जाति निर्णीत स्वयं निज शासन पद्धति,
समझें जिसको योग्य बनाएँ उसे राष्ट्रपति।
हाथ रहे हर व्यक्ति का राज नियम निर्धार मे,
रहे राष्ट्र स्वाधीनता शासन के अधिकार मे ॥

जीवन यथार्थ :

प्रस्तुत विचारणा के संदर्भ में कवि के लोक-दर्शन का विशेष महत्व है। सनेही जीवन के अनुशीलनकर्ता तथा गंभीर द्रष्टा है। सामाजिक जीवन के अन्तर्विरोधो को उनकी समग्र गहनता मे उन्होंने आत्मभूत किया। इसी कारण जीवन के वैषम्य की अत्यंत तीव्र अनुभूति उनमे है। वे मानव सभ्यता के विकासक्रम के प्रथम व्याख्याता के रूप मे हिन्दी मे अवतरित होते है। वे जानते हैं कि अपने विकासक्रम मे मानवता ने समय-समय पर अनेक क्रान्तियाँ की हैं। कृषि-क्रान्ति इस प्रकार की क्रान्तियो मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण रही है। लेकिन कृषि-क्रान्ति की समस्त उपलब्धियो की शक्तिशाली सामन्तवाद ने तथा औद्योगिक क्रान्ति की उपलब्धियों को पूजीवाद ने हड़प लिया है—और शेष मानवता सुदामा हो गई है। जीवन-वैषम्य की इस तीव्रानुभूति की शक्तिशाली व्यंजना करते हुए वे कहते हैं —

कुछ भूखों मर रहे महातनु शीर्ण हुआ है।
कुछ इतना खा गए कि घोर अजीर्ण हुआ है।

कैसा यह वैषम्य भाव अवतीर्ण हुआ है।
जीर्ण हुआ मस्तिष्क हृदय संकीर्ण हुआ है।

कवि अत्यन्त आक्रोश के स्वर में कहता है यह कैसा अंधेर है कि कुछ तो बैठे-बैठे मोहन भोग खाते रहें जब कि कुछ लोग दिन भर घोर परिश्रम करके भी दाने-दाने को तरस कर रात्रि को अधपेट भूखा सोने को मजबूर हो। कुछ स्वर्ग का सुख पाने के लिए अवतार धारण करें—माना वे ईश्वर ही हों और कुछ इस दुनियां में सिर्फ नरक भोग करने के लिए आए हैं। कुछ लोग जीवन भर आनंद तरगों में मस्त रहें और कुछ लोगों की जिन्दगी 'हाय भाग्य'—'हाय भाग्य' करते-करते ही बीत जाए :

कुछ तो मोहन भोग बैठ कर हों खाने को।
कुछ सोवें अध-पेट तरस दाने-दाने को।।
कुछ तो लें अवतार स्वर्ग का सुख पाने को।
कुछ आएँ बस नरक भोग कर भर जाने को।।
कुछ आनन्द-तरंग में मग्न सदा रह कर रहें।
कुछ जीवन भर क्लेश में 'हाय भाग्य' कह कर रहें।।

यही वह परिस्थिति है जो उस परिस्थिति का निर्माण करती है जिसमें मानव को मानव की बू नापसंद होती—जो आज की सभ्यता-पूंजीवादी सभ्यता का मूलभूत आधार है। कहा जाना है कि हमारी आज की स्वच्छता की भावना मे यही वृत्ति कार्य कर रही है। मनुष्यता इसी भूमिका पर आकर नाना खण्डों में विभक्त हो गई। जिसका एक मात्र संदर्भ जीवन-विकास की गति को अवरुद्ध करना है। 'कुछ के सदा पौ बारा हों कुछ के सदा के लिए काने तीन'। इसी दारुण ग्लानिपूर्ण परिस्थिति का चित्र देखिए—

पड़े-पड़े ही लोग कुछ मौज उड़ाने।
कुछ श्रम से भी पा न सके मुट्ठी भर दाने।।
मिटी मित्रता, लगे मनुज से मनुज घिनाने।
एक रूप वह कहाँ, बन गये नाना बाने।।
यो पौ के पडते कि कुछ बने श्रेष्ठ कुछ हीन हैं।
"पौ बारा' कुछ के सदा, कुछ के काने तीन हैं।।

कवि कहता है कि श्रम ही भूख शक्ति है, उत्पादक है, स्रष्टा है, विकास का आधार है। श्रम की गरिमा ही विकास और सृजन है। आज के युग में श्रम की गरिमा रह गयी है?

कवि चुनौती देते हुए पूछता है कि श्रम किसका है और उसके प्रतिफल पर कौन अधिकार किए हुए है। कौन उत्पादन करता है और कौन खाता है। जिसका खून बहता है और किसका पेट मोटा हो रहा है? कौन सेवा करते हैं, कौन मौज उड़ाते हैं? और इसी

भूमिका पर पहुँच कर प्रश्न करता है कि क्या यह युग सृजन का युग है ? अथवा संहार का ? क्या इसे विकास का युग कह सकते हैं या—ह्रास का ?

श्रम किसका है मगर मौज हैं कौन उड़ाते।
हैं खाने को कौन, कौन उपजा कर लाते।
किसका बहता रुधिर, पेट हैं कौन बढ़ाते।
किसकी सेवा और कौन हैं मेवा खाते।।
क्या से क्या यह देखिए रंग हुआ संसार का।
युग विकास या ह्रास का सिरजन या संहार का।।

कवि कहता है, इस दारुण वैषम्य ने, काल की इस निठुराई ने, रावण और कंस जैसी क्रूरता उत्पन्न कर दी है। बिना मृत्यु के ही उसने अगणित मानवों का वध कर डाला है। इसने मनुष्य को विवेकहीन बनाकर अन्धा बना दिया है। जिससे वह अपने भाई का ही खून पीने लगा है, उसे देख तक नहीं पाता। पृथ्वी परम पीड़िता एवं विह्वला होकर पुकारने लगी। तथा उसके भीषण हाहाकार से भगवान का हृदय भी हिल गया है :

हिला दिया हरि का हृदय भीषण हाहाकार ने।

अतएव कवि की धारणा है समदर्शी ईश्वर ही साम्यवाद का रूप धारण कर फिर से संसार में आ गया है। फलतः प्रत्येक घर में समता का सन्देश पहुँचा दिया गया है। उसने धनवान और दरिद्र का भेद मिटा दिया है—जिससे विचलित होकर वैषम्य बहुत रोता-चिल्लाता रहा। लेकिन उसके द्वारा बिखेरे गए काँटों का कोई परिणाम न निकला। जो काँटे पथ में बोये गये थे वे ही फूल बन गए तथा सज्जन एवं सुधी जन साम्यवाद के स्नेह में सनते चले गए :

समदर्शी फिर साम्य रूप धर जग में आया।
समता का संदेश गया घर-घर पहुँचाया।।
धनद रंक का, ऊँच नीच का भेद मिटाया।
विचलित हो वैषम्य बहुत रोया चिल्लाया।।
काटें बोए राह में, फूल वही बनते गए।
साम्यवाद के स्नेह में सुजन सुधी सनते गए।।

आगे भी कवि इसी आदर्श को व्यक्त करते हुए कहता है :

ठहरा यह सिद्धांत स्वत्व सबके सम हों फिर।
अधिक जन्म से एक दूसरे क्यों कम हों फिर।
पर सेवा में लगे-लगे क्यों बेदम हो फिर।
जो कुछ भी हो सकें साथ में ही सब हों फिर।
सांसारिक सम्पत्ति पर सबका सम अधिकार हो।
वह खेती या शिल्प हो विद्या या व्यापार हो।

कवि कहता है सभी मनुष्य प्रकृति के पुत्र हैं। अतएव प्रकृति के प्रसाद के सभी समान रूप से अधिकारी हैं। एक व्यक्ति धनाधीश तथा दूसरा व्यक्ति भिखारी क्यों रहे। यह अत्यंत अन्याय है, लोक उत्पीड़नकारी है। दीन मनुष्य को श्रम का यथोचित प्रतिफल नहीं मिलता है। प्रकट रूप में चाहे दिखाई न पड़ती हो लेकिन ढोल में पोल भरी हुयी है :

मिलता दीनों को नहीं, समुचित श्रम का मोल है।
प्रकट न देखें लोग पर भरी ढोल में पोल है।।

अतएव नवयुग की साम्यवादी क्रान्ति ने चेतावनी दे दी है कि एक व्यक्ति और दूसरा असुर यह विभेद अब न होना चाहिए। दुर्योधन और विदुर का श्रेणी विभाजन अब न हो। संसार में वैषम्य बहुत हो चुका, अब अधिक न बढ़ना चाहिए। नए समाज में सुख और दुःख सभी के समान होने चाहिए तथा राज्यसत्ता की संरचना में भी सभी समान रूप से भागीदार होने चाहिए :

सुख-दुख सब सबके लिए,
हों इस नए समाज में।
सब का हाथ समान हो,
लगा तख्त में, ताज में।

कवि कहता है कि नवयुग को लाने वाले ये भाव फैल गए हैं। ये भाव और क्रान्ति कर उलट फेर करनेवाले हैं तथा कलियुग में सच्चा सतयुग लाने वाले एवं समता को देने वाले हैं :

फैले हैं ये भाव नया युग लाने वाले।
घोर क्रान्ति कर उलट फेर करवाने वाले।

कवि के उपरोक्त वक्तव्य के आधार पर यह निष्कर्ष ग्रहण करना अन्यथा न होगा कि रूसी क्रान्ति का भारतीय जनमानस पर अत्यन्त व्यापक और गहरा प्रभाव पड़ा था तथा युग-चेतना क्रान्ति की दिशा में अग्रसर हो रही थी तथा इस युग-व्यापी क्रान्ति चेतना का आदर्श साम्यवाद ही था। कवि ने साम्यवाद को धारा के प्रतीक द्वारा व्यक्त करते हुए उसकी बाढ़ में ऊँच-नीच सबके बह जाने की कल्पना प्रस्तुत की है :

समता सरि की बाढ़ में,
ऊँच-नीच बह जायगा।।
समतल जल ही की तरह,
एक रूप हो जायगा।।

सनेही जी ब्रजभाषा और खड़ीबोली दोनों में रचनाएँ करते तथा जागरण का मन्त्र फूँकते रहे। आज की हिन्दी कविता जितनी उनकी ऋणी है उतनी किसी अन्य भारतीय कवि का नहीं है। १९२० के बाद विकसित होनेवाली हिन्दी कविता पर उनके व्यापक प्रभाव की लम्बमान छाया विद्यमान है। वस्तुतः उनका कृतित्व ही वह बीज है—

जिससे आधुनिक हिन्दी कविता की मूलभूत चेतना का विकास हुआ। निराला जी ने अपने को साहित्य-पादप का पत्र कहा था (मैं पढ़ा जा चुका व्यस्त पत्र) तथा परवर्ती कविता को 'सुमन'। आधुनिक युग की कविता निराला जी के व्यापक प्रभाव को आत्मभूत कर विकसित हुई है और निराला जी का काव्य किस प्रकार सनेही जी की काव्य चेतना को अन्तर्भूत कर विकसित हुआ इसका किंचित संकेत हमने प्रारम्भ में किया है। निराला जी के अतिरिक्त आधुनिक कवियों ने हितैषी जी के माध्यम से भी सनेही जी की चेतना को ग्रहण किया है। हितैषी जी के काव्य की भाववस्तु तथा शिल्पविधान को परवर्ती पंत, नवीन, दिनकर प्रभृति कवियो ने अंगीकार करके निराला जी और हितैषी जी के अतिरिक्त स्वतंत्र रूप से भी परवर्ती पीढ़ी के कवि सनेही जी की काव्य वस्तु, भावभूमि, प्रतीक-बिम्ब आदि लेते आए हैं।

साहित्य का व्यक्तिपूजक दृष्टिकोण कैसी विडम्बना-पूर्ण परिस्थितियों की सरचना कर देता है—आधुनिक हिन्दी कविता का रूढ़ि-प्रधान अध्ययन इसका साक्षी है। हिन्दी कविता का अध्ययन इतना रूढ़ हो गया है कि वह सब मिलाकर १०-२० कविता पुस्तको के दो तीन सौ उद्धरणो की उद्धरणी करके पूरा हो जाता है। न तो मूल ग्रथो को पढ़ना आवश्यक रह गया है और न विचार की बन्द कोठरियों से ही बाहर निकलने की आवश्यकता समझी जा रही है। पता नहीं, यह सिलसिला कब टूटेगा ?

अध्यक्ष,
हिन्दी विभाग
नागपुर विश्वविद्यालय
नागपुर

[ ]

'सनेही' जी का काव्य

डॉ० गोकर्णनाथ शुक्ल

आचार्य पं० गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' हिन्दी साहित्य की द्विवेदीयुगीन काव्यधारा के युग निर्माता कलाकार तथा मूर्द्धन्य कवि हैं। काव्य के क्षेत्र में उनका व्यक्तित्व और कृतित्व उतना ही गरिमापूर्ण है जितना गद्य के क्षेत्र में आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी का। 'सुकवि' के संपादन द्वारा उन्होंने हिन्दी कविता के परिष्कार और विकास का अथक उद्योग किया तथा हिन्दी कविता को अनूप शर्मा एवं हितैषी जैसे समर्थ कवि प्रदान किये। आचार्यत्व और प्रबुद्ध चिन्तनपूर्ण कवित्व के 'सनेही' जी मूर्तिमान प्रतीक थे।

ब्रजभाषा और खड़ी बोली में समान रूप से प्रौढ़ काव्य-रचना करने वालों में सनेही जी अग्रगण्य थे। हिन्दी मुहावरों के अद्भुत अधिकार से सम्पन्न उनके ब्रजभाषा काव्य का एक उदाहरण देखिए—

नारी गही बेद सोऊ बनिगो अनारी सीख,
जानें कौन व्याधि यहि गहि-गहि जाति है।
कान्ह कहें चौंकति बकति चकराति लखि,
धीरज की भीति हाय ढहि ढहि जाति है।
सहि-सहि जाति नाँहि कहि-कहि जाति नाँहि,
कछु को कछू 'सनेही' कहि-कहि जाति है।
बहि-बहि जात नेह, दहि-दहि जात देह,
रहि-रहि जात प्रान, रहि-रहि जात है॥

हिन्दी के साथ-साथ उर्दू और फारसी पर भी सनेही जी का अच्छा अधिकार था। उर्दू में उन्होंने कई बहुत सुन्दर गजलें लिखी हैं। हिन्दी में कवित्त और सवैया उनके प्रिय छन्द थे और समस्या-पूर्ति में वे अत्यन्त पटु थे। 'त्रिशूल' उपनाम से भी उन्होंने अनेक कविताएँ लिखी हैं। उनकी प्रारम्भिक कविताएँ रसिक मित्र, काव्य सुधा निधि और साहित्य सरोवर आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई। प्रेम पचीसी, कुसुमाञ्जलि, कृषक-क्रन्दन, करुणा कादम्बिनी और त्रिशूल तरंग खड़ीबोली की उनकी प्रसिद्ध काव्य-रचनाएँ हैं।

सनेही जी का काव्य गम्भीर दायित्व-समन्वित रचनाधर्मिता का ज्वलन्त प्रमाण है। उनके काव्य में मानव के उज्ज्वल भविष्य के प्रति अदम्य आस्था और नव निर्माण की तीव्र आकांक्षा का स्वर सर्वत्र सुनाई देता है। स्वातन्त्र्य-भावना और सामाजिक चेतना

से अनुप्राणित उनका काव्य मनुष्य को कुण्ठाओं से मुक्त करनेवाला और समानता तथा विश्वबन्धुत्व की प्रेरणा देनेवाला है। व्यक्ति, समाज, राजनीति, धर्म और दर्शन-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उनका काव्य तर्क और बौद्धिकता के प्रति विशेष आग्रहशील है। वह सच्चे आत्म-बोध और लोक-कल्याण की पुनीत भावना से परिपूर्ण द्विवेदी-युग की विरल उपलब्धि है। इसे अनुभूतिपूर्ण चिन्तन, नीति-पोषित उद्बोधन तथा सरस कलात्मक व्यञ्जन का उदात्त प्रतिमान माना जा सकता है। ऊर्जा और तेजस्विता का जैसा प्रेरणापूर्ण समन्वय सनेही जी के काव्य में दिखाई देता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। एक उदाहरण देखिए—

जीवन-समर में अमर वर दें अमर, जीतने विरोधियों को विश्व के विजेता! जा।
लाख भय-भ्रान्ति हो अशान्ति का न लेना नाम, परम प्रशान्तचित होके शान्तिचेता! जा।
वायु प्रतिकूल है, हुआ करे न चिन्ता कर, नाव नीति की तू निज बल पर खेता जा।
साथी वही जिसने कि हाथी के लगाया हाथ, एक बस साहस 'सनेही' साथ लेता जा॥

सनेही जी के काव्य में यत्किञ्चित् द्विवेदीयुगीन उपदेशात्मक प्रवृत्ति भी है, किन्तु वह नीरस न होकर सरस, उत्प्रेरक और मार्गदर्शक है। जातीय गौरव और देशाभिमान को जाग्रत करनेवाला उनका निम्नांकित उपदेश हिन्दी काव्य-साहित्य में अमर है—

जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं, नरपशु निरा है और मृतक समान है॥

राष्ट्रीयता, देश-प्रेम और स्वराज्य-कामना की व्यञ्जना सनेही जी के काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति है। द्विवेदीयुगीन काव्य राष्ट्रीय आन्दोलन की व्यक्तिनिष्ठता के परिणाम-स्वरूप वीरपूजा की भावना से पूर्णतः ओतप्रोत था। सनेही जी के काव्य में भी बालगंगाधर तिलक, गोखले, मदनमोहन मालवीय और गांधी आदि युगपुरुषों का यथाप्रसंग अत्यन्त आदरपूर्वक स्मरण किया गया है। इस सन्दर्भ में उनकी 'राष्ट्रीय होली' शीर्षक रचना उद्धरणीय है—

छिड़ी है देश-राग की तान।
मुरली मधुर मदनमोहन की करती मधुमय गान॥
डमरू लिये बालगंगाधर डाल रहे हैं जान।
देवि बसन्ती को किलकण्ठी करती है कल गान॥
देते ताल सकल नेता हैं गांधी-से गुणवान्।
भारत हृदय मञ्जु रंगस्थल सुरपति सभा समान॥
है स्वराज्य कामना-कामिनी नृत्यनिरत हर आन।
देख रहे हैं देवलोक से देव चढ़े सुर यान॥
नव जीवन नव-नव आशाएँ नव-नव भावोत्थान।
अब है होली नये रंग की है नव हिन्दुस्तान॥

दो पंक्तियाँ 'सत्याग्रह' पर देखिए—

कहते हैं श्री गोखले—सत्याग्रह तलवार है।
जिसमें चारों ही तरफ खरी तीव्रतर धार है॥

जन्मभूमि के प्रति उत्कट प्रेम-भावना की अभिव्यक्ति सनेही जी की मातृभूमि-वन्दना में देखी जा सकती है। "जयति भारत जय हिन्दुस्तान" इस वन्दना-गीत की अमर पंक्ति है। इसी प्रकार स्वाधीनता-प्रेम के सन्दर्भ में उनके "वन्दे मातरम्" गीत की ये पंक्तियाँ भी चिरस्मरणीय रहेंगी—

पुत्र तेरे मत्त हैं स्वाधीनता के प्रेम में,
भर दिये तूने बड़े अरमान, वन्दे मातरम्।
सत्य की तलवार तूने दी कसी ओधी हुई,
कर दिया निर्भीक, रख दी सान, वन्दे मातरम्॥

सनेही जी का काव्य उनकी प्रखर राजनैतिक चेतना के कारण देशभक्ति, स्वराज्य और राष्ट्रीयता की भावना से ओतप्रोत तो है ही, उसमें बलिपन्थी भावना की भी ओजस्वी अभिव्यक्ति हुई है। स्वराज्य-प्राप्ति के संघर्ष में कितनी ही आपदाएँ क्यों न झेलनी पड़ें, किन्तु आत्मचेता संघर्षव्रती अन्याय और अत्याचार से भयभीत होकर लक्ष्य-पराङ्मुख कदापि नहीं हो सकता—

आत्मा अमर है, देह नश्वर है समझ जिसने लिया।
अन्याय की तलवार से वह क्यों भला डर जायगा?

सनेही जी के काव्य में भक्तिसमन्वित धार्मिकता की प्रवृत्ति भी परिलक्षित होती है। "तू है गगन विस्तीर्ण तो मैं एक तारा क्षुद्र हूँ" आदि रचनाएँ इसी प्रवृत्ति की परिचायक हैं। कवि को अपने परिमित ज्ञान का रंचमात्र भी अभिमान नहीं है क्योंकि उसकी अपूर्णता से वह भलीभाँति परिचित है—

अभिमान करें तो "सनेही" किस ज्ञान पर, आज तक इतना भी नहीं जान पाये हैं।
भेजा किसने है और उसको अभीष्ट क्या है, कौन हैं, कहाँ के हैं, कहाँ से यहाँ आये हैं॥

सनेही जी का काव्य लोकोन्मुख और समाजपरक है। वह हिन्दी की प्रगतिवादी काव्यधारा का उद्गम है। उसमें राष्ट्रीयता, स्वाधीनता और साम्यवादी विचारणा का ऐतिहासिक समन्वय हुआ है। आधुनिक हिन्दी की क्रान्तिकारी काव्य-परम्परा का रस-सिद्ध प्रथम उन्मेष सनेही जी के काव्य में ही दिखाई देता है। सन् १९२० के आसपास लिखी हुई उनकी कविताएँ इसी तथ्य को रेखांकित करती हैं। समाजवादी समाज-व्यवस्था की जो परिकल्पना उनके काव्य में रूपायित हुई है, वह अन्यत्र कहीं नहीं।

सामाजिक-आर्थिक शोषण के विरुद्ध यद्यपि सनेही जी पहले से ही लिखते आ रहे थे तथापि सन् १९१७ की रूसी क्रान्ति के बाद उनके काव्य में साम्यवादी विचारधारा की अभिव्यक्ति के प्रति विशेष ममत्व और उत्साह दिखाई देता है। बोल्शेविक क्रान्ति का यह स्वागत देखिये —

समदर्शी फिर साम्य धर जग में आया।
समता का सन्देश गया घर-घर पहुँचाया।
धनद-रंक का ऊँच-नीच का भेद मिटाया।
विचलित हो वैषम्य बहुत रोया-चिल्लाया।
काँटे बोये राह में फूल वही बनते गये।
साम्यवाद के स्नेह में सुजन सुधी सनते गये॥

सनेही जी की साम्यवादी विचारधारा उनकी व्यापक राष्ट्रीयता से समन्वित होकर शान्ति, समता और विश्वबन्धुत्व को प्रतीक बन गयी है—

देखें कब भगवान् हमे वह दिन दिखलाएँ।
सकल जातियाँ देश-राष्ट्र की पदवी पाएँ।
क्षीर-नीर की भाँति परस्पर सब मिल जाएँ।
बृहद् राष्ट्र बन जायँ शान्ति की उड़ें ध्वजाएँ।
साम्यवाद बन्धुत्व से पूरा आठों गाँठ हो।
फिर वसुधैव कुटुम्बकम् का घर-घर में पाठ हो॥

वसुधैव कुटुम्बकम् के महान् लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए मनुष्य को निष्काम साधना और अमोघ सकल्पशक्ति से सम्पन्न होकर दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ना होगा। वे संकल्प-शक्ति के धनी कर्मवीर ही हैं जो 'सम करते हैं विषम भूमि को अपने कर से'। तेजस्वी और कर्मवीर बनकर ही लक्ष्य की प्राप्ति और जातीय स्वाभिमान की रक्षा हो सकती है—

कभी छोडते हैं नही कर्मवोर निज आन को।
अधिक जान से जानते स्वाभिमान सम्मान को॥

अत: नये युग और नये समाज के निर्माण के लिए वे कर्मवीरों का आह्वान करते हैं। "आओ वीरो, बढ़ो, काम का यह अवसर है।"

सनेही जी के काव्य मे प्रेम को जीवन और जगत् के आधारभूत तत्त्व के रूप में प्रतिष्ठा मिली है—

प्राणिमात्र में प्रेम ब्रह्म की तरह समाया।
घट-घट में है देख पड़ रही उसकी माया॥

इस प्रेमतत्त्व को मानव-सभ्यता के विकास-क्रम मे विस्तृत कर देने के परिणाम-स्वरूप जहाँ पहले पृथ्वी, पानी, पवन पर सबका सम अधिकार था वहाँ बाद मे सबल पड़े बलवान मौत निर्बल की आयी, बना सुदामा एक-एक धनपति का भाई। सामाजिक वर्ग-वैषम्य के बद्धमूल हो जाने का ही यह दुष्परिणाम है—'जीर्ण हुआ मस्तिष्क हृदय संकीर्ण हुआ है।'

सनेही जी के काव्य में वर्ग-वैषम्य के बहुत मर्मस्पर्शी चित्र अंकित हुए हैं। दलित-शोषित श्रमिकों और कृषकों के प्रति उसमें आन्तरिक संवेदना की प्रखर अभिव्यक्ति हुई है—

श्रम किसका है मगर मौज हैं कौन उड़ाते।
हैं खाने को कौन, कौन उपजाकर लाते।
किसका बहता रुधिर, पेट हैं कौन बढ़ाते।
किसकी सेवा और कौन हैं मेवा खाते।
क्या से क्या यह देखिए रंग हुआ संसार का।
युग विकास या ह्रास का सिरजन या संहार का।

कवि की यह सुनिश्चित मान्यता है कि समाज की इन क्रूर परिस्थितियों के निराकरण के लिए प्रेमत्व की पुनर्प्रतिष्ठा अपरिहार्य है। समता एवं विश्वबन्धुत्वमूलक नये युग की अवतारणा के लिए मनुष्यों को संकल्पित प्रयास करना ही होगा। इस समतावादी नये युग में सांसारिक सम्पत्ति पर सभी मनुष्यों का समान रूप से अधिकार होगा—

सांसारिक सम्पत्ति पर सबका सम अधिकार हो।
वह खेती या शिल्प हो विद्या या व्यापार हो॥

समतावादी नये समाज में सबके सुख-दुःख ही समान नहीं होंगे, राज्यसत्ता की संरचना और उसके सञ्चालन में भी सबकी समान भागीदारी होगी—

सुख-दुःख सम सबके लिए हो इस नये समाज मे।
सबका हाथ समान हो लगा तख्त में, ताज मे॥

सारांशतः सनेही जी आधुनिक हिन्दी-काव्य की जनवादी चेतना के प्रथम प्रतिनिधि और सच्चे अर्थ मे समर्थ जनकवि थे। उनके जनवादी चिन्तन ने आधुनिक हिन्दी काव्य-परम्परा को बहुत गहराई तक प्रभावित किया है। उनके लोकोन्मुखी काव्य मे राष्ट्रीयता, देश-प्रेम, स्वराज्य, समता एवं विश्वबन्धुत्व की भावनाओं की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। उनका काव्य करुणा, ओज और माधुर्य के संगम का उदात्त एवं बलिष्ठ प्रतिमान है। उनके ऐतिहासिक काव्य-प्रदेय के गौरवपूर्ण उल्लेख के बिना हिन्दी के राष्ट्रीय और प्रगतिवादी काव्य-साहित्य का इतिहास अधूरा ही रहेगा।

१४६, सदर बाजार,
जबलपुर (म० प्र०)

□

आचार्य सनेही के काव्य-ग्रन्थ

श्री उमाशंकर

अब तक सनेही जी के कुल दस काव्य-संकलन प्रकाशित हुए हैं, जिनमें केवल आठ संग्रहों की प्रतियाँ विभिन्न पुस्तकालयों में खोजने पर देखने को मिल सकी हैं। केवल प्रारम्भिक दो संग्रहों –'गप्पाष्टक' तथा 'प्रेमपच्चीसी' की कोई प्रति नहीं प्राप्त हो सकी। इनमें 'गप्पाष्टक' कोई महत्त्वपूर्ण कृति नहीं है। इसमें मित्रों के मनोरंजन के लिए आठ हास्य-व्यंग्य की हल्की कविताएँ संकलित की गयी थीं, जिन्हे एक मित्र ने प्रकाशित कर दिया था। 'प्रेमपच्चीसी' में श्रृंगार-रस के ब्रजभाषा मे लिखे गये पच्चीस छन्द संकलित हुए थे, जिन्हें सनेही जी के एक अध्यापक मित्र जो मसवासी जिला उन्नाव के थे, ने प्रकाशित किया था। इस पुस्तक का प्रकाशन सन् १६०५ के आस-पास हुआ था। आचार्य जी की यह पहली प्रकाशित पुस्तक है। इसके छन्द बहुत लोकप्रिय हुए थे। सनेही जी की शेष आठ पुस्तकों का विवरण नीचे दिया जा रहा है।

कुसुमाञ्जलि

प्रकाशक : शिवनारायण मिश्र, 'प्रताप' कार्यालय, कानपुर

पृष्ठ संख्या ३१

मूल्य : दो आना

प्रकाशन काल : सन् १६१५, प्रथम संस्करण – १०००

सन् १६१६, द्वितीय संस्करण – १०००

सन् १६२०, तृतीय संस्करण – १०००

मुद्रक : श्री शिवनारायण मिश्र, प्रताप प्रेस, कानपुर

कृषक-क्रन्दन

प्रकाशक : शिवनारायण मिश्र, प्रताप पुस्तकालय, कानपुर

पृष्ठ संख्या : ३१

मूल्य : तीन आना

प्रकाशन—सन् १६१६, प्रथम संस्करण २०००

सन् १६१६, द्वितीय संस्करण २०००

सन् १६२३, तृतीय संस्करण २०००

मुद्रक : श्री रामकिशोर गुप्त, साहित्य प्रेस, चिरगाँव, झाँसी

विषय सूची—कृषक-क्रन्दन, आर्तकृषक, गीत और दुखिया किसान।

त्रिशूल-तरंग

प्रकाशक : शिवनारायण मिश्र वैद्य, प्रताप-पुस्तक-माला कार्यालय, प्रताप आफिस, कानपुर
पृष्ठ संख्या : ११२
मूल्य : आठ आना
प्रकाशन काल : सन् १६१६, प्रथम संस्करण १०००
मुद्रक : श्री शिवनारायण मिश्र, प्रताप प्रेस, कानपुर।

राष्ट्रीय मंत्र

प्रकाशक : पं० रमाशंकर अवस्थी, लाठी मुहाल, कानपुर
पृष्ठ संख्या : ४७
मूल्य : आठ आना
प्रकाशन काल : जनवरी १६२१, प्रथम संस्करण १०००
मुद्रक : एम० एन० कुलकर्णी, कर्नाटक प्रेस, ४३४, ठाकुरद्वार, बम्बई।
विषय सूची : गीत, सत्याग्रह, साम्यवाद, कर्म-क्षेत्र, जातीयता (राष्ट्रीयता), असहयोग, स्वतंत्रता।

सञ्जीवनी

सम्पादक—श्री गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'
प्रकाशक : श्री गयाप्रसाद शुक्ल सनेही, व्यवस्थापक, सस्ती-हिन्दी पुस्तकमाला, कानपुर
पृष्ठ संख्या : १३८
मूल्य : पाँच आना
प्रकाशन काल : संवत् १६७८
मुद्रक : लाला भगवानदास गुप्त, कमर्शल प्रेस, जुही, कानपुर।

राष्ट्रीय वीणा (द्वितीय भाग)

सम्पादक—श्री त्रिशूल
प्रकाशक : प्रताप पुस्तकालय, कानपुर
पृष्ठ संख्या : १०४
मूल्य : आठ आना
प्रकाशन काल : सन् १६२२, प्रथम संस्करण २०००
मुद्रक : लाला भगवानदास गुप्त, कमर्शल प्रेस, जुही, कानपुर।

कलामे त्रिशूल

लेखक : त्रिशूल

प्रकाशक : मुद्रक : गयाप्रसाद शुक्ल, हिन्दी आब प्रेस, कानपुर

मूल्य : आठ आने

प्रकाशन काल : पुस्तक में प्रकाशन-काल नहीं दिया हुआ है, लेकिन इसका प्रकाशन सन् १९३० मे हुआ है।

करुणा कादम्बिनी

(करुणरस की अद्वितीय कविताओं का संग्रह)

रचयिता — आचार्य पं० गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'

प्रकाशक — भारती-प्रतिष्ठान, कानपुर

एकाधिकारी वितरक — ग्रन्थ कुटीर, पी० रोड, कानपुर

अभ्यर्थना — पं० नन्ददुलारे वाजपेयी,
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सागर विश्वविद्यालय, सागर

प्रकाशन-काल — फरवरी १९५८

मूल्य — २-०-०

मुद्रक — ओमप्रकाश कपूर, ज्ञान मण्डल लिमिटेड,
कबीरचौरा, वाराणसी।

लालसा यही है छवि-छाया में बसेरा करे,
प्राणाधार-प्रियतम-प्रेम में पगे रहें।
वासना यही है आस-पास मँडलाया करें,
पाकर सुवास और ही से अनुरागे रहें।
चाहना यही है और चाह न समाती चित,
परम सनेही से 'सनेही' के सगे रहें।
कामना यही है बस उनको गलों कि हम,
२५-४-१९७२ धूलि-कणों के पद-तल में लगे रहें ॥ सनेही

खण्ड : तीन
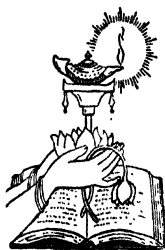
सनेही-रचनावली

करुणा-कादम्बिनी

शारदा-वन्दन

मोहि परै मृग से महि-मानव
तान सुरीली सुनावन लागै।
प्यावन लागै 'सनेही' सुधा
रस की बरसा बरसावन लागै।
जीवन मैं नव-जोति जगै,
नव-जीवन की छवि छावन लागै।
बैठि कै मो-मन-मन्दिर मैं
जब शारदा बीन बजावन लागै॥

□

करुणा-कादम्बिनी

समर्पण

प्रखर-काल-रवि-ताप, नीर-निधि है अन्तस्तल;
वाष्प-अश्रुकण-पूर्ण हुआ है, गगन-दृगञ्चल।
ठण्डी साँसें शीत-पवन घन-छवि छहरायें;
शान्ति-स्वाति के बुन्द, विरहि-जन चातक पायें।
प्रेमांकुर अंकुरित हो जहाँ सुरस सरसे वहीं;
यह "करुणा-कादम्बिनी" प्रेम-वारि बरसे वहीं॥

कौशल्या-क्रन्दन

तन-मन जिसपे मैं वारती थी सदैव;
वह गहन वनों में जायगा हाय! दैव!
सरसिज-तनु हा!-हा! कण्टकों मे खिचेगा;
घृत-मधु-पय-पाला स्वेद से हा! सिंचेगा॥१

यह हृदय-विदारी दृश्य मैं देखती हूँ,
पवि-हृदय बनी हूँ, आज भी जी रही हूँ।
शठ पतित अभागे प्राण जाते नहीं क्यों?
रह कर तन में मे हैं लजाते नहीं क्यों?२

मणि-महल-निवासी कन्दरो में रहेगा,
मनु-कुल-अभिमानी बन्दरों में रहेगा!
मृदुपदतल वाला कंकड़ों पे चलेगा;
प्रति पल चुभ जाना कण्टकों का खलेगा ॥३

नव-नव रस-भोजी खायगा कन्द मूल,
जल तक न मिलेगा नित्य इच्छानुकूल।
मृदु-सुमन बिछौने जो बिछाता सदा था,
वह अजिन बिछाये भाग्य मे यों बदा था ॥४

नरपति-सुत होके भिक्षु का वेष लेगा,
विधि मुझ दुखिनी को दुःख क्या-क्या न देगा!
मुख-छवि निरखेंगे चित्त में दंग होंगे,
वनचर वनवासी जो सखा संग होंगे ॥५

जननि-जनक को भी लोग देंगे कलंक,
"कठिन-हृदय कैसे और कैसे अशंक!
इन गहन वनों मे भेज के लाल ऐसे—
निज दुखित मनो को दे सके शान्ति कैसे?"६

वह मुझ दुखिनी के नेत्र की ज्योति ही है,
बस अधिक कहूं क्या, जान है और जी है।
वन-वन फिरने को जायगा लाल मेरा,
विधि कुटिल करेगा हाय! क्या हाल मेरा ॥७

बिन वदन विलोके चैन कैसे पड़ेगी,
निज सब कुछ खोके चैन कैसे पड़ेगी!
वह घन-छवि वाला सामने जो न होगा,
वह मम-पय-पाला सामने जो न होगा ॥८

वह मृग-दृग वाला दृष्टि से जो हटेगा,
यह कठिन कलेजा क्यो न मेरा फटेगा।
वह मृदु मुसकाता जो न माता! कहेगा,
फिर सुख मुझको क्या प्राण रक्खा रहेगा ॥९

अब मधुर मलाई मैं किसे हाय दूंगी,
यह विविध मिठाई मैं किसे हाय दूंगी!
मन मृदु बचनों से कौन मेरा हरेगा,
यह हृदय दुखी हो धैर्य कैसे धरेगा ॥१०

प्रतिपल किस पे मैं प्राण वारा करूँगी ,
मुख-छबि किसकी मैं हा ! निहारा करूँगी ।
विधि ! यदि जगती में जन्म मेरा न होता ,
कुछ रुक रहता क्या कार्य तेरा न होता ॥११

दुख विषम सहाने के लिए था बनाया ?
यह दिन दिखलाने के लिए था बनाया ?
गुण-गण जिसके है गा रहा आज लोक ,
वह सुत बिछुड़ेगा शोक, हा हन्त ! शोक ॥१२

वह नृप-पद पाये मैं नहीं चाहती थी ,
दुख भरत उठाये मैं नहीं चाहती थी ।
सुरपति-पदवी भी तुच्छ मैं मानती थी ,
बढ़कर सबसे मैं राम को जानती थी ॥१३

सिर मुकुट बिना ही क्या न शोभा सना है ,
वह गुण गरिमा से क्या न राजा बना है ।
भुज-बल समता को लोक में है न वीर ,
रण-सुभट यथा है, है तथा धर्म-धीर ॥१४

रतिपति-मदहारी रूप भी है सलोना ,
वह सुरभि सना है और है शुद्ध सोना ।
प्रिय सुत वह मेरा वेश धारे यती का ,
निज नयन निहारूँ, दोष है भाग्य ही का ॥१५

उर उपल धरूँगी और क्या मैं करूँगी ,
विधि-वश दुख ऐसे देख के ही मरूँगी ।
विधि ! सहृदय हो तो प्रार्थना मान जाओ ,
"अब तुम मुझको ही मेदिनी से उठाओ ॥"१६

मम प्रिय सुत छूटा साथ ही देह छूटे ,
पल भर जननी का स्नेह-नाता न टूटे ।
फल निज-कुकृतों का हाय ! मैं पा रही हूँ ,
पर विधि पर सारा दोष मैं ला रही हूँ ॥१७

मन व्यथित महा है ज्ञान जाता रहा है ,
सदय-विधि क्षमा दें, ध्यान जाता रहा है ।
पर विनय न मेरी हे विधाता भुलाना,
मम-सुत मित-भोजी तू न भूखा सुलाना ॥१८

पौष-मार्गशीर्ष : शक १८०४]

दुख उस पर कोई और आने न पाये,
मम कुंवर कन्हैया कष्ट पाने न पाये।
युग-युग चिर जीवे लोक में नाम होवे,
फिर घर फिर आये राम ही राम होवे ॥१६

किस विधि दुख झेलूं आयु कैसे घटेगी,
यह अवधि बड़ी है हाय कैसे कटेगी!
पल-पल युग होगा, याम तो कल्प होंगे,
दिन-दिन दुख दूना कष्ट क्या अल्प होंगे ॥२०

मति-हत दुख-दीना धैर्य कैसे धरूँगी,
सुध कर सुत की मैं हाय रो-रो मरूँगी।
वह सुघर सलोना अम्ब का प्राण प्यारा,
वह सुरभित सोना अम्ब का प्राण प्यारा ॥२१

वह दृढ़ प्रणपाली नीतिशाली कहाँ है?
वह हृदय-लता का मञ्जु माली कहाँ है?
वह प्रबल प्रतापी हंस-वंशी कहाँ है?
वह खल-गण-तापी विष्णु-अंशी कहाँ है?२२

तन-सघन-घटा-सा श्याम प्यारा कहाँ है?
वह अवधपुरी का राम प्यारा कहाँ है?
वह मुझ जननी का चक्षु-तारा कहाँ है?
वह तन-मन मेरा प्राण प्यारा कहाँ है?२३

वह कलरव-केकी बोलता क्यो नही है?
अब मधु श्रवणों मे घोलता क्यो नही है?
वन क्षण-भर मे ही क्या गया राम प्यारा?
अब मुझ दुखिनी को क्या रहा है सहारा?२४

फिर मम-सुत कोई पास मेरे बुला दे,
शशि मुख वन जाते देख लूं, आ दिखा दे।
धक धक जलती है, है भरा स्नेह पाती,
विरह अनल छाती हाय मेरी जलाती ॥२५

निज हृदय लगाती, ताप जी के मिटाती,
फिर लख उसको मैं चित्त में शान्ति पाती।
भर नजर जरा मैं पुत्र को देख लेती,
उस पर अपना मैं वार सर्वस्व देती ॥२६

घर घर-घर बाता जो कि था मोद धाम,
मम प्रिय सुत हा! हा! राम! हा राम! राम!
यह कह कर रानी हो गयी चेत-हीन,
जल तज कर जैसे खिन्न हो मीन दीन ।।२७

□

बन्धु-वियोग

हुआ जब युद्ध मे बेहोश भाई—
उड़ी तब राम के मुँह पर हवाई।
जलद-मद-हर मुखाम्बुज मञ्जु नीला,
पलक भर मे हुआ छबि हीन, पीला ।।१

रुधिर-गति देह मे रुक-सी गयी फिर,
व्यथित हो देह कुछ झुक-सी गयी फिर।
सजल-दृग देखकर दुख-दृश्य ऊबे,
युगल खञ्जन विकल जल बीच डूबे ।।२

रहे सिर थाम मुँह से आह निकली,
हृदय से दीप्त दारुण दाह निकली।
उन्हे चारो तरफ सूझा अँधेरा,
लगे कहने कि "हा! हा! बन्धु मेरा—३

अचानक आज मुझसे छुट रहा है.
अरे! सर्वस्व मेरा लुट रहा है।
उठो प्रिय बन्धु, बोलो नेत्र खोलो,
न रस मे विष विषम यों आज घोलो ।।४

यहाँ अब कौन है ऐसा हमारा,
विपद मे पा सकें जिसका सहारा।
भला अब युद्ध मैं कैसे करूँगा,
तुम्हारे दुःख में रो-रो मरूँगा ।।५

कठिन होगा अवध में मुँह दिखाना,
तुम्हें खोके रहेगा दुःख पाना।
तुम्ही तो बन्धुवर! मम-बाहु-बल थे,
अचल इव युद्ध में रहते अचल थे ।।६

हृदय की बात तुम अनुमानते थे,
मुझे सर्वस्व अपना जानते थे।
न टलते पास से दिन-रात तुम थे,
सभी सर्वस्व मेरे तात! तुम थे ॥७

कभी तुमने न मेरा साथ छोड़ा,
समय-असमय न पल भर हाथ छोड़ा।
नहीं तुमको भवन-सुख भोग भाया,
हमारे साथ वन-दुख-भोग भाया ॥८

तुम्हारे साथ वन मुझको भवन था,
सदा निश्चिन्त, निर्भ्रम, शान्त मन था।
कभी तुमने वचन मेरा न टाला,
तुम्हारा प्रेम था मुझ पर निराला ॥९

निरन्तर साथ खाया, साथ खेले,
चले अब तुम कहाँ तज कर अकेले।
विभूषण वंश के तुम वीरवर थे,
तुम्हारे कोप से कँपते अमर थे ॥१०

तुम्हारे बाण काल-व्याल ही थे,
स्वयं भी शत्रु को तुम काल ही थे।
कभी मुँह युद्ध मे तुमने न मोड़ा,
नहीं रघुवंशियों का शौर्य छोड़ा ॥११

मनस्वी वीर अब तुम-सा कहाँ है?
तपस्वी धीर अब तुम-सा कहाँ है?
कहाँ तुम-सा व्रती है ब्रह्मचारी?
कहाँ तुम-सा धरा मे धैर्यधारी?१२

भरोसा हाय अब किसका करूँगा?
किसे मैं देख कर धीरज धरूँगा।
अगर यह बात पहले जानता मैं,
तुम्हारा छूटना अनुमानता मैं—१३

समर में प्राण मैं पहले गँवाता,
विधाता फिर न यह दुर्दिन दिखाता।
महा दुर्दैव की माया प्रबल है,
कहाँ उसकी कुटिलता मे कुशल है ॥१४

छुड़ाया घर, भयानक वन दिखाया,
यहाँ भी प्राण-प्यारी से छुड़ाया।
रहा था बन्धु, वह भी छूटता है।
कुटिल यह दिन-दहाड़े लूटता है ॥१५

सुकृत जो जन्म भर मैंने किये हों,
जगत् में दान जो मैंने दिये हों।
जपादिक से हुआ जो पुण्य-फल हो,
सहायक आज वह आकर सकल हो ॥१६

दिवस-पति भी दया अपनी दिखायें,
न आयें उस घड़ी तक, काम आयें।
न जब तक चेत-युत हो बन्धु मेरा,
करें तब तक न कुल-गुरु रवि सबेरा ॥१७

न लक्ष्मण हाय ! तुम यों साथ छोड़ो।
कठिन अवसर समझकर मुँह न मोड़ो।
उठो भाई, गले से मैं लगा लूँ,
गँवाया गाँठ से निज-रत्न पा लूँ ॥१८

अकेला छोड़ कर क्यों जा रहे हो,
किसे तुम बन्धुवर ! अपना रहे हो।
अचानक तात तुम सोये समर मे,
पड़ी नैया हमारी है भँवर मे ॥१९

सहारा हाय प्यारे ! कौन देगा,
कहाँ अब हाय थल बेड़ा लगेगा !
सुनेगी यह खबर जब हाय ! सीता,
नहीं सौमित्र देवर आज जीता—२०

व्यथा उसको बना म्रियमाण देगी,
निराशा दुःख से तज प्राण देगी।
अकेले प्राण रखना भार होगा,
मुझे सूना सकल संसार होगा ॥२१

नहीं सन्देह कुछ मेरे मरण में,
विभीषण जायगा किसकी शरण में !
कहीं का हाय ! बेचारा न होगा,
मरा बे-मौत कुछ चारा न होगा ॥२२

उठो तुम, शिखरों को चूर्ण कर दूं,
　　तुम्हारी मैं प्रतिज्ञा पूर्ण कर दूं।
तुम्हें यदि काल ने कुछ दुख दिया हो,
　　बताओ बन्धु ! तो मुझको बताओ ।।२३

उसी के दण्ड से सिर तोड़ दूं मैं,
　　तुम्हारे शत्रु को क्यों छोड़ दूं मैं।
छूटे तुम, बन्धु ! साहस छूटता है,
　　हमारा हाय ! अब दिल टूटता है ।।"२४

सुनी जब राम की करुणा कहानी,
　　हुए पत्थर पिघल कर हाय पानी।
बली कपि-भालु धीरज खो उठे सब,
　　रुके रोके न आंसू रो उठे सब ।।२५

हुई तब तक खबर हनुमान आये,
　　बने करुणा - जलधि - जलयान आये।
जड़ी दी वैद्य को सञ्जीवनी की,
　　लगी होने दवा सौमित्र जी की ।।२६

सुंघाते ही दवा के होश आया,
　　उठे सोते हुए-से, जोश आया।
"कहां है इन्द्रजित, दुश्मन कहां है ?
　　कहां धनु-शर हमारा धन कहां है ?"२७

वचन सुनकर हंसे, रघुनाथ हरसे,
　　मिले भाई युगल सुर फूल बरसे।
सकल सम्पत्ति चाहे काल लूटे,
　　किसी का पर न प्यारा बन्धु छूटे ।।२८

□

दुःखिनी-दमयन्ती

हार का अपनी पश्चात्ताप—
　　भटकना वन-वन पथ की भ्रान्ति।
　　　　उधर कलिराज चढ़ाये चाप,
　　　　　　नृपति नल कैसे पाते शान्ति !!१

कठिन पथ दम्पति मृदुल-चयन,
मातृ-भू के आश्रित हो गये।
मुँदे दोनों के अलसित नयन,
झपकते ही पलकें सो गये ॥२

भूप कुछ पहले जागे आज,
चीर कर दमयन्ती का चीर !
ढकी रखने को अपनी लाज
बना जो उससे ढका शरीर ॥३

कुमति कलि-प्रेरित यों मति फिरी,
न भाया दमयन्ती का साथ ।
छोड़ कर विपदाओं से घिरी,
चल दिये किसी ओर नरनाथ ॥४

खुले जब दमयन्ती – दृग – द्वार,
न पाया प्राणनाथ को पास ।
उसे सूझा सूना संसार,
रही जाती जीवन की आस ॥५

विलपने करने लगी पुकार
न जाने कहाँ प्राण-धन गये ।
हृदय मे पीड़ा हुई अपार,
नयन जल-हीन-मीन बन गये ॥६

कहाँ हो चले गये, हे नाथ !
छोड़कर मुझे अकेली यहाँ ।
कहाँ अटके हो, किसके साथ,
बताओ अब मैं जाऊँ कहाँ ?७

हाय ! यह कैसा है परिहास,
जा रहे व्याकुलता से प्राण !
और तुम बैठे कहीं उदास,
कौन अब करे हमारा त्राण ॥८

कहाँ वह गयी तुम्हारी चाह,
और वह प्रेम-प्रतिज्ञा वाह !
किया यह अच्छा प्रेम निबाह,
वाह वा वाह ! वाह वा वाह !!९

पौष-मार्गशीर्ष : शक १९०४]

हाय ! तुम मेरे प्राणाधार,
हाय ! मेरे जीवन-सर्वस्व ।
हाय ! तुम मेरे उर के हार,
हाय ! मम तन-मन-धन सर्वस्व !!१०

वीरमणि, धर्मधुरन्धर, धीर,
विदित वरवीरों में वर वीर ।
विपद् में ऐसे हुए अधीर,
त्यागने की सूझी तदबीर ।।११

कहो तो हुआ कौन अपराध,
या कि है तड़पाने की साध ।
कहाँ तो उतना प्रेम अगाध,
कहाँ अब दिया विरह-दुख नाथ !!१२

दिखा दो प्यारे अब मुखचन्द्र,
चकोरी तड़प रही है आह !
सुरस बरसो हे घन-आनन्द !
चातकी को है इसकी चाह ।।१३

कमललोचन ! अलिनी है विकल,
पिला दो तुम इसको मकरन्द ।
कुञ्ज से प्रियतम आओ निकल,
अनुचरी लूटे फिर आनन्द ।।१४

प्राणपति ! प्राणनाथ ! सुखमूल,
गये क्यों दासी को यों भूल ?
प्राणप्रिय ! रहे सदा अनुकूल,
डाल दी आज प्रीति पर धूल ।।१५

किसलिए क्या सोचा हे नाथ !
हुए क्या व्यग्र देखकर क्लेश
आपके रहती थी मैं साथ,
नहीं था मुझे क्लेश का लेश ।।१६

तुम्हारे वचन मधुरता-मूल,
मुझे लगते थे सुधा-समान ।
गयी थी भूख-प्यास भी भूल,
तृप्त थी करके छबि-रस-पान ।।१७

कँटीली पृथ्वी पर भी पड़ी,
समझ वह पड़ी सुमन की सेज,
सही विपदाएँ, झेलो कड़ी,
मगर हत होने दिया न तेज ॥१८

आज मुरझाती है वह लता,
सींचते थे जिसको हे नाथ!
बिलखती है प्रियतम-रस-रता,
धैर्य दो रखकर सिर पर हाथ ॥१९

सर्व-गत पवन ! बताओ तुम्हीं,
कहाँ हैं मेरे जीवन-नाथ ?
पक्षियो ! आगे आओ तुम्ही,
मुझे पहुँचा दो, कर दो साथ ॥२०

बडा मैं मानूंगी उपकार,
और है कोई नही उपाय।
आम, जामुन, कदम्ब, कचनार,
तुम्ही कुछ मुँह से बोलो हाय !!२१

सहायक और यहाँ है कौन,
गये जब प्रियतम मुझको त्याग।
किन्तु हा ! रहा न जाता मौन,
जलाती है अभाग्य की आग ॥२२

श्याम-घन तरसाकर चल दिये,
बढ रहा है दूना सन्ताप।
विरह-विष बरसाकर चल दिये,
विरहिणी है कर रही विलाप ॥२३

प्रेममय उनका वह बर्ताव,
हृदय में देना जगह सदैव।
भरा वह बात-बात मे चाव,
जायें वह छोड़ ! हाय दुर्दैव !!२४

आप निष्ठुर हों, मेरा हृदय—
कभी बन सकता नहीं कठोर।
नहीं मैं निज-चिन्ता से सभय,
लगा है चित्त आपकी ओर ॥२५

विजन वन है दुर्गम पथ घोर,
हरेगा कौन मार्ग की भ्रान्ति
तड़पती हूँगी मैं इस ओर,
तुम्हें कैसे आयेगी शान्ति !!२६

कहेंगे लोकपाल क्या नाथ,
वरण जिनको साक्षी में किया ?
प्रेम-प्रण किया पकड़कर हाथ,
निरपराधा को फिर तज दिया ।।२७

कुसुम समझी थी जिनको हाय !
बने वह वज्र समान कठोर।
सूझता कोई नहीं उपाय,
अँधेरा छाया चारो ओर ।।२८

वाम विधि बन जा तू ही व्याध,
और तू कर दे मेरा अन्त।
नहीं है जीने की अब साध,
हन्त ! हा हन्त ! हन्त हा ! हन्त !!२९

□

दुर्योधन-विलाप

(कर्ण-वध पर)

तम असित धरा पै काल-सा छा रहा था,
रवि-रथ द्रुत-गामी भागता जा रहा था।
खग-मृग अकुलाये भीत-से हो रहे थे,
शिव-अशिव कुवाणी बोलते रो रहे थे ।।१

तब तक चर आया और बोला कि नाथ,
दलपति-हत-सेना हो गयी है अनाथ।
वह निज-रथ-चक्रों को रहे थे सुधार,
किस तरह बचाते पार्थ-अस्त्र-प्रहार ।।२

सुनकर यह, "जूझे, आज अंगाधिराज",
कुरुपति पर मानो आ गिरी घोर गाज।
वह हृदय दबाके दीर्घ निःश्वास लेके,
सजलनयन बोले, मित्र पै प्राण देके ।।३

"हत ! हत ! विधि तूने वज्र कैसा गिराया,
वह तरुवर सूखा, था किये जो कि छाया।
तुम कुसमय के थे मित्र ! संगी हमारे,
रण-रचकर प्यारे, हो कहाँ को सिधारे ?४

सुख-दुख जगती में संग-ही-संग झेले,
सुरपुर-सुख लेने जा रहे हो अकेले।
कठिन समय में यों मित्र ! छोड़ो न साथ,
तुम प्रमुख हमारे अंग हो, अंग-नाथ !!५

रण-कुशल महा थे, था भरोसा तुम्हारा,
अब किस विधि बेड़ा पार होगा हमारा !
तुम सम बलशाली और योद्धा कहाँ है ?
इमि अरि-दल-घाली और योद्धा कहाँ है ?६

तुम सम ध्रुव-धन्वी धीर कोई नहीं है,
तव सदृश मनस्वी वीर कोई नहीं है।
भट परम प्रतापी और ऐसा नहीं है,
अरि-गण-तनु-तापी और ऐसा नहीं है ।।७

वह दिनकर का-सा तेज था विद्यमान,
वह रण सुभटों की युद्ध मे आनबान।
अरि-कुल जिससे था, भीत, कम्पायमान।
अब मम दल मे है कौन तेरे समान !!८

हत-बल शर-शय्या पै पड़े भीष्म धीर,
गुरुवर रण-भू पै सो रहे द्रोण वीर।
प्रियवर ! मम नैया घोर आवर्त्त में है,
गत चतुर खिवैया, जा रही गर्त्त में है ।।९

वह बल किसमे है शत्रु-संहारकारी,
किस विधि अब होगी पूर्ण आशा हमारी !
तव-बल रण ठाना बात मानी न एक,
किस तरह निबाहूँ, मित्र मैं आज टेक ?१०

अब समर करूँ क्या, दीन हूँ, चित्तखिन्न,
मति विकल हुई है, दाहिनी बाहु छिन्न !
अति अनय हुआ है, युद्ध मे साथ तेरे,
जब अटक रहे थे, चक्र में हाथ तेरे—११

पौष-मार्गशीर्ष : शक १९०४]

तव तुझ पर वैरी पार्थ का था प्रहार,
बल छल करके भी शीघ्र पाता न मार।
पर अनुपम तू था लोक में दान-शील,
जन-मन-अभिलाषा-पूर्ति में की न ढील ॥१२

निज-असु-अभिलाषी शत्रु को भी विचार,
फिर रख न सका तू प्राण ऐसा उदार।
तव-गुण-गरिमा का लोक में गान गेय,
जय अनुगत तेरी और तू था अजेय ॥१३

जन विमुख न फेरा आ गया सामने जो,
रण-विमुख न फेरा आ गया सामने जो।
तुम सम वसुधा में कौन है दान वीर?
तृण सम अरि को भी, दान दे जो शरीर ॥१४

नय-निपुण निराला, शौर्य का चित्र तू था,
मम सुख-दुख संगी मित्र तो मित्र! तू था।
तव सित यश से थीं व्याप्त चारो दिशाएँ,
इमि निकट न आती थीं निराशा-निशाएँ ॥१५

अहह! हृदय तेरा भव्य आशा भरा था,
बल-बल पर तेरे था, बड़ा आसरा था।
अब मम अरियों को यन्त्रणा कौन देगा?
अब मम मनभाई मन्त्रणा कौन देगा?१६

किस तरह करूँगा पाण्डवो का विनाश,
तरुवर जब सूखा पुष्प की कौन आश?
तव चिर अनुरागी को कहाँ है ठिकाना?
आ मुझ हतभागी को कहाँ है ठिकाना?१७

धँस-धँस धरणी तू मैं समाऊँ सहर्ष,
फट-फट नभ तू ही पीस जाऊँ सहर्ष।
वह त्रिभुवन में था एक ही युद्धवीर,
लखकर उसको था काल होता अधीर ॥१८

यश धवल धरा में धीर पाता सदा था,
प्रमुदित जय-लक्ष्मी संग लाता सदा था।
वह समर मही में यो पड़ा है विवर्ण,
प्रिय परम सखा हा! हन्त हा! वीरकर्ण!!१९

शत-शत भट जूझे शीश फोड़ा न मैंने,
सुत-वध तक देखा धैर्य छोड़ा न मैंने।
अब तुम छुटते हो धैर्य कैसे न छूटे,
विधि-गति अति वामा वज्र पै वज्र टूटे ॥२०

अब गति मुझको है विश्व में कौन शेष,
किमि दिवस कटेंगे कल्प-सा है निमेष?
रण तजकर जाऊं है नही क्षात्र-धर्म्म,
तरल-गरल पी लूं है महापाप-कर्म्म ।२१

निज सिर कटवाऊँ बन्धुओं के समक्ष,
अनुगत बन आऊँ है यही पुण्य पक्ष।
नृप विलख रहे थे, छा रहा था अंधेरा,
पहन वसन काले आ रहा था अँधेरा ॥२२

रवि व्यथित महा थे खो गया पुत्र कर्ण,
तन थर-थर कांपा हो गये पीत-वर्ण।
गिरकर गिरि से वे सिन्धु में खिन्न डूबे,
कुरुपति अकुलाये और भी प्राण ऊबे ॥२३

बहुविध समझाते थे कृपाचार्य आदि,
यश अमर मही में और आत्मा अनादि।
पर खटक रहा था चित्त मे एक कांटा,
कुरुपति-कर थामा शल्य ने दुख बांटा ॥२४

नृप मत घबरायें प्राण मैं वार दूंगा,
कल रिपु-बल सेना-सघ सहार दूंगा।
फिर रण-चर्चा थी योजना घात की थी,
मन व्यथित महा था चिन्तना प्रात की थी ॥२५

□

अशोक वन में सीता

मनोहर लंकपति की वाटिका थी,
प्रकृति-रंगस्थली की नाटिका थी।
मदन की चित्रसारी कुञ्जवन थे,
अशोकों की छटा पर मुग्ध मन थे ॥१

महा छविजाल फूलों के चमन थे,
उलझते भौंर से जाकर नयन थे।
लताएँ तरु-वरों से मिल रही थीं,
खिली कलियाँ कहीं पर खिल रही थीं ॥२

घटा घनघोर घिरती आ रही थी,
हरित छवि हर दिशा मे छा रही थी।
अशोकों में सशोका मैथिली थी,
उसे छवि थी छुरी, छाती छिली थी ॥३

सखी ने जब कहा घनश्याम आये,
नयन खोले समझ कर राम आये।
जिधर देखा उधर ही श्याम छवि थी,
हृदय में भी भरी श्रीराम-छवि थी ॥४

रही यो डूब सीता श्यामता में,
छड़ी हो फूल की जैसे लता में।
घड़ी भर मे उसे जब चेत आया,
गयी हो श्याम, पर प्रियतम न पाया ॥५

उधर से घन इधर से नेत्र बरसे,
जलाती आह भी निकली जिगर से।
लगी बरसात में यों आग दूनी,
जली कुटिया हृदय की हाय! सूनी ॥६

तड़प कर रह गयी कुछ भी न बोली,
हृदय की वेदना अपनी न खोली।
लगी जब आग-सी सारे बदन में,
लगा दी टकटकी बस श्याम-घन में ॥७

लगन मन में लगी जब पीतपट की,
नजर तो दामिनी की ओर अटकी।
मगर मुख-चन्द्र वह मिलता नहीं था,
कुमुदिनी का हृदय खिलता नहीं था ॥८

विरहिणी को व्यथा का ध्यान आया,
गया अज्ञान कुछ-कुछ ज्ञान आया।
तड़पती थी उसे दम भर न कल थी,
हृदय पर दुख-शिला रक्खी अचल थी ॥९

सुधा रक्खी गरल के साथ जिसने,
किया खारी महा जलनाथ जिसने।
फँसाये फूल जिसने कण्टकों में,
फिराये कवि कुशल जिसने टकों में ॥१०

उसी विधिवाम की करतूत यह है,
भविष्यत् का पता क्या, भूत यह है।
कभी जो क्षीर-सागर में पली थी,
दवानल में वही लतिका जली थी ॥११

कमलिनी हाय! कीचड़ मे पड़ी थी,
झुलसती अग्नि में जीवन-जड़ी थी।
कही जाती नही जो वेदना थी,
मरण से भी दुखद अति चेतना थी ॥१२

बिना प्रियतम विकल है दीन दासी;
मरी छवि-सिन्धु! अब यह मीन प्यासी।
विरह की आँच से इसको बचा लो,
वचन मधुमय-सुधा की धार डालो ॥१३

अहिल्या जिस चरण-रज से तरी थी,
सदा जिसके लिए शबरी मरी थी।
सरसता पुष्प की जिसमे भरी थी,
जिसे पा के हृदय-लतिका हरी थी ॥१४

उसी को चाहती हैं, नाथ आँखें,
नही वरुणी, पसारे हाथ आँखें।
रुधिर रोते बहुत उकता चुकी हूँ,
सजा मृग-मोह की मैं पा चुकी हूँ ॥१५

नही कुछ सोच है मुझको मरण का,
नहीं है क्या मरण छुटना शरण का?
लता तरु से विलग होकर पड़ी है,
हुई यह पददलित सूखी-सड़ी है ॥१६

न जाने जान क्यों जाती नही है,
कठिन है, वज्र है, छाती नही है।
विलग यह प्राण रह कर प्राणपति से,
कलेजा काटते मेरा कुगति से ॥१७

पौष-मार्गशीर्ष : शक १९०४]

पलक भर छूटता जिनका कठिन था,
पहर युग के सदृश था, कल्प दिन था।
महीनों हो गये देखा नहीं है,
मिटी दुर्भाग्य की रेखा नहीं है ॥१८

वधू हरि की, जनक की नन्दिनी हूँ,
हुई मैं हाय किसकी बन्दिनी हूँ।
अचम्भा है मुझे, क्यों जी रही हूँ?
विरह-विष नित्य यद्यपि पी रही हूँ ॥१९

निशाचर दुष्ट क्यों पीछे पड़ा है,
नहीं क्या पाप का पूरित घड़ा है?
न बो विधि! सोम विष की क्यारियों में,
न रख रवि कुल-वधू तम-चारियों में ॥२०

किसी का दोष क्या है दोष मेरा,
चला मुझको लखन पर रोष मेरा।
अगर उससे दुराग्रह मैं न करती,
विपद् में पड़ न यों बे-मौत मरती ॥२१

किये का फल "सनेही" पा रही हूँ,
न आये नाथ तो मैं जा रही हूँ।
करें आकर हमारा त्राण, पहुँचे,
नहीं तो पास प्रिय के प्राण पहुँचे ॥२२

□

शैव्या-सन्ताप

उदासी घोर निशि मे छा रही थी,
पवन भी काँपती थर्रा रही थी।
विकल थी जाह्नवी की वारिधारा,
पटक कर सिर गिराती थी कगारा ॥१

घटा घनघोर नभ पर घिर रही थी,
बिलखती चंचला भी फिर रही थी।
न थे वे बूँद, आँसू गिर रहे थे,
कलेजे बादलों के चिर रहे थे ॥२

कहीं धक-धक चिताएँ जल रही थीं,
विकट ज्वाला उगल प्रतिपल रही थीं।
कहीं शव अधजला कोई पड़ा था,
निठुरता काल की दिखला रहा था ॥३

खड़ी शैव्या वहीं पर रो रही थी,
फटी दो-टूक छाती, हो रही थी।
कलेजा हाय मुँह को आ रहा था,
भरा था दर्द वह तड़पा रहा था ॥४

छुटा घर-बार, प्राणाधार छूटे,
रहे तुम एक कुल आधार छूटे।
तुम्हारा देखकर मुँह जी रही थी,
नहीं तो कौन था सुख, जी रही थी ॥५

छुटा सब कुछ, छुटे हा लाल! तुम भी,
लुटा सब कुछ लुटे हा लाल! तुम भी।
अरे वह है कहाँ पर सर्प बसता,
मुझे भी क्यों नहीं है नीच डसता?६

लगाये लाल को छाती चलूँ मैं,
लिये यह साथ ही थाती चलूँ मैं।
जिसे मैं प्राण-सा ही जानती थी,
जिसे मैं देखकर सुख मानती थी ॥७

कहाँ है हाय! अब यह प्राण मेरा,
निराशा मे, विपद् में त्राण मेरा!
कहाँ हो चल दिये तुम हाय! छौना,
खिलाऊँगी किसे, मेरे खिलौना?८

किसी को दुख नहीं मैंने दिया है,
नहीं निज शीश पर पातक लिया है।
रहा है धर्म पर विश्वास मेरा,
हुआ क्यों आज सत्यानाश मेरा!९

विधाता, हा! यही क्या पुण्य फल है?
जगत् में वामता तेरी प्रबल है।
हृदय-धन प्राण-पति-पद-पद्म छूटे,
छुटी स्वाधीनता सुख-सद्म छूटे ॥१०

पौष-मार्गशीर्ष : सं० १९७४]

नहीं फिर भी हुआ, सन्तोष तुमको,
विधाता रोष पर है रोष मुझको।
परम धन पुत्र था सर्वस्व मेरा,
उसे हर ले गया छल से लुटेरा ॥११

दया कुछ काल के जी में न आयी,
कली मुरझा गयी खिलने न पायी।
कमल मुख पर बने मम नेत्र अलि थे,
मधुर मुस्कान पर मन-प्राण बलि थे ॥१२

तुम्हारा एक मुझको आसरा था,
नही तो फिर जगत् में क्या धरा था?
कहाँ बेटा चले, खेले न खाया,
उठाते दुख रहे, सुख कौन पाया ॥१३

तुम्हें खलता रहा दुर्भाग्य मेरा,
रहा डाले सदा दुर्दैव डेरा।
अभी तो दूध भी छूटा नहीं था,
नजर भर देख सुख लूटा नहीं था ॥१४

परम कोमल अभी थे अंग बेटा!
गये सुरलोक किसके संग बेटा!
अभी कल तक तुम्हें चलना सिखाया,
कहाँ से यह पराक्रम आज आया ॥१५

महायात्रा अचानक हाय कर दी,
तजा सब मोह माँ असहाय कर दी।
उठो बेटा! कलेजे से लगा लूं,
हृदय में मैं तुझे अपने छिपा लूं ॥१६

किसी का वार फिर होने न दूंगी,
मिलन दुश्वार फिर होने न दूंगी।
हृदय की शक्ति थे तुम जीवनाशा,
न देखी दुर्दिनों में भी निराशा !!१७

वही तुम छोड़ कर अब जा रहे हो,
उठो, देखो कि क्या दिखला रहे हो।
विपद्-निश् का करो बेटा! सबेरा,
नहीं अब धैर्य धरता चित्त मेरा ॥१८

मरूँ कैसे हृदय का भार टालूँ,
हरे ! यह प्राण मैं कैसे निकालूँ।
रहे अधिकार मे कब प्राण ही हैं,
पराये हाथ हम तो बिक चुकी हैं ॥१९

करेगा कौन अब उद्धार बेटा !
करूँगी हाय किसका प्यार बेटा !
बताते आयु चिर तेरी गणक थे,
न समझे काल-लिपि मेरी गणक थे ॥२०

बताते थे बली भूपाल होगा,
यशस्वी लोक मे यह लाल होगा।
कठिन कुसमय-कुअवसर लाल रूठे,
हरे क्या हो गये सब शास्त्र झूठे ॥२१

मुकुट के योग्य सिर भूपर पड़ा है,
विधाता वाम तू निर्दय बड़ा है।
यही ध्वनि सुरधुनी की धार मे थी,
प्रलय-सी गुप्त हाहाकार मे थी ॥२२

खड़े भूपाल भी कुछ दूर पर थे,
मगर इस हाल से वे बेखबर थे।
सुना रोना बढ़े थामे कलेजा,
हुआ शव देख कर टुकड़े कलेजा ॥२३

उन्हें पहचान रानी रो उठी फिर,
करुण-रस-वारि-वर्षा हो उठो फिर।
"कहाँ थे नाथ तुम, हा लुट गयी मैं,
कुँवर से हाय अपने छुट गयी मैं ॥२४

न आये काम देवी-देवता कुछ,
न रक्षा पुण्य-बल ही कर सका कुछ।"
नृपति को बोलना यद्यपि कठिन था,
हुआ मुख प्रात-दीपक-सा मलिन था ॥२५

हृदय फटता उछलता था कलेजा,
न जाने कौन मलता था कलेजा।
बड़ी कठिनाइयों से धैर्य धरके,
कड़ा अपना हृदय भरपूर करके ॥२६

कहा—"रानी किसी को दोष मत दो ,
समक्ष सब दोष अपने भाग्य का लो ।
चुकाओ कर, क्रिया कर लो सबेरे ,
सबेरा हो रहा, चल दो सबेरे ।।"२७

"चुकाऊं कर कहाँ से पास क्या है ?
कफन भी तो नहीं मुझको जुड़ा है ।
मिला जब कुछ नहीं तो चीर चीरा ,
छिपा लायी उसी में लाल हीरा ।।२८

रहा क्या शेष है सर्वस्व खोया ?
विधाता ने विषम-विष-बीज बोया ।
अगर दूँ चीर तन मेरा खुलेगा ,
कफन फाड़ूँ न बालक ढक सकेगा ।।"२९

नृपति बोले बड़ी गम्भीरता से ,
हृदय दाबे रहे निज धीरता से ।
बिना कर के क्रिया कैसे करोगी ?
अलग क्या धर्म-पथ से पद धरोगी ?३०

जिसे है राज्य-सुख तज कर निबाहा ,
उठा कर क्लेश जीवन भर निबाहा ।
उसे अब वस्त्र पर यों मत गँवाओ ,
बढ़ाओ हाथ, लाओ चीर लाओ ।।३१

"जगत् में धर्म-झण्डा गाड़ दो तुम ,
न हो कुछ तो कफन ही फाड़ दो तुम ।"
बढ़ाया हाथ रानी ने कफन पर ,
दिखायी ज्योति-सी दी कुछ गगन पर ।।३२

पवन कुछ वेग से लहरा उठी फिर ,
जय-ध्वनि की घटा घहरा उठी फिर ।
कमल-लोचन, कमल-तनु, कमल कर से ,
पकड़कर हाथ बोले नीर-धर से ।।३३

"अहा ! है धन्य रानी हो चुका बस ,
तुम्हारा पुत्र अब तक सो चुका बस ।
निबाहा धर्म तुमने धीरता से ,
हुआ रवि वंश उज्ज्वल वीरता से ।।"३४

उठा बालक अचानक मुसकराता,
कहा, "ले पुष्प पूजा-हेतु माता।"
कहा, "बेटा, करो पूजा खड़े हैं,
तुम्हारे पूज्य पूज्यों मे बड़े हैं।।"३५

पडे दम्पति चरण में पुत्र लेकर,
मनोवाञ्छित मिला भगवान् से वर।
लगे सुर सुयश गाने सुर मिलाके,
सुमन बरसे 'सनेही' सुर-लता के।।३६

□

श्रवण-शोक

जननि-जनक दोनो सोचते थे पड़े यो,
"अबतक जल लेके लाल आया नहीं क्यो?
दिल धड़क रहा है, कांपता है कलेजा,
प्रिय सुत पर कोई आपदा आ पड़ी क्या?१

तब तक नृप आये और होके अधीर,
सविनय यह बोले, "ले पियें आप नीर!"
यह सुनकर चौंके और पूछा कि "कौन?"
"मम तनय कहां है, क्यो हुआ आज मौन?"२

"नृप अवधपुरी का आपका दास मैं हूं,
वह सुरपुर मे है, आपके पास मैं हूं।
मृग-भ्रम-वश मैंने बाण मारा अचूक,
मुनिवर! अब तो है हो गयी घोर चूक।।"३

शर सम श्रवणो में जा लगी भूप-वाणी,
वह थर-थर कांपे रो पड़े युग्म प्राणी।
प्रिय तनय हमारा जीवनाधार हाय,
हम अति निरुपायों का वही था उपाय।।४

जल गरल बना है, पी चुके, पी चुके हैं।
बस अब न जियेंगे, जी चुके, जी चुके हैं।
अब हम असहायों का रहा क्या सहारा,
सुर-सदन सिधारा जीवनालम्ब प्यारा।।५

हम नयन-विहीनों का सहारा वही था,
प्रिय लकुटी बुढ़ापे का हमारा वही था।
अब तक यह पापी प्राण छूटे नहीं क्यों ?
नृप ! हम पर तेरे बाण छूटे नहीं क्यों ?६

निज धनुष उठा तू और सन्धान बाण,
झटपट पहुँचा दे प्राण के पास प्राण।
वह परम विवेकी पुत्र प्यारा जहाँ है,
वह दुख-दिवसों का हा ! सहारा जहाँ है ।।७

वह हृदय-दुलारा नेत्र-तारा जहाँ है,
वह धन निधनों का प्राणप्यारा जहाँ है।
वह गिरिदृढ़ता का, पुण्य का पूत पोत,
सरवर शुचिता का, शील का शुभ्र स्रोत ।।८

व्रत गुरुजन-सेवा पूर्ण पाले वही था,
हम अबल अपंगों को सँभाले वही था।
दुख कठिन उठाते जो न देता सहारा,
अब तक मर जाते जो न देता सहारा ।।९

सुत ! सुख तुमने क्या संग पाया हमारे,
निज प्रण कर पूरा प्राण देके सिधारे।
विधि ! हम अबलों के पिण्ड क्यों तू पड़ा है,
कुलिश हृदय तेरा हाय कैसा कड़ा है ।।१०

तनु-बल खिसकाया, नेत्र की ज्योति खोई,
दुख इस जगती में क्या रहा था न कोई।
प्रिय सुत पर छोड़ा मृत्यु का बाण तूने,
हम दुख-दलितों के ले लिये प्राण तूने ।।११

वह विनय भरा था, वार तेरा कठोर,
वह सह सकता क्यों, दे गया दुःख घोर।
बहु सुमति सिधाई और सेवानुरक्ति,
रति अटल पिता की, निश्चला मातृभक्ति ।।१२

कब हम दुखियों से प्रीति पाली न तूने,
तिल भर तक आज्ञा पुत्र ! टाली न तूने।
सुत ! प्रिय सुत ! बेटा ! वत्स ! प्राणावलम्ब !
अति विकल पिता है जो रही प्राण अम्ब ।।१३

यह मधुमय वाणी जीवनीशक्ति-दात्री,
फिर मम श्रवणों को दे सुना स्वर्गयात्री,
प्रिय सुत तुम आओ या बुलाओ हमें भी,
अब इस भव-बाधा से छुड़ाओ हमें भी ॥१४

हम अधम अभागे और अन्धे अपंग,
इमि मुख मत मोड़ो, ले चलो संग-संग।
बन कर सहगामी साथ तेरे चलेंगे,
अब तक न टले तो संग से क्या टलेंगे ॥१५

दुख पर दुख झेले संग माता-पिता के,
फिर अब हम कैसे हों न संगी चिता के।
मृदुतर तनु मेरा बाण मारा उसी में,
यह हृदय बिधा है हा! हमारा उसी में ॥१६

हम परम अभागे भोगते आप पाप,
हतमति सुतघाती! दें तुझे कौन शाप!
किस विकट व्यथा से जा रहे आज प्राण,
जब प्रिय सुत छूटा तो रहा कौन त्राण ॥१७

दशरथ! शठ, तेरा भी यही अन्त होवे,
सुत तज कर तू भी, क्षुब्ध हो प्राण खोवे।
यह कह कर ज्यों ही दीर्घ निःश्वास छोड़ी,
फिर फिर न सकी जो, शेष थी साँस थोड़ी ॥१८

सुरपुर क्षण में ही ले गये स्वर्गदूत,
जननि-जनक पीछे अग्रगामी सपूत।
सुरगण अगवानी के लिये दौड़ आये,
श्रवण-तनय-सेवा के गये गीत गाये ॥१९

"जननि-जनक दोनों धन्य हैं धन्य लाल,"
कहकर सुरबाला हो रही थी निहाल।
घर-घर वसुधा में शोर था धन्य धन्य,
सुत अनुग पिता का मातृसेवी अनन्य ॥२०

□

विधुर-विलाप

नियति का चलता चक्र कराल,
खड़ा है सबके सिर पर काल।
विधाता किससे हुआ न वाम,
न छूटे कृष्ण! न छूटे राम!!१

कोमलांगी पर वज्र प्रहार,
सहृदया पर शर की बौछार।
न दम भर लेने दिया करार,
वार पर वार! वार पर वार!!२

न हो पाया ओषधि से त्राण,
अन्त में लेकर छोड़े प्राण!
काल का हृदय कराल कठोर,
किसी का उस पर है क्या जोर!!३

जिसे समझे थे चिर-सङ्गिनी,
कहाती थी जो अर्द्धाङ्गिनी।
उसी का छूट गया है संग,
अंग रहते बन गये अपंग।।४

आह! वह उसकी मृदु मुसकान,
सुधा का था वसुधा मे पान।
आह! वह आँखों-आँखो प्यार,
भरा था जिसमे जीवन-सार।।५

आज दुर्लभ दर्शन हो गये,
प्रियतमा खोयी, हम खो गये।
चेत रहते भी हुए अचेत,
रह गयी जीवन-सरिता रेत।।६

अधूरा मानव-जीवन हुआ,
वाटिका से बीहड़ बन हुआ।
रहा करता है मन उद्भ्रान्त,
चित्त हो तो कैसे हो शान्त!!७

हृदय में रह-रह उठती पीर,
मारती है स्मृति बैठी तीर।
समर्पित जिसने जीवन किया,
वार तन दिया, वार मन दिया।।८

एक युग रही संग ही संग,
गया युग फूट, रंग मे भंग !
सती साध्वी का पुण्य प्रताप,
दूर करता था सब सन्ताप ॥६

सर्पिणी चिन्ता की थी जडी,
सामने जब होती थी खडी।
जान पड़ता था घर सुरलोक,
न कोई दु:ख, न कोई शोक ॥१०

हाय ! अब सूना है संसार,
मिलेगा किससे पावन प्यार !
किन्तु भावी पर क्या अधिकार,
गये सब होनहार से हार !!११

□

आर्त कृषक

घटा घोर घिरती चली आ रही थी,
चपलता चपल चपला दिखला रही थी।
मलारें मनुज-मण्डली गा रही थी,
उदासी मगर एक दिशि छा रही थी।
कृषक एक अति व्यग्र व्याकुल खडा था।
निराशा भरे यह वचन कह रहा था ॥१

"चले आओ ऐ ! बादलो आओ आओ,
तुम्ही आके दो-चार आँसू बहाओ।
दुखी हैं तुम्हारे कृषक दुख बटाओ,
न जो बन पड़े कुछ तो बिजली गिराओ।
न रोयेंगे हम, धज्जियाँ तुम उड़ा दो।
किसी भाँति आपत्ति से तो छुड़ा दो ॥"२

"जरा देखो क्या है बनी गत हमारी,
कि देखी नही जाती हालत हमारी।
नही मौत से कम मुसीबत हमारी,
नही साथ अब देती हिम्मत हमारी।
करें क्या बहुत जान पर खेलते हैं।
उठाते हैं गम दुःख बड़े झेलते हैं ॥"३

"कड़ी धूप में, लू में, हैं हल चलाते,
जमीं जलती है पैर हैं चलचलाते।
न इञ्जन यहाँ है, न हैं कल चलाते;
सभी काम हैं हाथ के बल चलाते।
किया करते हैं एक लोहू-पसीना।
कहे जाते हैं हाय! तब भी कमीना॥"४

"नहीं मिलती है पेट भर हमको रोटी,
न जुटता है कपड़ा सिवा एक लँगोटी।
बनी झोपड़ी माँद से भी है छोटी,
कहें और क्या अपनी किस्मत है खोटी।
नहीं ऐसा दुख जो उठाया न हमने।
कभी किन्तु दुखड़ा सुनाया न हमने॥"५

"करें क्या कि अब जान पर आ बनी है,
नही दृष्टि आता दया का धनी है।
कहें मित्र क्या अब जो मन में ठनी है,
नहीं हाय! हीरे को मिलती कनी है।
दरिद्री हैं, घर में नहीं एक दाना।
कहाँ अब है दुनिया में अपना ठिकाना॥"६

"शरण किसकी जायें किसे हम पुकारें,
कहाँ तक बहायें कहो अश्रु-धारें।
हहा! शोक! जिनपर कि हम प्राण वारें,
हमारा अहित इस तरह वे विचारें॥
निकलने न दें कोई उठने की सूरत।
बनाये रखें हमको मिट्टी की मूरत॥"७

"जमी जिसमें दिन-रात यों सर खपायें,
उसे खाद दें, हड्डियाँ तक घुलायें।
मगर हाय! कुछ लाभ लेने न पायें,
जमींदार बेदखल कर दें, छुड़ायें।
हमें प्राण से भी अधिक है जो प्यारी।
न आखिर को हो सकती है वह हमारी॥"८

बरस दो बरस ईतियों ने सताया,
कभी भीतियों ने महाभय दिखाया।
किसी भाँति मर-खप बना खेत पाया,
समय हाय बेदखल होने का आया।
गये-बीते होते हैं बरसात बीते।
नहीं बचने पाते बरस सात बीते ॥९

अगर मृत्यु ने बीच में धर दबाया,
बपौती में बच्चों ने दुख सिर्फ़ पाया।
न कानून ने स्वत्व उनका बताया,
बराबर हुआ उसमें अपना पराया।
अधिक दे इज़ाफ़ा वही खेत पावे।
मगर साथ ही भेंट भी कुछ चढ़ावे ॥१०

जिसे देखिये वह है आँखें दिखाता,
पियादा भी है शाह बन बन के आता।
न दो कुछ तो है धमकियाँ दे के जाता,
अभी देख इसका मज़ा तू है पाता।
है खाली हुआ टेंट ही देते-देते।
चढ़े भेंट हम भेंट ही देते-देते ॥११

जमींदारों के पेट भरते नहीं हैं,
वे खाते हैं इतना अफरते नहीं हैं।
किसानों पै क्या जुल्म करते नहीं हैं,
अभागे हैं हम हाय मरते नहीं हैं।
जिलेदार जी भर हमें लूटते हैं।
न पटवारियों से भी हम छूटते हैं ॥१२

नहीं नाम है दिल में उनके दया का,
ठिकाना कहाँ मोह का या मया का।
नहीं चिह्न रखते हैं हिय में हया का,
समझते हैं वे पुण्य इसमें गया का।
लगा दो बखेड़ा न अब पिण्ड छोड़ो।
बने जिस तरह से किसानों को गोड़ो ॥१३

वे ब्योहर जिन्हे हम समझते हैं ईश्वर,
निकलते हैं बहुधा यमों से भी बढ़कर।
भरा धान्य-धन से है उनका सदा घर,
नहीं खत्म फिर भी है डयोढ़े का चक्कर।
उधर हाय! हैं ब्याज पर ब्याज लेते।
इधर भाव से भी अधिक नाज लेते॥१४

महीनो कभी तुम न सूरत दिखाते,
खड़े खेत के खेत हैं सूख जाते।
लजाते न पर्जन्य हो तुम कहाते,
सता कर हमें कौन-सी कीर्ति पाते।
स्वयं मर रहे हैं उन्हे मारना क्या,
धने दीन हैं उनको दुत्कारना क्या॥१५

सुनायें किसे दुःख की हम कहानी,
हमारा यहाँ कौन है दोस्त जानी।
बहुत मिल चुके है बहुत ख़ाक छानी,
लिया स्वाद क्या हमने करके किसानी।
नही कटते दिन पेट हम काटने है।
खुशी बोते हैं हाय! ग़म काटते हैं॥१६

गये गुजरे संसार में हीन हैं हम,
सुदामा से भी सौगुने दीन है हम।
पडी भाड़ मे हो जो वह मीन हैं हम,
महा घोर अज्ञान में लीन हैं हम॥
न हम पर कभी कोई करता नज़र है।
बला पर बला और अपना ये सर है॥१७

बदल ही गयी देश की है हवा कुछ,
नहीं अब रही हाय! दुःख की दवा कुछ।
हैं हम बेज़बाँ और कहना है क्या कुछ,
निवेदन करेंगे न इसके सिवा कुछ।
जहाँ हो महाराज भी जार्ज पञ्जुम।
हमारे ये आँसू बरस दो वहाँ तुम॥१८

सुनी यों जो दुखिया कृषक की कहानी,
कही आप बीती सब अपनी जबानी।
दया-वश हुए सबके दिल पानी-पानी,
न रोके रुकी आँसुओं की रवानी।
एकाएक उधर एक हृदयवान आया।
मधुर गीत उसने कृषक को सुनाया ॥१६

□

गीत-सृष्टि

सागर के उस पार

सागर के उस पार
सनेही !
सागर के उस पार।

मुकुलित जहाँ प्रेम-कानन है
परमानन्द-प्रद नन्दन है।
शिशिर-विहीन वसन्त-सुमन है
होता जहाँ सफल जीवन है।
जो जीवन का सार
सनेही !
सागर के उस पार॥

है संयोग, वियोग नही है,
पाप-पुण्य-फल-भोग नही है।
राग-द्वेष का रोग नही है,
कोई योग-कुयोग नही है।
हैं सब एकाकार
सनेही !
सागर के उस पार॥

जहाँ चबाव नही चलते हैं,
खल-दल जहाँ नही खलते हैं,
छल-बल जहाँ नही चलते हैं
प्रेम-पालने मे पलते हैं।
है सुखमय संसार
सनेही !
सागर के उस पार॥

जहाँ नहीं यह मादक हाला,
जिसने चित्त चूर कर डाला।
भरा स्वयं हृदयो का प्याला
जिसको देखो वह मतवाला।
है कर रहा विहार
सनेही !
सागर के उस पार॥

पौष-मार्गशीर्ष : शक १६०४]

नाविक क्यों हो रहा चकित है ?
निर्भय चल तू क्यों शंकित है ?
तेरी मति क्यों हुई थकित है ?
गति में मेरा-तेरा हित है ।
निश्चल जीवन भार
सनेही !
सागर के उस पार ।।

□

बटोही

जाग बटोही, जाग बटोही ।
तेरे संगी साथी जागे, जागे तेरे भाग बटोही !
मंज़िल सख्त और तू ग़ाफ़िल ,
पर आसान हो गयी मुश्किल ।
महामंत्र से गांधी जी के, पहुँच गया बेलाग बटोही !
पीछे दुख की घड़ियाँ छूटी ,
हाथ खुले, हथकड़ियाँ छूटी ।
पतझड़ बीता, दिन बहार के, खेल खुशी से फाग बटोही !
आपस में सब घुल-मिल जायें ,
मिलकर एक ताल पर गायें ।
वही तान तू भी अलाप, मत छेड़ दूसरा राग बटोही !
चूक न, यह अच्छा अवसर है ,
सच्ची सीधी सड़क इधर है ।
भूल जायगा, भटक जायगा, उल्टी ओर न भाग बटोही !

□

विस्मृति

भूल को बुरा न समझो भूल ।
है स्मृति की वह सगी बहन ही यदपि प्रगट प्रतिकूल ।
वह सुख याद दिलावे तो यह दुख पर डाले धूल ।
कुटिल जनों के कुवच खटकते बन कर विषम त्रिशूल ।
जो यह प्यारी भूल न करती उनको नष्ट समूल ।

जब आपत्ति कष्ट का भाला देती दिल में हूल।
मरहम विस्मृति ही धरती है हरती है सब शूल।
खिंच जाते हैं मानस-पट पर काँटे हों या फूल।
बन कर रबर सफ़ाई करती मिटते चिह्न फिजूल।

□

काँटा और फूल

हमें तुम क्यों हँसते हो फूल ?
तुम हमको वैरी समझे हो, करते हो यह भूल।
हम-सा यदि न सहायक पाते तो उड़ जाती धूल ॥
गाय, भैंस, बकरी चर लेती होते तुम निर्मूल।
शूली कर-त्रिशूल-से बन कर रोके हैं तव शूल ॥
तुम पर वार रहे हैं तन मन फिर भी हो प्रतिकूल।
गयी तुम्हारी मति मारी है फूल हुए हो फूल ॥
रंग-रूप अपना जैसा है हो तुम उसकी मूल।
काँटे हुए तुम्हारे पीछे समझे गये फिजूल ॥

□

दीवाली

जगह-जगह दीपक रोते हैं।

भरा पुरा वह गेह कहाँ है,
अब सशक्त वह देह कहाँ है,
रिक्त हुए घट स्नेह कहाँ है,
बुझते-से 'टिम-टिम' होते हैं।
जगह-जगह दीपक रोते हैं ॥

उदरों में ज्वाला जलती है,
जीवन की चिन्ता खलती है,
कहाँ कामना जो फलती है,
उगता कब जो कुछ बोते हैं।
जगह-जगह दीपक रोते हैं ॥

रोते दुखिया जार-जार हैं,
उनको जीवन हुए भार हैं,

पौष-मार्गशीर्ष : शक १६०४]

यह घर है या यह मजार हैं,
अर्द्धमृतक जिनमे सोते हैं।
जगह-जगह दीपक रोते हैं ॥
जो कुछ था सब फूंका तापा,
भूखों को भूला है आपा,
कैसी पूजा कहाँ पुजापा,
दीन प्राण अपने खोते हैं।
जगह-जगह दीपक रोते हैं ॥

कहते हैं आयी दीवाली
लक्ष्मी कहाँ हाथ हैं खाली,
उनके रहे न लोटा-थाली,
जो नव्वाबो के पोते हैं।
जगह-जगह दीपक रोते हैं ॥

□

मतवाले

ऐ मतवाले ! बोल।
किससे लगन लगी है तेरी,
तेरी चिन्ता किसकी चेरी,
कहाँ लगाता है तू फेरी—
बोल, बोल अनमोल
ऐ मतवाले ! बोल ॥

अपने आप खो रहा क्यो तू,
यों उन्मत्त हो रहा क्यो तू,
अब उठ जाग सो रहा क्यो तू,
मन की गुत्थी खोल।
ऐ मतवाले ! बोल ॥

उसका पता किसी ने पाया,
वह कब किसके सम्मुख आया।
होकर अपना रहा पराया,
उसकी नाप न तोल।
ऐ मतवाले ! बोल ॥

दीन-बन्धु वह दीनों मे है,
बन कर हुस्न हसीनों मे है,
या फिर जलते सीनों में है
दिल में दर्द टटोल।
ऐ मतवाले ! बोल ॥

□

झन-झन झनक रही हैं कड़ियाँ

दर्शनीय जो दिव्य मूर्तियाँ
उन पर ऐसी घड़ियाँ ॥

दण्ड-प्रहार उन्ही पर, जिनको खलती थी फूलो की छड़ियाँ
पीसी जाती हैं चक्की में, हे विधि ! क्या मोती की लड़ियाँ ?
झन-झन झनक रही हैं कड़ियाँ।

धूप तपाये, शीत कँपाये, लगे मेह की झड़ियाँ
देखे कौन सजल नेत्रो को ओठो की पापड़ियाँ ॥
झन-झन झनक रही हैं कड़ियाँ।

शान्ति और सन्तोष मूर्ति हैं यह कह रही अँखड़ियाँ
खिचती हैं काँटो मे क्या-क्या हा ! कोमल पंखड़ियाँ ॥
झन-झन झनक रही हैं कड़ियाँ।

□

कोकिले !

कूक कोकिले कूक ॥
मुसकाती-सी कलियाँ आयी,
हँसती सुमनावलियाँ आयी,
मधुपों की मण्डलियाँ आयीं,
बन कर परी तितलियाँ आयीं।
आ जा, तू भी कू-कू करती, ऐसे समय न चूक।
कूक कोकिले कूक ॥

आम्र-मञ्जरी तुझे बुलाती,
लता तुझे छू कर लहराती,
आ जा, तू तो आती-जाती,
वन को कुछ-का-कुछ कर जाती।
कुछ दुखिया के दुख से कब तक, बनी रहेगी मूक।
कूक कोकिले कूक ॥

मैं भी काली तू भी काली,
मैं मतवाली तू मतवाली,
तूने प्याली पा ली ढाली,
मेरी प्याली तो है खाली।
मेरे दिल की हूक न निकली, तू निकाल ले हूक।
कूक कोकिले कूक ॥

अंग-अंग मे आग समानी,
आँखों मे पानी-ही-पानी,
दीवानी है हाय! जवानी,
मैं पगली दुनिया की रानी।
मेरा हृदय उछलता, इसके कर दे तू दो टूक।
कूक कोकिले कूक ॥

□

पपीहे

पपीहे! ऐसे बोल न बोल।
होता क्यों बदनाम बावले! स्वयम् बजा कर ढोल।
यों "पी कहाँ-पी कहाँ" कह कर खोल न अपनी पोल।
होकर शान्त, शान्त रहने दे, विष न और तू घोल ॥
मौन पतंग प्राण देता है समक्ष प्रेम का मोल।
मौन विरह मे मैं जलता हूँ रहकर अचल अबोल ॥
प्रियतम निष्ठुर हैं, होने दे, तू मत जिह्वा खोल।
आग न लगा हृदय में मेरे अपना हृदय टटोल ॥

□

श्याम !

विराजो मन-मन्दिर में श्याम !
बन कर आओ हृदय-गगन मे, उदित चन्द्र अभिराम।
फैले यश रसमयी चन्द्रिका, रचो रास रस धाम।
गोपी वृत्ति कल्पना वन मे, ढूँढ़ रही अविराम।
मुरली मधुर बजाते आओ, गाते गीत ललाम।
हृदयो को उकसाते आओ, करें कर्म निष्काम।
धर्म धनुष धारण कर जाये, यह जीवन-सग्राम।
पावन परम पुण्य-पथ पायें, गायें तव गुण ग्राम।।

□

जवानी

जवानी दीवानी का रंग।
उत्सुक हुआ गगन चुम्बन को बनकर चित्त पतंग।
जवानी दीवानी का रंग।

यह तत्परता, यह तन्मयता, यह उत्साह अभंग,
यह दिल, यह अरमान, और है आठों पहर उमंग।
जवानी दीवानी का रंग।

यह उद्देश्य साधना का व्रत निशि-दिन ध्येय प्रसंग,
विपदाओ, असफलताओ से करते रहना जंग।
जवानी दीवानी का रंग।

यमुना-यौवन-सरि मे मिलना विमल प्रेम की गंग,
सरस सरस्वती की करुणा से तरल त्रिवेणि तरंग।
जवानी दीवानी का रंग।

दीवाना कहना लोगों का रह-रह आना दंग;
यह स्वदेश-सेवा की धुन, यह सद्भावों का संग।
जवानी दीवानी का रग।

□

बरसात की बहार

फिर आयी, फिर आयी बदरिया ।
घिर आयी, घिर आयी बदरिया ।
आयी घटा झूमती काली ,
लहकी सावन की हरियाली ,
झूम उठी है डाली-डाली ,
छवि छाया बन आयी बदरिया ,
फिर आयी, फिर आयी बदरिया ।

छन-छन होता उन्मन मन है ,
जीवन है पर क्या जीवन है ?
पास नहीं मम जीवन-धन है ,
प्रिय सन्देश न लायी बदरिया ,
फिर आयी, फिर आयी बदरिया ।

घन दामिनी लिये फिरता है ,
कल-कामिनी लिये फिरता है ,
दिन-यामिनी लिये फिरता है ,
विरही को दुखदायी बदरिया ,
फिर आयी, फिर आयी बदरिया ।

भर दे सर-सरिताएँ मे भर दे ,
समतल कर दे जल-थल कर दे ,
तर कर अन्तर तर के परदे ,
चातक की मनभायी बदरिया ,
फिर आयी, फिर आयी बदरिया ।

धूप गयी आयी है छाया ;
शीत पवन लहराता आया ,
सावन-सावन गाता आया ,
संग-संग . घहरायी बदरिया ,
फिर आयी, फिर आयी बदरिया ।

□

दूर-दूर

तुम रहते मुझसे दूर-दूर।
मैं प्रतिपल आकुल रहता हूँ,
दिल रहता मेरा चूर-चूर।
तुम रहते मुझसे दूर-दूर।

मैं ध्यान तुम्हारा करता हूँ,
भरता नयनों में अश्रु पूर,
चुटकियाँ हृदय में लेता हूँ,
उन्मन कर देता विरह क्रूर।
तुम रहते मुझसे दूर-दूर।

जब-तब बस झलक दिखाते हो,
सामने नहीं होते हुजूर,
लय हो न सका तुम मे बन्दा,
इसमे बन्दे का क्या कसूर,
तुम रहते मुझमे दूर-दूर।

तुम केवल हाँ, बस केवल तुम
हो लक्ष्य, रहा मैं तुम्हें घूर।
तुम पर कुर्बानी किया करूँ,
मैं नरी, किन्नरी परी हूर।
तुम रहते मुझसे दूर-दूर।

□

सावन

सरस कर रही बरस-बरस कर,
मधुरिम घड़ियाँ सावन की।
कभी झमाझम, कभी लगातीं
रिमझिम घड़ियाँ सावन की।

नीरस यह संसार पड़ा था,
धूल यहाँ पर उड़ती थी,
जीवन इसमें पहले लायीं
आदिम घड़ियाँ सावन की

योगिराज शकर जी का भी
मन-मयूर-सा नाच उठा,
सुना रही हैं भक्त-जनों की
डिम्-डिम् घडियाँ सावन की।

नये-नये हैं शर्मा दिखाती
खींच रँगीली रेखाएँ
इन्द्र-धनुष ताने बैठी हैं,
बंकिम घड़ियाँ सावन की।

साँझ फूलती दोपहरी-सी,
लाली नभ मे छा जाती,
साफ दिखाई दे जाती हैं,
रक्तिम घडियाँ सावन की।

आयें, जो मनभावन आयें,
जी की लगी बुझाने को,
अब सिर पर आने वाली हैं,
अन्तिम घडियाँ सावन की।

डूब न जायें होड़ लगी है,
आँखो और बादलो मे,
हैं विरही के लिए 'सनेही'
जोखिम घडियाँ सावन की।

□

उद्बोधन

सीधी राह चला चल बाबा।
है भव-पन्थ विकट यदि भटका,
पद-पद पर जीवन का खटका।
आँधी-पर-आँधी आती है,
लगता है झटके-पर-झटका।
इधर-उधर मन कर न बावले! पहले सोच बलाबल बाबा।
सीधी राह चला चल बाबा।।

जाने कितने रस्ता भूले,
पड़े भ्रान्ति झूले में झूले,
नहीं जिन्होंने निज पथ देखा,
ऊले बहुत चाल पर फूले।

दौड़ लगायी अन्धे होकर गिरे अन्त सर के बल बाबा।
सीधी राह चला चल बाबा॥

पथ-दर्शक है यहाँ न कोई,
चिर-साधक है यहाँ न कोई।
काले-काले काक यहाँ हैं,
उज्ज्वल बक है यहाँ न कोई।

अचल दृष्टि रख तू स्वलक्ष्य पर कर न चित्त निज चञ्चल बाबा।
सीधी राह चला चल बाबा।

साहस को निज साथी कर ले,
भीत न हो अब बाँध कमर ले।
सत्य अस्त्र कुण्ठित न कहीं हो,
बाढ़ धारणा की तू धर ले।

चल अब मञ्जिल निकट आ गयी बैठा हाथ न तू मल बाबा।
सीधी राह चला चल बाबा॥

□

बाँसुरी-वाले

हैं गोप पड़े सोते;
गायों की बुरी गत है।
नित एक नयी आफ़त-
है; कंस की विदअत है॥
बे-जान प्रजा से भी,
राजा की शरारत है।
अब तेरे सिवा किसमें
यह जुरअतो हिम्मत है॥
ऐ बाँसुरी-वाले! तू;
फिर फूंक ज़रा बंसी॥१

बच्चों की ये कुर्बानी
माँओं की परेशानी।
बदजातो की बदजाती ;
शैतानों की शैतानी ॥
देखी नही जाती है ;
वर्नादियो वीरानी।
खूं रोती हैं आँखें भी ,
होता है जिगर पानी ॥
ऐ बाँसुरी-वाले ! तू ;
फिर फूंक जरा बंसी ॥२

लय जिसमे प्रलय की हो ;
तू छेड वही स्वर दे।
गा गीत कोई ऐसा
जो भय से अभय कर दे ॥
विश्वास अमरता का ;
आत्मा को यही वर दे ॥
दे लोक को नव जीवन ;
हृदयों मे सुधा भर दे ॥
ऐ बाँसुरी वाले ! तू ;
फिर फूंक जरा बंसी ॥३

□

श्रद्धाञ्जलि

महात्मा तिलक के प्रति

कैसा वज्रपात हाय ! भारत-मही में हुआ,
परम प्रशस्त कीर्ति-यूप ध्वस्त हो गया।
घोर अन्धकार हुआ सूझता सुपन्थ नहीं,
वृद्ध-बाल-युवा हर एक त्रस्त हो गया।
पड़ा है तुषार, मुरझाये हैं कमलमुख,
पस्त हौमले हैं दिल है शिकस्त हो गया।
आते ही अगस्त के अखण्ड अर्द्धरात्रि बीच,
भारत-प्रताप भासमान अस्त हो गया ॥१

ले गया कराल काल नाविक प्रवीण छीन,
जाति का जहाज़ मँझधार में डुबो गया !
व्याकुल विलखते विचारते बने न कुछ,
वामता से विधि की विषम विष बो गया !
सो गया 'सनेही' भाग्य से गया स्वभाग्य ही के,
हाय ! हाय ! कैसा ये महा अनर्थ हो गया !
तिलक त्रिलोक का हमारा लोकमान्य हाय,
भारत-वसुन्धरा का रत्न आज खो गया !!२

धारा बाँध आती अश्रु-धारा है अखण्ड आज,
हो गया जिगर चोट खाके रेजा-रेजा हाय !
बाल गंगाधर वीर तिलक वसुन्धरा का,
लोकमान्य धीर भगवान् ही का भेजा हाय !
सुरपति-सदन सिधारा जो न हारा कभी,
मारा यमराज ने यो मर्म ही पै नेजा हाय !
काल करवाल की कुटिलता कठोरता से,
कट गया भारत का कोमल कलेजा हाय !!३

फूट गया भाग्य आज स्वत्व का स्वतन्त्रता का,
जीवन का एकमात्र वही तो सहारा था।
लूट गया आर्य-अवनी का ताज तेजवन्त,
छोड़ता सदैव जो प्रकाश-पुञ्ज-धारा था।
छूट गया नेता गुणीगण मध्य अग्रगण्य,
दीन देशवासियो की मुक्ति का जो द्वारा था।
टूट गया भारत-गगन का सितारा—
वृद्धा-माता का लकुट और मुकुट हमारा था ॥४

पौष-मार्गशीर्ष : शक १८०४]

बिलखाते बम्बई बरार मध्यदेश वाले,
अंग-बंगवासी हो अपंग खूब रोते हैं।
आगरा, अवध और पञ्चनद देश दुखी,
भूलता नहीं है दुःख, जागते कि सोते हैं।
खिन्न है बिहार और मदरास है उदास,
भारत के प्रान्त लख अन्त जान खोते हैं।
कौन दे सहारा प्यारा भारत तिलक नहीं,
आशा-बेलि सूखी है हताश हाय होते हैं ॥५

□

महामना मालवीय जी

भारत-समाज का जहाज दिशा भूला हुआ,
भटक रहा था उसे तट तक खे गये।
विश्वनाथ-पुरी में बना के विश्वविद्यालय,
विश्व में सुयश-राशि संग-संग ले गये।
आर्य-सभ्यता की मूर्ति मालवीय ब्रह्मऋषि,
भीष्म-बल देश के पितामह चले गये।
हिन्द और हिन्दी को सजीवन दे, जीवन में ;
हिन्दुओं के प्राण जाते देख, प्राण दे गये ॥

□

भारत कोकिला सरोजिनी नायडू

महिला-जगत् की शिरोमणि सरोजिनी हा !
गौरव स्वदेश की हमारी निधि खो गयी।
सिंहनी स्वतन्त्रता-समर की 'सनेही' वह,
बापू से मिलन हेतु सुर-पुर को गयी।
कई दिन सोयी न सुलायी गयी औषधि से,
सोते-सोते जागी और मृत्यु नींद सो गयी।
जिसके कि स्वर में भरा था एक जादू, वही
भारत की कोकिला सदा को मौन हो गयी ॥

□

महान् गांधी

तू है विराट्, तू है विराट् !
तू एक नवीन विधाता है, बदला है तूने विश्व-ठाट।

सबलों के ओछे वारों से,
संहारों और प्रहारो से,
तोपों - तीरों - तलवारों से,
भीषण बम की बौछारों से,
होता न चित्त विचलित तेरा, है ज्ञात सभी का तुझे काट।
तू है विराट्, तू है विराट् !!

तू व्याप रहा है घर-घर मे,
तेरी चर्चा दुनिया भर मे,
हिंसा के भारी भर-भर में,
निज सत्य-अस्त्र लेकर कर में,
पशुता को डाट दिया तूने, संसार प्रेम से दिया पाट।
तू है विराट् ! तू है विराट् !!

'पालिसी' नाम ही छल का था,
पल्ला सुनीति का हल्का था,
यह बल किस और सबल का था,
छल का जीवन-रस छलका था,
व्यवसाय छोड नकली लीडर, भागे हैं अपना उलट ठाट।
तू है विराट् ! तू है विराट् !!

तू एक निराला जादूगर,
तेरे छूते भय 'छू-मन्तर',
चरखे को दे-देकर चक्कर,
खोजा स्वातन्त्र्य-सूत्र सुन्दर,
करता स्वदेश का सर ऊँचा, तेरा प्रशस्त उन्नत ललाट।
तू है विराट्, तू है विराट् !!

□

राष्ट्रपिता बापू

क्या हुआ हाय भगवान्, सो गये बापू !
जनता के जीवन-प्रान, सो गये बापू !
जीवित गीता के ज्ञान, सो गये बापू !
थे सत्य प्रेम की खान, सो गये बापू !
महिमा थी महा महान्, सो गये बापू !
थे ईश्वर के वरदान, सो गये बापू !
मानवता के अभिमान, सो गये बापू !
जनता के जीवन-प्रान, सो गये बापू !!१

वह उठे, उठ गयी आह ! शान्ति की सत्ता,
दिल्ली दिल से रो पड़ी, कँपा कलकत्ता।
अब है वैसा तप कहाँ, कहाँ विद्वत्ता।
हा ! हा ! भारत की छिनी विभूति-महत्ता।
देकर अपना बलिदान, सो गये बापू !
जनता के जीवन-प्रान, सो गये बापू !!२

जय जिनकी थी अनुचरी अहिंसा-बल से,
रहते थे हरदम दूर छद्म से, छल से।
व्याकुल देखा जो विश्व न बैठे कल से,
देते उसको सान्त्वना रहे हलचल से।
पड़ गया विकट व्यवधान, सो गये बापू !
जनता के जीवन-प्रान, सो गये बापू !!३

युग-पुरुष महात्मा ईश-अंश अवतारी,
तन-मन से बढ़कर जिन्हें एकता प्यारी।
वह ईसा के अनुरूप दया-व्रत-धारी,
वह सुर-गण से भी श्रेष्ठ मनुज संसारी।
देकर नव-जीवन-दान, सो गये बापू !
जनता के जीवन-प्रान, सो गये बापू !!४

जो आशा का था चमन कभी लहराता,
जिसका हर पंछी राम-नाम था गाता।
जिसमें था प्राणी तृषित शान्ति-जल पाता,
जिसकी छवि से था देव-भवन शरमाता।

वह हाय ! हुआ सुनसान, सो गये बापू ।
जनता के जीवन-प्रान, सो गये बापू[1] ॥५

□

आये सत्य रूप सत्य सत्य-युग लाये यहाँ दया अवतार वर देकर क्षमा गये ।
शोक ! ऐसा शोक !! जैसा लोक मे हुआ न कभी बिंध गये हृदय कलेजे बरमा गये ।
ऐसा किया घात देख कर पातकी के हाथ बधिक से अधिक बधिक शरमा गये ।
ईश्वर के अंग ही में सत्यरूप धारी वे थे, सत्य-रूप आये सत्य-रूप मे समा गये ।

□

विश्व-वन्द्य बापू की जय !

जय सत्य, अहिंसा और प्रेम,
जिनसे कि लोक का हुआ उदय ।
जय मोहन की, जय गाधी की,
जय विश्व-वन्द्य बापू की जय !

१. 'बापू की चिर निद्रा', शीर्षक एक अन्य कविता में इन छन्दो के साथ ही निम्नलिखित दो छन्द और बाद में जोड़े गये हैं ।

जिनका हृदयो मे वास सदा रहता था,
प्रति सत्कृति मे आभास सदा रहता था ।
जिन पर कि अचल विश्वास सदा रहता था,
जिनका बल अपने पास सदा रहता था ।
हा ! उनका ही अवसान, सो गये बापू !
जनता के जीवन-प्रान, सो गये बापू !!१
दिल दहल गया प्रत्येक धर्म-प्रेमी का,
है टूट गया आसरा जान का जो का ।
जँचने सबको है लगा स्व-जीवन फीका,
डूबा सूरज सौभाग्य लुटा अवनी का ।
कैसे हो स्वर्ण-बिहान, सो गये बापू !
जनता के जीवन-प्रान, सो गये बापू !!२

□

जब सत्य-सूर्य पर असत् घटा घिर आयी तम-विस्तार हुआ ,
जब मानवता मुँह मोड चली, दानवता का सञ्चार हुआ ।
जब वैर परस्पर बढ़ा नाश का अभिनव आविष्कार हुआ ,
जब दीन दबाये गये व्यथित अति दलितों का संसार हुआ ॥

तो जाय न मिट मेरी सारी कृति ,
विधि को हुआ विकट संशय ।
जय मोहन की, जय गांधी की ,
जय विश्व-वन्द्य बापू की जय ॥१

संसार-मुकुट-मणि भारत था दासता-पाश में पड़ा हुआ ,
झण्डा विदेश का छाती पर उसकी था अविचल गडा हुआ ।
बन्धन मे पडना पड़ा उसे जो व्यक्ति मुक्ति-हित खडा हुआ ,
पिंजड़े में तड़पा जब बन्दी, प्रतिबन्ध और भी कड़ा हुआ ॥

जब हुए दयार्द्र-हृदय पत्थर ,
कब आयी काम विनय-अनुनय ।
जय मोहन की, जय गांधी की ,
जय विश्व-वन्द्य बापू की जय ॥२

लाड़ले देश के लड़े लड़ा के आन किन्तु मैदान गये ,
लेकर निज प्राण हथेली पर देकर अपना बलिदान गये ।
जो स्वत्व-समर में भरी जवानी कर कुर्बान जवान गये ,
निज जन्मभूमि की स्वतन्त्रता का लिये साथ अरमान गये ॥

शंका न काल की तिल-भर की,
पलटा न कभी अपना निश्चय ।
जय मोहन की, जय गांधी की,
जय विश्व-वन्द्य बापू की जय ॥३

हरि का आह्वान किया रोकर चिन्तातुर भारतमाता ने ,
हा ! हन्त !! भुला दी सुध मेरी क्या दीनबन्धु सुखदाता ने ।
अपनायी ऐसी निष्ठुरता क्यो हाय ! जगत् के त्राता ने ,
यह दशा देख हो गया द्रवित, सोची नव युक्ति, विधाता ने ॥

भेजा भाण्डार अहिंसा का ,
भारत में राम-भक्त निर्भय ।
जय मोहन की, जय गांधी की ,
जय विश्व-वन्द्य बापू की जय ॥४

लाया वह चरखा-चक्र देश में चिर नग्नता मिटाने को,
लाया अद्भुत प्रतिभा-प्रकाश जगती का तिमिर हटाने को।
करुणा से भरा हृदय लाया दोनों के प्राण बचाने को,
वह लाया अनुपम सहन-शक्ति प्रिय प्रेम-धर्म फैलाने को ।।

घन-घोष समान घोषणा की,
रह सकते नहीं असत्य अनय।
जय मोहन की, जय गांधी की,
जय विश्व-वन्द्य बापू की जय ।।५

आया न समझ में जादू-सा उसका विचित्र व्यापार रहा,
जाज्वल्यमान उसकी छवि से बरसों ही कारागार रहा।
अपने निश्चय पर अचल अटल ध्रुव वह ध्रुव का अवतार रहा,
आकर्षित सारा लोक रहा चिर चकित सकल संसार रहा ।।

जयमाला उसके गले पड़ी,
निकला अकाट्य उसका निर्णय।
जय मोहन की, जय गाधी की,
जय विश्व-वन्द्य बापू की जय ।।६

जो बिना शस्त्र के रण जीते क्या किसी वीर में है यह दम,
झख मारे जिससे झेंप जायँ तोपों के गोले, एटम बम।
चाणक्य कूटनीतिज्ञों को जिसकी मुसकान करे बेदम;
दे कपट-नीति की मूल काट चल कर जिसका निर्भीक कलम ।।

जो पक्का धर्मधुरन्धर हो;
भूले न राम को किसी समय।
जय मोहन की, जय गाधी की,
जय विश्व-वन्द्य बापू की जय ।।७

अनुयायी उसका लोक हुआ, सच्चा उसका गुरुमन्त्र हुआ;
उसके ही प्रबल तपोबल से, प्रिय भारतवर्ष स्वतन्त्र हुआ ।।
जब चली न चाल द्वेषियों की, उसके विरुद्ध षड्यन्त्र हुआ,
अपने सीने पर ली गोली, पर वह न कभी परतन्त्र हुआ ।।

हा! राम-राम!! कहते-कहते;
हो गया राम ही में फिर लय।
जय मोहन की, जय गांधी की,
जय विश्व-वन्द्य बापू की जय ।।८

□

जवाहर-जयन्ती

राष्ट्र के मुकुट जवाहरलाल ।
तेज से सूर्य समान ललाट,
विजेता युवक-हृदय-सम्राट् !
उलटते कूटनीति का टाट,
जगत् व्यापी है सुयश विराट् ।
ढाल हैं भारत-भूमि के बने,
सिंह-सा उनका वक्ष विशाल !
राष्ट्र के मुकुट जवाहरलाल !!
आज वह हैं स्वदेश की शान,
मानवों को उन पर अभिमान !
पड़ी जन-जन में उनसे जान,
उन्हीं के हाथों है मैदान ।
न आयी कभी सांच को आंच,
चले क्या उनसे कोई चाल !
राष्ट्र के मुकुट जवाहरलाल !!
जगत् मे बीते वत्सर साठ-
पढ़ाते हुए पुण्य का पाठ !
देख कर उनके यश की लाठ,
मार जाता वैरी को काठ !
अहिंसाव्रती अजेय अनूप,
काँपते क्रूर समक्ष कर काल !
राष्ट्र के मुकुट जवाहरलाल !!
बढ़े दिन-दिन दूना सम्मान
रहें पूरे होते अरमान !
लोक-कल्याण समाजोत्थान !
विश्व स्वातन्त्र्य विवेक विधान !
कहीं हो कोई भी हो खेल,
गले में पड़ा करे जयमाल !
राष्ट्र के मुकुट जवाहरलाल !!

□

युवक हृदय सम्राट

तू शीतल हिम-कण और प्रलय की ज्वाला,
तू शान्त, धीर, गम्भीर देश-मतवाला।
तू है नरसिंह सपूत सिंह का पाला;
त्रैलोक हृदय जय किये पहने जयमाला ॥१

कण्टक-पथ में भी नहीं अटकते देखा;
प्रत्यक्ष लक्ष्य से नहीं भटकते देखा।
भय निकट न तेरे कभी फटकते देखा,
खटका भी कोई नहीं खटकते देखा ॥२

कर लिया अटल प्रण कभी न प्रण को छोड़ा,
रक्खा स्वतन्त्रता-ध्येय न क्षण को छोड़ा।
ममता मन की है तजी स्वजन को छोड़ा;
छोड़ी न आन, आनन्द-भवन को छोड़ा ॥३

तू निकला एक जवान देश-अभिमानी,
सार्थक स्वदेश में तेरी हुई जवानी।
कुर्बान जाय तुझ पर तेरी कुर्बानी;
लासानी है, लासानी है, लासानी ॥४

कारा की दारुण दुःख व्यथाएँ दूनी,
परवा न तनिक की, वहीं रमा दी धूनी।
जख़्मी दिल था उस पर यह खञ्जर खूनी,
कमला-सी कमला छूटी, कुटी है सूनी ॥५

तू मूक श्रमिक कृषिकार जनों की भाषा,
तेरे साहस को देख निराश निराशा।
तू अरमानों का केन्द्र देश अभिलाषा,
तू युवक-हृदय-सम्राट् हिन्द की आशा ॥६

तू परख पारखी जनता की पीरों का,
तू है साहस की मूर्ति धीर धीरों का।
मर्दाना बाना और ठाट बीरों का,
तुझको काँटों का ताज मुकुट हीरों का ॥७

पौष-मार्गशीर्ष : शक १६०४]

हे वीर जवाहर ! युवकों को जौहर दे,
जो हैं निराश आशा से भुजबल भर दे।
हाँ, एक बार फिर हमको जीवित कर दे,
हे राष्ट्रदेव ! दे शक्ति देश को वर दें ॥८

□

सुभाषचन्द्र

तूफान जुल्मो-जब्र का सर से गुज़र लिया,
की शक्ति-भक्ति और अमरता का वर लिया।
खादिम लिया न साथ कोई हमसफर लिया,
परवा न की किसी की हथेली पर सर लिया।
　　आया न फिर कफस में चमन से निकल गया।
　　दिल में वतन बसा के वतन से निकल गया ॥१

बाहर निकल के देश के घर-घर में बस गया,
जीवट-सा हर जवाने-दिलावर में बस गया।
ताकत में दिल की तेग़ से जौर में बस गया;
सेवक में बस गया कभी अफसर में बस गया ॥
　　आजाद हिन्द फौज का वह संगठन किया।
　　जादू से अपने क़ाबू में हर एक मन किया ॥२

गुर्बत में सारे शाही के सामान मिल गये,
लाखों जवान होने को क़ुर्बान मिल गये।
सुग्रीव मिल गये कहीं हनुमान् मिल गये,
अंगद का पाँव बन गये मैदान मिल गये,
　　कलियुग में लाये राम-सा त्राता सुभाषचन्द्र।
　　आजाद हिन्द फौज के नेता सुभाषचन्द्र ॥३

हालाँकि आप गुम हैं मगर दिल में आप हैं,
हर शख्स की जुबान पै महफिल में आप हैं।
ईश्वर ही जाने कौन-सी मञ्जिल में आप हैं,
मँझधार में हैं या किसी साहिल में आप हैं।
　　कहता है कोई, अपनी समस्या में लीन हैं।
　　कुछ कह रहे हैं, आप तपस्या में लीन हैं ॥४

आजाद होके पहुँचे हैं सरदार आपके,
शैदा वतन के शेरे-बबर यार आपके,
बन्दे बने हैं काफिरो-दीदार आपके,
गुण गाते देश-देश में अखबार आपके॥
है इन्तजार आप मिलें, पर खुले हुए।
आँखों की तरह दिल्ली के हैं दर खुले हुए॥५

□

अमर शहीद गणेशशंकर विद्यार्थी

कुछ आये, चल दिये जगत् से फिर, दिन भर के,
कुछ दुविधा में रहे घाट के हुए न घर के।
कुछ ऐसे रणशूर सूरमा स्वत्व-समर के,
अजर-अमर हो गये हथेली पर सर धर के।
सत-बल, प्रेम-प्रभाव से ऐसी करणी कर गये,
मुक्ति-पंथ के अग्रणी, सुयश भुवन में भर गये॥१

श्री गणेश जी एक धुरन्धर सेनानी थे,
अनुपम साहस और शौर्य के लासानी थे।
सच्चे सहृदय सुधी देश के अभिमानी थे,
वैरी पानी देख हुए पानी-पानी थे।
प्राणों से प्यारा उन्हें, हर मजदूर-किसान था,
पर-रक्षा में प्राण तक दिये, वह महादान था॥२

वाणी में वह असर कि जादू शरमाता था।
ज्ञान-सिन्धु लेखनी ललित में लहराता था।
बढ़ते थे जिस ओर जय-ध्वज फहराता था,
दीनजनों का वृन्द त्राण उनसे पाता था।
गौरवमय इस देश की, एक विभूति महान् थे,
धन्य जवानों को किया, ऐसे वीर जवान थे॥३

संवेदन का स्रोत उमड़ता था, बहता था,
होता हुआ अधीर हृदय चोटें सहता था।
लाख विपद् हों अचल सदा ध्रुव-सा रहता था,
"धन्य मनस्वी! धन्य" उन्हें प्रतिजन कहता था।

जन-समूह नेतृत्व में, उनके हुआ सनाथ था,
जनता के जागरण में, उनका आगे हाथ था ॥४

रचना की धुन और कल्पना सर्वोदय की,
सुनते थे वह ठीक समय पर माँग समय की।
मुख-मण्डल पर कभी न देखी रेखा भय की;
कभी न उनसे चाल एक चल सकी अनय की।
उद्धारक थे एक ही, वह जर्जरित समाज के,
घर-घर में गुणगान है, नरवर उन सरताज के ॥५

□

गुरु गोविन्द सिंह

दसवीं दशा में पहुँचाया दुष्ट दस्युओं को,
दसवाँ गुरु था या दस दिशि अधिकारी था।
छोड़ के इताअत, जमाअ-त में डाली जान,
रूप भगवान् का महान् क्रान्तिकारी था।
मृतक जिलाता था पिलाता था अमृत वह,
दे के गुरुमन्त्र बना देता भट भारी था।
धर्म के प्रताप और प्रबल पराक्रम से,
एक-एक सिंह लाख-लाख पर भारी था ॥१

भौंहें हुईं वक्र शर आ गया शरासन पै,
पर-हीन पर ऐसा पैना पर हो गया।
सर-सर चलाकर धड़ से उड़ाता हुआ,
अन्धड़ कहो कि कहो "सर-सर" हो गया।
अचल सचल हुए विचल विरोधी गये,
भागे भट भीरु सम भर-भर हो गया।
आ गया अकाल काल कहता हुआ अकाल,
वैरी रेत खेत हुए खेत सर हो गया ॥२

प्रतिभा से उनके प्रकाशमान देश हुआ,
अन्धकार युग के वे भासमान रवि थे।
ठाना धर्म-यज्ञ धधकायी थी समर-अग्नि,
होता कभी होते और होते कभी हवि थे।

जिसने निहारा चरणों में वहीं झुक गया,
धीर दिव्य तेज, ओज और देव-छवि थे।
जल्पना नहीं थी, कोरी कल्पना नहीं थी वह,
कल्पतरु कवियों के कर्मशील कवि थे ॥३

धर्म-भेंट किये सिंह-शावक सपूत कैसे,
पकड़े रहे जो, सत्य-पथ पकड़े रहे।
आन पर धर्म की विधान पर पूर्वजों के,
शान पर अपनी अडिग हो अड़े रहे।
कैसे त्याग-वीर थे जहान में जवाब नहीं,
बलिदान में न बाप से भी पिछड़े रहे।
गड़े पड़े जिस पृथिवी में हैं असंख्य वीर,
मर के भी छाती पर उसकी खड़े रहे ॥४

□

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

ऐसा चमका सूर-चन्द्र की दीप्ति दबा दी,
चपला से चौगुनी प्रबल प्रतिभा चमका दी।
नीरस भाषा-लता सरस कर दी, लहरा दी,
हरे हो उठे हृदय, सुधा-धारा बरसा दी।
छायी उसकी छवि-छटा अब तक चारों ओर है,
"जयति अपूरब घन कोऊ लखि नाचत मन मोर है।"
नाट्य कलाविद् और स्रोत था वह कविता का,
फहरी उसकी दिग्-दिगन्त में कीर्ति-पताका।
वह हो गया निहाल कि जिसको उसने ताका,
था वह गद्याराम, क्षेत्र था वह कविता का।
वह हिन्दी साहित्य का एकच्छत्र भूपाल था,
परम भक्त भारती का, भारत माँ का लाल था।
भारतेन्दु था, पूर्ण कलाओं का था ज्ञानी,
हरिश्चन्द्र था, हरिश्चन्द्र ही-सा था दानी।
लुटा दिया घर-बार किसी की एक न मानी,
नहीं-नहीं थी, नहीं-नहीं थी उसने जानी।
रसिक सुकवियों की सुमति थी आरती उतारती,
उसके हृदय विशाल में बैठ गयी थी भारती।

पौष-मार्गशीर्ष : शक १६०४]

उसका पुण्य चरित्र ध्यान में जब लाते हैं,
बँध जाता है गला, नयन भर-भर आते हैं।
कोई सानी नहीं आज उसका पाते हैं,
यों तो है संसार, बहुत आते-जाते हैं।
आलोकित वह कर गया भारत नव आलोक से,
थोड़े ही दिन के लिए आया था सुरलोक से।

□

स्वर्गीय प्रेमचन्द जी

चाहिए था जिनको कि उम्रे जाविदानी मिले फ़ानी दुनिया में
वही फ़ानी हाय ! हो गये !
पत्थर को पानी करने का जिनमें था दम, ऐसी व्याधि आयी
वही पानी हाय ! हो गये !
मौत नागहानी से किसी का कुछ चारा नहीं, छोड़ा यह जहाँ
आँजहानी हाय ! हो गये !
जिन 'प्रेमचन्द' की कहानी चली घर-घर
वही 'प्रेमचन्द' जी कहानी ! हाय हो गये !!

□

महाकवि निराला के प्रति

पिंगल के पञ्जे मे पड़ी थी छवि क्षीण हुई,
कविता को काले कारागृह से निकाला है।
कोई कहता है ऐसे गीत हैं प्रवहमान;
भर दिया वाणी का सुधारस से प्याला है।
मन में तरंग है, उमंग रंग-रंग की,
राग में किसी के बावला है, मतवाला है।
समझे न कोई पै सनेही मैंने समझा है;
कवि है, सुकवि है, महाकवि निराला है।

□

आचार्य द्विवेदी जी

एक ही भारती भक्त था भावुक, राष्ट्र की भाषा का सच्चा पयम्बर।
विज्ञता में विधि दूसरा था, तप, त्याग विराग में जैसे दिगम्बर।

बारह-बाँट किया अड़तीस ने, आ गया नन्दन आने का नम्बर ।
तूने दसों किया, तू भी उनीस, तो क्यों बनी थी तू इक्कीस दिसम्बर ।।
स्वत्व का तत्त्व महत्त्व बता कर जीवन-युद्ध में आन पै खेले ।
सम्पदा की परवा नहीं की, विपदाएँ सहीं, दुःख शान से झेले ।
क्या कहिये गुरुता उनकी, गुरु के गुरु हैं जिनके हुए चेले ।
मेले लगे जिन्हें देखने को सुरलोक गये वही हाय ! अकेले !!
सुरलोक में हैं, इस लोक में भी उनके यश की है पताका गड़ी ।
जनता को जगा गये, दे गये जोश, बता गये जीवन है जड़ी ।
वचनावली से वे 'सरस्वती' को हैं पिन्हा गये मोतियों की-सी लड़ी ।
उनके ही वियोग में रोती पड़ी जिनके बल से हुई हिन्दी 'खड़ी' ।।
जिसकी महावीरता "शंकर" जी ने सरस्वती के मिस से थी बखानी ।
जिसका वर पाके "गणेश" गणेश हुए थे प्रताप-ध्वजा फहरानी ।
जिसने कि पता दिया "मैथिली" का अब भी जिसकी न कहीं कोई सानी ।
जिसके बल से बढ़ा आगे "त्रिशूल", 'सनेही' वही हा ! विभूति विलानी ।।
सुध आती है तो फटता उर है, पहरों लगी अश्रु-झड़ी रहती है ।
उनके प्रिय व्यंग्य-विनोद को सोच के, शोक-घटा उमड़ी रहती है ।
लिखूँ भी तो दिखाऊँ-सुनाऊँ किसे, बस लेखनी मौन पड़ी रहती है ।
सुरलोक से प्रेरणा देंगे हमें, यही सामने आशा खड़ी रहती है ।।

□

पं० नाथूराम 'शंकर' शर्मा जी के प्रति

कहाँ सुकवि 'शंकर' सुमति, कहाँ सनेही अज्ञ ,
मेरी होगी धृष्टता होऊँ यदि न कृतज्ञ ।
श्रीमानों की श्री भला देगी क्या वह स्वाद,
लुत्फ़ मुझे जो दे रही धीमानों की दाद ।
होते बालक मुदित, यदि वृद्ध ठोंकते पीठ,
इससे अपने काम में होते हैं वे ढीठ ।
साहस मेरा फिर भला होता क्यों न दुचन्द,
मिलें मयूखें 'मित्र' की, बन्द रहे किमि मन्द ।
कृपा-कोर यों दीन पर हुई रावरी आज ;
करता दास प्रणाम है हे कवि कुल सिरताज !

□

सुकवि रसराज जी के प्रति

साधक भारती के चिर मौन सनेहियों के सरताज चले गये !
आगर थे रस-सागर थे, वही नागर जी महराज चले गये !
आना सभी को है शोक ! जिन्हे कल भी नही जाना था, आज चले गये !
सूना बनारस है, कहाँ ढारस, पारस हा ! रसराज चले गये !

□

हरिऔध जी

नाचती थी कल्पना-परियाँ जहाँ,
काल-गति से ढह गया वह सौध भी।
हाय ! वीणा वादिनी के वरद-पुत्र !
चल दिये सुरलोक को हरिऔध भी।

लेखनी मे काट था तलवार का,
वह गुणी थे जानते हर घाट थे।
भारती के लाल, भारत-भाल-श्री
'अवध हरि' हरिऔध कवि सम्राट् थे।

□

गुरुदेव रवीन्द्र जी

सहृदय-रसिक-सुकवि-सिरमौर हुए,
रम्य काव्य-रस रोम-रोम मे रमा गये।
ऐसी तान छेड़ी, गूँजी नीरधि के पार तक,
क्षीरधि-सी उज्ज्वल सुकीर्ति हैं कमा गये।
'विश्व-कवि' होके विश्व-प्रेम का पढाया पाठ,
रंग गुरुदेव ! देवगुरु का जमा गये।
आये थे अनन्त से अनन्त गुण गाते रहे,
अन्त में अनन्त हो अनन्त में समा गये।।

□

किताए तारीखे. वफ़ाते जनाब मखमूर साहब मरहूम

झालावाड़-नरेश

आह ! ऐ मखमूरे-उल्फत आह ऐ राजन्द्र सिंह,
आप अब उस जा हैं जो नज़दीक भी है दूर भी।
आप ऐसे अटल-पक्ष थे कि ग़म में आपके,
साहबे-दौलत हैं गिरियाँ, रोते हैं मज़दूर भी।
सीरतो मूरत में कोई था न सानी आपका,
इसके शाहिद थे दिले-रौशन रुखे पुरनूर भी।
आह ! क्या-क्या आरज़ूएँ, और क्या-क्या हसरतें,
ख़ाक होके कर गयीं मग़मूम भी रंजूर भी।
यूँ तो मेरी दास्ताने ग़म बहुत ही है तबील,
और अक्सर रहता हूँ रंजो अलम मे चूर भी।
जां-गुसल बेहद है लेकिन फ़िक्रे तारीख़े वफ़ात,
वाय ! ऐ किस्मत ! कि मैं लिखूं-ग़मे. मखमूर भी।

□

स्फुट काव्य

कृष्ण-जन्म

काली घटा उधर थी इधर राक्षसों का जोर,
दादुर उधर थे और इधर दम्भियों का शोर।
छाया था खौफ, चुप थे पपीहे, तो मौन मोर,
निकला गगन मे चन्द्र इधर बन्दीगृह की ओर।
फैला प्रकाश कंस-निकन्दन प्रकट हुए,
आनन्द-कन्द देवकीनन्दन प्रकट हुए।
कैसा अँधेरा घुप था, चमक चन्द्रिका उठी,
पानी थमा, हवा भी थमी, सिट-पिटा उठी।
दर्शन को ब्रह्म देव उठे, शारदा उठी,
खुल बेड़ी हथकड़ी पडी, जञ्जीर गा उठी।
दिल जालिमो के हिल उठे घबरा के रह गये,
दरवाजे बन्दि-धाम के, मुंह बाके रह गये।

□

अहिंसा की ढाल

मैं डरने का नही चमकती तलवारो से,
जञ्जीरो की जकड कठिन कारागारों से,
महा मत्त गजराज, घातकों की मारो से,
अगम सिन्धु से, और आग के अंगारों से।
श्री हरिनाम प्रसाद से दुख भी मुझको मोद है।
शय्या फूलो की बनी अग्नि-देव की गोद है॥
है असत्य संसार, मोह माया है छल है,
सत्य एक हरिनाम, भान होता प्रतिपल है।
मुझे सत्य पर प्रेम और विश्वास अटल है,
यह निराश की आश, यही निर्बल का बल है।
मैं विचलित हूँगा नही, व्यर्थ काल की चाल है।
करे वार पर-वार वह, यहाँ अहिंसा ढाल है॥

□

सहृदय

देख पर-दुःख चल पड़ें आँसू
अश्रु देखे, निकल पड़े आँसू
आर्द्र जी डूब, वज्र-हृदयों के
पल में ऐसे उबल पड़े आँसू।

चित्त रहता सदा सदय जिनका
और करुणा-जगत् निलय जिनका
प्रेम की आँच से पिघलता है
मोम ही की तरह हृदय जिनका।

चोट खाये हुए हृदय की 'हाय'
बाण की भाँति वेध जिनको जाय
दें अभय जो भयार्त्त को निर्भय
वह हृदयवान् है, वही सहृदय।

□

लोक-सेवा

जिया क्या जो अपने हित जिया!
सूर्य को तप से कौन सुपास,
रत्न क्यों रखती वसुधा पास,
सूँघते हैं कब सुमन सुवास,
चरी कब मैदानों ने घास,
दूध निज कब माँओं ने पिया,
जिया क्या जो अपने हित जिया॥

अमर है शिवि-दधीचि का नाम,
क्योंकि वह पर-हित आये काम,
राम जन-सेवा से हैं राम,
रहे भूधर थामे घनश्याम,
लोक-रक्षा हित क्या-क्या किया,
जिया क्या जो अपने हित जिया॥

न जाने जूझे कितने वीर।
लिये अपनी छाती पर तीर,
किन्तु मन हुआ न कभी अधीर,
देश-हित अर्पित किया शरीर,
मिली जय या फिर सुरपुर लिया,
जिया क्या जो अपने हित जिया ॥

न नयनो से परदोष निहार,
"सनेही" दुखिया पर मन वार,
प्यार कर तो पायेगा प्यार,
सार सेवा असार संसार,
मन्त्र मोहन, मोहन ने दिया,
जिया क्या जो अपने हित जिया ॥

□

खोया हुआ हृदय

हाय ! वह आशाओं का केन्द्र,
हन्त ! वह जीवन-सरिता स्रोत।
आह ! वह अरमानो का मान,
भावना-सागर का वह पोत।
कहीं क्या डूबा मेरा हृदय ?

नहीं मिलता है कुछ भी पता,
न जाने कहाँ गया किस ओर ?
किसी निर्दय ने कुचला उसे
ले उड़ा या कोई चितचोर ?
खोज दे कोई प्यारा हृदय ?

हाय ! मेरा धन, मेरा लाल,
सजग जो रहता था दिन-रात।
लगाये छाती से मैं रहा,
हाय ! यह कैसा है उत्पात ?
चुराया किसने मेरा हृदय ?

पौष-मार्गशीर्ष : शक १८०४]

कामनाओं का कानन-कलित,
वासनाओ का विमल वसन्त।
क्षुद्र होते भी परम विशाल,
हरे! वह सीमा सहित अनन्त।
कहाँ खो गया दुलारा हृदय?
बह रही है जिसमे रसधार,
दामिनी का है दिव्य प्रकाश।
बाल-रवि का-सा जिसका रूप,
समाता है जिसमे आकाश।
किसी ने देखा मेरा हृदय?

□

अच्छे दिन आने वाले हैं

जब दुख पर दुख हों झेल रहे, वैरी हो पापड बेल रहे,
हो दिन ज्यो-त्यों कर ढेल रहे, बाकी न किसी से मेल रहे,
तो अपने जी में यह समझो,
दिन अच्छे आने वाले हैं।
जब पडा विपद् का डेरा हो, दुर्घटनाओ ने घेरा हो,
काली निशि हो, न सबेरा हो, उर मे दुख-दैन्य बसेरा हो,
तो अपने जी मे यह समझो,
दिन अच्छे आने वाले हैं।
जब मन रह-रह घबराता हो, क्षण भर भी शान्ति न पाता हो,
हरदम दम घुटता जाता हो, जुड रहा मृत्यु से नाता हो,
तो अपने जी मे यह समझो,
दिन अच्छे आने वाले हैं।
जब निन्दक निन्दा करते हों, द्वेषी कुढ़-कुढ कर मरते हो,
साथी मन-ही-मन डरते हो, परिजन हो रुष्ट बिफरते हों,
तो अपने जी मे यह समझो,
दिन अच्छे आने वाले हैं।
बीतती रात दिन आता है, यों ही दुख-सुख का नाता है,
सब समय एक-सा जाता है, जब दुर्दिन तुम्हे सताता है,
तो अपने जी में यह समझो,
दिन अच्छे आने वाले हैं।

□

वोट का भिखारी

नहीं कर कहीं, मत लगा चोट देना,
न यों मित्रता का गला घोट देना,
निराशा नदी के लिए वोट देना,
दया दान में बस यही नोट देना,
हमें वोट देना ! हमें वोट देना !१
नहीं हित किया तो अहित क्या किया है,
न मैंने कभी घूस मे कुछ लिया है,
किसी को अकारण नहीं दुख दिया है,
अमृत शान्ति का ही निरन्तर पिया है,
हमे वोट देना ! हमे वोट देना !२
पुरानी मुहब्बत हमारी-तुम्हारी,
नहीं व्यर्थ ही मित्रता और यारी,
तुम्हे हो न मञ्जूर ज़िल्लत हमारी,
दिखाता न हो ग्लानि का दुख भारी,
हमे वोट देना ! हमे वोट देना !३
तुम्हारी सभी लाञ्छनाएँ सहूँगा,
समय पर तुम्हारा सदा साथ दूँगा,
अहंकार का नाम भी मैं न लूँगा,
खुदा की कसम अब न जी हाँ कहूँगा,
हमे वोट देना ! हमें वोट देना !४
न हों ग्रेजुएट अक्ल तो है नहीं कम,
ग़लत है कि हम मे नहीं है ज़रा दम,
महाजन है हम, एक ही सेठ हैं हम,
हमारा अदब मानता है एक आलम,
हमें वोट देना ! हमे वोट देना !५
न तोड़ो पुरानी मुरौवत मुहब्बत,
है नित एक को दूसरे की ज़रूरत,
विदेशी से मिलने की है जो अलामत,
तो है आज से बन्द साहब सलामत,
हमें वोट देना ! हमे वोट देना !६

□

हिन्दू पताका

लहरा-लहरा कर नयी लहर लहराती।
जब आर्य-पताका फहर-फहर फहराती ।।
अंकित है ओऽम् दिनेश तुल्य तम हरता।
स्वस्तिका-चिह्न कल्याण विश्व का करता।
चल जाय न कहीं कृपाण दुष्ट-दल डरता।
है अग्नि-वर्ण में छिपी अजेय अमरता।
साहस बढ़ता सौगुनी वीरता आती।
जब आर्य-पताका फहर-फहर फहराती ।।
ज्यों-ज्यों उड़ती यह वायु-वेग से "फर-फर।"
त्यों-त्यों होता है समर-घोष 'बम हर हर'।
यह भारत-भूमि को प्राण पुजी है घर-घर।
इसको हैं ऊँचा किये 'वीर सावरकर'।
उर-उर में है स्वातंत्र्य-अनल दहकाती।
जब आर्य-पताका फहर-फहर फहराती ।।
दर्शन ही से अघ-ओघ शमन होते हैं।
द्रोही दबते है, दनुज दमन होते हैं।
झञ्झा के झोंके मन्द पवन होते हैं।
उड़ते ही शोभित भव्य भवन होते हैं।
उड़ती बस्ती भी इन्द्रपुरी बन जाती।
जब आर्य-पताका फहर-फहर फहराती ।।
इसका शताब्दियों रहा जगत् में साका।
है एक रंग मे रँगी स्वराष्ट्र-पताका।
है गौरव इसको प्राप्त ज्ञान-गरिमा का।
वह हुआ धन्य जिसने कि प्रेम से ताका।
यह स्वर्ग-नसेनी सत्य धर्म की थाती।
जब आर्य-पताका फहर-फहर फहराती ।।
प्रतिपक्षी हैं प्रण छोड़-छोड़ कर भागे।
ली हार मान, मुँह मोड़-मोड़ कर भागे।
भागे न बचे जी तोड़-तोड़ कर भागे।
मानो बद-बद कर होड़, होड़ कर भागे।
यह है जाती जिस ओर विजय है पाती।
जब आर्य-पताका फहर-फहर फहराती ।।

इसकी छाया मे गले मिले सब भाई।
हैं एक विटप के सुमन खिले सब भाई।
हो एक प्रेम का सूत्र सिले सब भाई।
अरि के न हिलाये हिलें, हिले सब भाई।
है अखण्डता के गीत भारती गाती।
जब आर्य-पताका फहर-फहर फहराती।
हिन्दू हैं हम सब हिन्द देश के वासी।
तलवार हमारी शत्रु रक्त की प्यासी।
क्या हमे काल की भीत, मृत्यु है दासी।
हम आत्मनिष्ठ है परम आत्म विश्वासी।
ऊँची उठकर सद्भाव सुरों से लाती।
जब आर्य-पताका फहर-फहर फहराती।

□

बबूल

प्यारी उस बबूल की छाया
जिसने सोने के फूलो से
और रजत रञ्जित शूलों से
मरकत मणिमय मृदुल दलों से
सुरतरु वैभव पाया।।
जिसके तले प्रेम दीवाने
गाते मत्त प्रणय के गाने
कितनी सुस्मृतियों को उसने
उर मे हाय! जगाया।।
पाया ठौर नहीं उपवन में
पागल-सा वह रहा विजन मे
माली कहाँ समीप?
'सनेही' पागल पंथी पाया।।
ऊसर में यों पलना सीखा
जाने किससे जलना सीखा
रस बरसाने की जब बेला
तब वह गया जलाया

□

शिशु

कमल-से हैं कोमल सब अंग,
और उससे कोमलतर हृदय।
मनोमोहक गुलाब-सा रंग,
प्राप्त करता सुमनों पर विजय।
तुम्हारा सरल मन्द मृदु हास,
सीख कर कुन्द कली खिल रहीं।
परिजनों के लोचन हैं तृप्त,
सुधा की बूंदें हैं मिल रहीं।
सरलता शुचिता की प्रतिमूर्त्ति,
देवगण तुम पर छाया किये।
आह ! तुम नन्दन वन को छोड,
यहाँ पर आये हो किस लिये ?
परम कोमल तुम जगत् कठोर.
सरल तुम यहाँ कपट का जोर।
झूठ, चालाकी चारो ओर,
और तुम हो सद्भाव विभोर।
तुम्हें रक्षित रक्खे भगवान्,
कहाँ आ पडे यहाँ अनजान ।।

□

तकली

नाच रही है प्यारी तकली,
नाजुक-बदन फूल-सी हल्की।
बहुत नहीं है चौडी-चकली,
पोनी से रिश्ता जोड़ा है।
प्रीति नहीं है इसकी नकली,
तार-तार से मिला रही है।
अपना उसकी रग-रग तक ली,
ऐंठा सूत बहुत जब इससे।
व्यर्थ चक्करों से जब थक ली,
पलट पडी सीधा करने को।

सड़क सत्य-आग्रह की तक ली,
गांधी जी के हाथों पड़ कर।
इसने अद्भुत चमक-दमक ली,
जब जल गये विदेशी कपड़े।
भारत लज्जा इसने ढंक ली,
नाच रही है प्यारी तकली।

□

सन्ध्या

पश्चिम दिशा रक्त-रञ्जित है,
क्रूर काल ने किया प्रहार।
धीरे-धीरे शान्त हो चला,
वन विहगों का हाहाकार।।
दिनपति डूबे रुधिर-नदी मे,
जीवन प्याला छलक पड़ा।
अश्रु-बुन्द माला-सा नभ मे
तारक दल है झलक पड़ा।।
ओस-कणो से निशा-मही पर,
मोती-से बोती आती।
जीवन की अस्थिरता पर वह,
मानो है रोती आती।।
आतंकित है हृदय विश्व के,
पवन देव भी मन्द हुए।
मूर्च्छित-से दल हुए और—
शतदल के भी दल बन्द हुए।।
देख न सका दृश्य यह भीषण,
मैंने भी की आँखें बन्द।
जगत्-नियन्ता के चरणो मे,
मिलने लगा मुझे आनन्द।।

□

बादल

(अतुकान्त)

चले कहाँ से और जा रहे हो कहाँ ?
किसे ढूँढ़ते-फिरते नभ में घूम कर ?
प्रिया दामिनी जबकि तुम्हारे साथ है,
तो बतलाओ अब फिर किसकी चाह है ?
धीमी गति है कभी, कभी है तीव्र गति,
बेचैनी का क्या कारण है ? कहो तो !
क्या मोरों को दुःखी देखकर विकल हो ?
जिनको रहती सदा तुम्हारी लौ लगी,
या जीवो को तृषित देख उमड़ा हृदय,
बेचारो की प्यास बुझाने तुम चले ?
कातर होते सुजन दुखी को देखकर,
इसलिए क्या आँसू हो बरसा रहे ?
काले, उज्ज्वल, पीत, लाल, नीले, हरे,
धारण करते तुम तो नाना रग हो,
बहुरङ्गी दिखा जगत् का लोक को,
हो जाते फिर तुम अनन्त मे लीन हो ।
धुरवा है या धवल पताका उड़ रही,
इन्द्रधनुष ले चले दिग्विजय के लिए ?
उपकारी हो विजय तुम्हारी हो चुकी,
सकल जगत् के जीव हैं तुम्हारे ऋणी ।
पाया तुमने हृदयो पर अधिकार है,
नही विजय है और कही इससे बड़ी ।
तब छाया है कभी नही सुस्थिर रही,
मिट जाती है मानव जीवन की तरह ।
जो आते ही इधर-उधर चलता बना,
जिस पर मोहित हुए यहाँ तक लोग हैं,
क्षणभंगुर को नित्य समझ कर मुग्ध हैं,
यद्यपि विद्युत्-से देते संकेत हो ।
देखो चातक हैं तुमसे क्या चाहते ?
पीव-पीव की धुन है उनको लग रही ।

कूप, बावली, नदी, सरोवर छोड़कर,
किया उन्होंने एक तुम्हारा आसरा,
दो, करुणा करके इन्हें दो बूँद दो।
लुटे अशरफी और मुहर कोयलों पर।
करते हो किसलिये परम गुरु गर्जना ?
किस पर हो यों कुपित बरसते उपल क्यों ?
मैं पृथ्वी पर आसमान पर तुम चढ़े,
मुझसे क्यों तुम बात मर्म की कहोगे !
महज्जनों का भेद शीघ्र खुलता नहीं।
यही सोच कर मैं भी होता मौन हूँ॥

□

भक्त की अभिलाषा

तू है गगन विस्तीर्ण तो मैं एक तारा क्षुद्र हूँ,
तू है महासागर अगम मैं एक धारा क्षुद्र हूँ।
तू है महानद तुल्य तो मैं एक बूँद समान हूँ,
तू है मनोहर गीत तो मैं एक उसकी तान हूँ॥१
तू है सुखद ऋतुराज तो मैं एक छोटा फूल हूँ,
तू है अगर दक्षिण पवन तो मैं कुसुम की धूल हूँ।
तू है सरोवर अमल तो मै एक उसका मीन हूँ।
तू है पिता तो पुत्र मैं तव अंक में आसीन हूँ॥२
तू अगर सर्वाधार है तो एक मैं आधेय हूँ,
आश्रय मुझे है एक तेरा श्रेय या आश्रेय हूँ।
तू है अगर सर्वेश तो मैं एक तेरा दास हूँ,
तुझको नहीं मैं भूलता हूँ, दूर हूँ या पास हूँ॥३
तू है पतित-पावन प्रकट तो मैं पतित मशहूर हूँ,
छल से तुझे यदि है घृणा तो मैं कपट से दूर हूँ।
है भक्ति की यदि भूख तुझको तो मुझे तव भक्ति है,
अति प्रीति है तेरे पदों में, प्रेम है, आसक्ति है॥४
तू है दया का सिन्धु तो मैं भी दया का पात्र हूँ,
करुणेश तू है चाहता, मैं नाथ करुणामात्र हूँ।
तू दीनबन्धु प्रसिद्ध है, मैं दीन से भी दीन हूँ,
तू नाथ ! नाथ अनाथ का, असहाय मैं प्रभु-हीन हूँ॥५

पौष-मार्गशीर्ष : शक १६०४]

तव चरण अशरण-शरण हैं, मुझको शरण की चाह है,
तू शीत करता दग्ध को, मेरे हृदय में दाह है।
तू है शरद्-राका-शशी, मम चित्त चारु चकोर है,
तव ओट तज कर देखता यह और की कब ओर है ॥६

हृदयेश ! अब तेरे लिये है हृदय व्याकुल हो रहा,
आ आ ! इधर आ ! शीघ्र आ ! यह शोर यह गुल हो रहा।
यह चित्त-चातक है तृषित, कर शान्त करुणा-वारि से।
घनश्याम ! तेरी रट लगी आठो पहर है अब इसे ॥७

तू जानता मन की दशा रखता न तुझसे बीच हूँ,
जो कुछ भी हूँ तेरा किया हूँ उच्च हूँ या नीच हूँ।
अपना मुझे, अपना समझ, तपना न अब मुझको पड़े,
तज कर तुझे यह दास जाकर द्वार पर किसके अड़े ॥८

तू है दिवाकर तो कमल मैं, जलद तू, मैं मोर हूँ,
सब भावनाएँ छोड़ कर अब कर रहा यह शोर हूँ।
मुझमे समा जा इस तरह तन-प्राण का जो तौर है,
जिसमें न फिर कोई कहे, मैं और हूँ तू और है ॥९

□

प्रेम-पथिक

ओ प्रणय जगत् के शहंशाह !!
यह प्रेम ! और ऐसा निबाह।
बस रही प्रियतमा पर निगाह।
सुरपति-वैभव की न की चाह।
कोई कहता है आह-आह !
कोई कहता है वाह-वाह !!
ओ प्रणय जगत् के शहंशाह ॥

कुछ हुआ चित्त ऐसा उचाट।
छोड़ा बिराट् यह राज-पाट।
छोड़ा शाहाना ठाट-बाट।
जाने आ उतरा कौन घाट।
तव हृदय अगम जलनिधि अथाह।
ओ प्रणय जगत् के शहंशाह ॥

तू धीर, वीर तू है गँभीर।
किसके उर में वह हीर-पीर।
तू दीनबन्धु, तू है अमीर।
है प्रजा बिना तेरे अधीर।
उसको न बताया कुछ गुनाह।
ओ प्रणय जगत् के शाहंशाह॥

था जहाँगीर ने किया प्यार।
वह नूरजहाँ पर था निसार।
पाया उसको फिर किस प्रकार?
वह प्यार हुआ या बलात्कार
इतिहास अभी तक है गवाह॥
ओ प्रणय जगत् के शहंशाह॥

सीता-सी छोड़ी सती बाम, पर सिंहासन पर रहे राम।
तूने अपूर्व वह किया काम, हो गया जगत् मे अमर नाम॥
है प्रेम नगर की यही राह।
ओ प्रणय जगत् के शहंशाह॥

□

अछूत

सेवक अगर अछूत न होते।
कैसे आप अछूते रहते
किसी तरह तो पूत न होते।
सेवक अगर अछूत न होते॥

भर जाता घर-घर पाखाना,
सिर पर पड़ता तुम्हें उठाना।
मृतक ढोर भी ढोने पड़ते,
बहते रहते घिन के सोते।
सेवक अगर अछूत न होते॥

सकल राज-पथ गन्दे होते,
कौन उठाता, चन्दे होते?
गाँव-गाँव में महामारियाँ होतीं, लोग भाग्य को रोते।
सेवक अगर अछूत न होते॥

इनको छूने से डरते हो,
स्वयं कर्म क्या-क्या करते हो ?
अपना स्वजनों का भी यों ही क्या मल-मूत्र नहीं तुम धोते ?
सेवक अगर अछूत न होते ।।

द्विज ! तुम देव-दूत कैसे हो ?
कहते हमें भूत कैसे हो ?
नेकी का बदला बद देते, कार्य-क्षेत्र में हो विष बोते ।
सेवक अगर अछूत न होते ।।

□

हिन्दी

अच्छी हिन्दी ! प्यारी हिन्दी !
हम तुझ पर बलिहारी ! हिन्दी !!
सुन्दर स्वच्छ सँवारी हिन्दी ।
सरल सुबोध सुधारी हिन्दी ।
हिन्दी की हितकारी हिन्दी ।
जीवन-ज्योति हमारी हिन्दी ।
अच्छी हिन्दी ! प्यारी हिन्दी !
हम तुझ पर बलिहारी हिन्दी !!

तुलसी सूर कबीर बनाये
भारतेन्दु तूने उपजाये,
महावीर तेरे मन भाये,
राष्ट्र-भाव-भूषण पहनाये ।
अच्छी हिन्दी ! प्यारी हिन्दी !
हम तुझ पर बलिहारी हिन्दी !!

महा मधुर है, मधु-सानी है,
नहीं सरलता में सानी है,
तू ही हमें देव-बानी है,
तू भाषाओं की रानी है ।
अच्छी हिन्दी ! प्यारी हिन्दी !
हम तुझ पर बलिहारी हिन्दी !!

साधन एक, एक आशा है,
भारत की तू अभिलाषा है;
तू ही एक राष्ट्रभाषा है,
बस यह तेरी परिभाषा है।
अच्छी हिन्दी! प्यारी हिन्दी!
हम तुझ पर बलिहारी हिन्दी!!

□

दुखिया जीवन

कर और सहन, कर और सहन।
हा! हा!! तेरा दुखिया जीवन॥
ठण्डी आहें अविरल क्रन्दन,
तन जर्जर है, मन है अनमन।
तू निस्सहाय निर्बल निर्धन,
सुख-आशा आशा पागलपन॥
दुर्दैव सदा तेरा दुश्मन,
किससे है तेरा अपनापन।
घिरते रहते विपदा के घन,
चलती है दुख-झञ्झा सन-सन॥१
जीवन है या काँटों का वन,
पद-पद पर एक नयी उलझन।
दारुण विधि का है यह बन्धन,
पड़ती है अड़चन-पै-अड़चन॥
कर और सहन, कर और सहन।
हा! हा!! तेरा दुखिया जीवन॥२
श्रम-ही-श्रम है विश्राम नहीं,
है कहीं शान्ति का नाम नहीं।
किस घड़ी काम से काम नहीं,
हाँ नहीं अवर, आराम नहीं॥
जीवन की तुझमें चाह नहीं,
मन में उमंग उत्साह नहीं।
क्लेशों की तेरे थाह नहीं,
कोई उपाय भी आह! नहीं!!

दुनिया में तुझ-सा दीन नहीं,
यों कोई तेरह-तीन नहीं।
इतना कोई ग़मगीन नहीं,
तू हेय नहीं, तू हीन नहीं॥
कर और सहन, कर और सहन।
हा! हा!! तेरा दुखिया जीवन॥३

जो स्वार्थी तुझको घेरे हैं,
वे वञ्चक वधिक लुटेरे हैं।
फिरते दिन अपने फेरे हैं,
दिन फिरने वाले तेरे हैं॥
रोते रहते जो रोते हैं,
सोते रहते जो सोते हैं।
हाँ होनहार जो होते हैं,
साहस वे कभी न खोते हैं।
आयी विपदाएँ टलती हैं,
क्या सदा किसी को खलती हैं,
पर चालें सदा न चलती हैं॥
कर और सहन, कर और सहन।
हा! हा!! तेरा दुखिया जीवन॥४

□

माँ की गोद

कहाँ वह मेरा गरुड़ासन,
और वह कहाँ तख्त-ताऊस।
कहाँ वह जीवित विद्युत्-युक्त,
कहाँ निष्प्राण रत्न मनहूस।
प्रेम-सिंहासन माँ की गोद॥

कमल-सी कोमल माखन-मृदुल,
मधुरता का तो मानो कोष।
प्यार की थपकी, लोरी-गान,
और वह प्रबल प्रेम निर्दोष।
नहीं क्या देती माँ की गोद॥

निकट ही भरे सुधा-घट धरे ;
निकलती जिनसे मधु की धार।
धन्य ! यह पूर्ण प्रेम-योजना ,
धन्य कर्त्तार ! धन्य कर्त्तार।
पुण्य शय्या-सी माँ की गोद ॥
विश्व की भूला सारी भ्रान्ति ,
मौन सुख की साँसें ले रहा।
पा रहा माँ से जीवन नवल ,
और उसको जीवन दे रहा।
पुण्य फल-सी है माँ की गोद ॥
खींच कर धरा प्रेम का सार ,
भरा भरपूर प्यार-ही-प्यार।
और फिर लिया स्वयम् अवतार ,
स्वर्ग-सा रचने को संसार।
उसी की कृति है माँ की गोद ॥

□

मृत्यु से

इसीलिए क्या दुखित देश में तूने डाला डेरा !
इस जग में पीड़ित प्राणी को एक सहारा तेरा !!

जब यह तन जर्जर हो जाता ,
शक्ति क्षीण हो जाती,
होती हैं इन्द्रियाँ शिथिल ,
मुख-द्युति मलीन हो जाती।
आत्मा आकुल हो उठती है ,
दशा दीन हो जाती ,
तू कर देती बिदा और वह
फिर नवीन हो जाती।
कौन वेदना इतनी हरता करती अगर न फेरा।
इस जग में पीड़ित प्राणी को एक सहारा तेरा ॥

अन्न नहीं, धन नहीं, क्षुधा की -
ज्वाला महा प्रबल है,

रुधिर-मांस जल चुके, जल चुका -
आँखों का भी जल है।
प्रति पल है पहाड़-सा कटता,
प्राणों में हलचल है,
भागें भी, तो जायें कहाँ फिर;
किसमे इतना बल है?
मुक्त व्यथा से करती है तू तोड़ मोह का घेरा।
इस जग में पीडित प्राणों को एक सहारा तेरा॥

होता रुग्ण शरीर व्याधि का -
मन्दिर बन जाता है,
जाने कहाँ-कहाँ, किस-किस विधि,
व्याकुल मन जाता है।
कहते वैद्य "कठिन बचना है,
अब जीवन जाता है",
सम्बन्धी सर पीट रहे हैं,
जीवनधन जाता है।
सुनती नही किसी की, करती है तू विपद-सबेरा।
इस जग में पीडित प्राणों को एक सहारा तेरा॥

होती अगर न तू दुनिया में,
कैसी दुर्गति होती,
जीवन-वृत्त चला ही करता,
कहीं नही यति होती।
इस अनन्त-यात्रा में, जाने -
फिर कैसी मति होती -
और भावना कैसी-कैसी,
बन्धु-बन्धु प्रति होती।
जाने कृत्य कौन-सा करता इस जीवन का चेरा।
इस जग में पीडित प्राणों को एक सहारा तेरा॥

□

दहेज की कुप्रथा

पत्थर-से दिल हुए हमारे नहीं पिघलते ।
कन्याएँ थक रहीं आग में जलते-जलते ।।
शुष्क-हृदय हैं हाय ! अश्रु भी नहीं निकलते ।
हम ऐसे खल हुए, नहीं ऐसे दुख खलते ।।
पाती पावन प्रेम-पाथ प्यारे फल फलतीं ।
क्यों वनाग्नि में स्नेहलता-सी बेलें जलतीं ।।१

यह दहेज की आग सुवशो ने दहकाई ।
प्रलय-वह्नि-सी वही आज चारों दिशि छाई ।।
घर उजाड़ वन बना रही, कर रही सफाई ।
ताप रहे हम मुदित, समझते होली आई ।।
खबर न इसकी हमें खूब ही धूल उड़ेगी ।
विकट लपट कर भस्म हमें आमूल उड़ेगी ।।२

स्वत्व-स्वत्व चिल्लायें न घर हम अपना देखें ।
रहें झोपड़ी-मध्य महल का सपना देखें ।।
वज्र-हृदय हो जायें न द्रवें, विलपना देखें ।
कन्याओं का ताप-पुञ्ज में तपना देखें ।।
हों असभ्य या सभ्य, कहीं यों अधम न होंगे ।
महा दुष्ट हों, किन्तु, नहीं, यों अधम न होंगे ।।३

शिक्षित भी बन गये, सभ्य भी हैं कहलाते ।
बने सुधारक कभी सभापति भी बन जाते ।।
करते हुए कुकृत्य नहीं जी में शरमाते ।
हो जो पुत्र-विवाह हजारों ही ठहराते ।।
मिले मुनासिब मोल, तभी होते हैं राजी ।
तुर्की कोई पुत्र बना, कोई है ताजी ।।४

धन्य-धन्य है धन्य परस्पर नाता ऐसा ।
और देश में प्रेम-पन्थ कब भाता ऐसा ।।
बिना चले व्यवहार खोलकर खाता ऐसा ।
किससे यों कुल-नियम निबाहा जाता ऐसा ?
शक्ति और तो हाय ! न, हम में खाक रही है ।
कटती जिससे नाक, उसी में नाक रही है ।।५

पौष-मार्गशीर्ष : शक १९०४]

अड़ी कहाँ इस दुष्ट प्रथा की टाँग नही है !
द्रव्य छोड़कर और गुणो की माँग नही है ।।
घर का है यह हाल कि भूनी भाँग नही है ।
"आर्म्स ऐक्ट" से हाय ! घरों मे साग नही है ।।
पति से मिलता नही उसी से मिलता सीना ।
कन्याओं का हाय ! न होता दूभर जीना ।।६

कहते हैं सब लोग—"जवानी दीवानी है ।"
देखें क्या-क्या हाय ! व्यथा सर पर आनी है ।।
अन्धी इसमें नही न तो कोई कानी है ।
फिर भी दुष्ट दहेज-प्रथा से हैरानी है ।
दीनबन्धु ! अब एक आसरा रहा तुम्हारा ।
कर दो हा-हा नाथ ! किसी विधि से निपटारा ।।७

या तो करके कृपा कुलीनो मे कन्यायें—
दयासिन्धु दुखदलन यहाँ पर मत जन्मायें ।।
जन्में तो दो-चार वर्ष ही मे मर जायें ।
सहने को यों व्यथा जवान न होने पायें ।।
या युवको के चित्त-मध्य यह बात बिठा दें ।
वे दहेज की महा घणित दुष्प्रथा मिटा दें ।।८

□

सान्ध्य तारा

अन्धकार-आक्रमण देखकर ,
छोटा एक सितारा—
चमक उठा, था क्षुद्र किन्तु
वह वीर न हिम्मत हारा ।
कहाँ विश्वव्यापी तम निशि का ,
प्रतिपल जो बढ़ता था ,
और कहाँ वह जुगनू-सा—
लघु क्षीणकाय बेचारा ।
तेजस्वी कब परवा करते
शत्रु सामने पाकर ,

तिरछी बरछी छोड़ी उसने
चमकी भू पर आकर।
थकित अधीर भ्रान्त पथिकों को
उसने दिया दिलासा,
छोड़ दिया फिर उन्हें राह पर
सीधी राह दिखाकर।
उसका साहस देख-देखकर
अगणित संगी आये,
अपने कर में लिये सभी
तलवारें नंगी आये।
छिन्न-भिन्न तम-राज हो रहा
रोयी रजनी रानी,
रोशन हुए लोक के लोचन,
जब रणरंगी आये।
साहस करो बढ़ो तो आगे
साथी बहुत मिलेंगे,
कैसे ही हो सबल शत्रुगण
उनके हृदय हिलेंगे।
प्रबल विरोधी सम्मुख आये
तो मत मुरझा जाओ,
पौरुष दिखलाओ, देखो फिर
दिल के कमल खिलेंगे॥

□

मेरी कविता

भाई ! मेरी कविता क्या है ?
जो जुगनू पर ही रीझे हों,
उनके सम्मुख सविता क्या है ?
भाई ! मेरी कविता क्या है॥

मैं अनन्त के निकट न पहुंचा,
गगन-सुमन मैं तोड़ न पाया।

पौष-मार्गशीर्ष : शक १८०४]

विकट अश्रु-सागर उमड़ाकर,
लगा प्रलय से होड़ न पाया ।।
भाई ! मेरी कविता क्या है ?
सुना न सका भग्न वीणा से,
मैं रसिकों को मधु-झकारें ।
कर न सका प्रियतम-सजनी की,
रस-वश हो जी भर मनुहारें ।
भाई ! मेरी कविता क्या है ?
खेली कभी न आँख-मिचौनी,
मैंने तारा-तारा पति से ।
उच्छृंखल हो उछल न पाया,
पिण्ड नहीं छूटा यति-गति से ।।
भाई ! मेरी कविता क्या है ?
छोड़ न सका रसा का अञ्चल,
बन न सका मैं व्योम-बिहारी ।
और न जूठे प्यालों पर मैं,
हुआ 'त्रिशूल' कभी बलिहारी ।।
भाई ! मेरी कविता क्या है ?

□

कवि

कवि है मानस-चित्रकार है,
तो मत अपनी आँखें मीच ।
खिंच जायें जो हृदय-पटल पर,
भाव-चित्र तू ऐसे खींच ।।
प्रकृति रंग-शाला यह तुझको,
क्या-क्या रंग दिखाती है ।
जाती है छवि एक, दूसरी—
छवि समक्ष आ जाती है ।।
तू मधु ऋतु में मत्त, देश में-
शिशिर पड़ रहा पाला है ।
छेड़ रहा बेसुरा राग,
तू भी कैसा बेताला है ।।

सूख रही सद्भाव-वाटिका,
रसिक-हृदय तू इसको सींच।
कवि है मानस-चित्रकार है,
तो मत अपनी आँखें मींच ॥१

बहुत हो चुकीं विरह-वेदना,
और प्रतीक्षा की बातें।
नयन-बाण चल चुके, चल चुकी-
बहुत प्रेम की भी घातें॥

कब तक मन काल्पनिक स्वर्ग के
स्वप्नो मे बहलायेगा।
कब तक हाय! अश्रु-धारा से
वसुन्धरा नहलायेगा॥

उठ-उठ उठा, सुप्त मित्रों को,
कीच उलीच न उन पर नीच।
कवि है मानस-चित्रकार है,
तो मत अपनी आँखे मीच ॥२

□

परिचय

मैं जान गया! मैं जान गया!!
पहचान गया! पहचान गया!!

तुम मेरे दिल मे रहते हो,
शामिल मुश्किल में रहते हो!
तुम हर महफिल में रहते हो!
तुम हर मन्जिल मे रहते हो!!
मैं जान गया! मैं जान गया!!
पहचान गया! पहचान गया!!

हो धर्म तुम्हीं, ईमान तुम्हीं,
इस जीवन की हो जान तुम्ही!
करते हो प्रान प्रदान तुम्हीं!
फिर ले लेते हो प्रान तुम्हीं!
मैं जान गया! मैं जान गया!!
पहचान गया! पहचान गया!!

पौष-मार्गशीर्ष : शक १६०४]

तुम दीन दलित की आहो मे !
पीड़ित की करुण-कराहों में !
प्रियतम की प्रियतम चाहो मे ,
आनन्दो मे उत्साहों मे !!
मैं जान गया ! मैं जान गया !!
पहचान गया ! पहचान गया !!

तुम परम 'सनेही' बहुरंगी ,
होकर अनंग भी हो अंगी !
दुखिया दिल के सुन्दर संगी ,
तुम संगी तो फिर क्या तंगी !!
मैं जान गया ! मैं जान गया !!
पहचान गया ! पहचान गया !!

□

जीवन-प्राण

मेरे जीवन-प्रान ,
सनेही !
मेरे जीवन-प्रान !
जिनकी छवि से जग छविमय है ,
एक-एक कण शशि-रश्मिमय है ।
भ्रू-विलास से सृजन-प्रलय है ,
जिनकी सहृदय दृष्टि सदय है ।
देती वर-वरदान ,
सनेही !
मेरे जीवन-प्रान ॥१

मेरे जीवन प्रान ,
सनेही !
मेरे जीवन-प्रान !!
बिना मनाये मन जाते हैं ,
वे प्रतिपल जीवन जाते हैं ।
चरण-शरण जब जन जाते हैं ,
प्यादे बिन वाहन जाते हैं ॥

करते उसका मान,
सनेही !
मेरे जीवन-प्रान !!२
मेरे जीवन-प्रान,
सनेही !
मेरे जीवन-प्रान !

जो जीवों को नाच नचाते,
स्वयं नाचते भी आ जाते !
मोहक रूप धरे प्रिय आते,
भक्ति भाव पाते अपनाते।
देकर अपना मान,
सनेही !
मेरे जीवन-प्रान !!३
मेरे जीवन-प्रान,
सनेही !
मेरे जीवन-प्रान !

उनका सदा ध्यान धरता हूँ,
जब मरता उन पर मरता हूँ।
सगी वह कुछ भी करता हूँ,
रूठ न जायँ कहीं डरता हूँ।
बैठे करके मान,
सनेही !
मेरे जीवन-प्रान !
मेरे जीवन प्रान,
सनेही !
मेरे जीवन-प्रान !!४

□

प्रेम-पथिक

इधर सँभलकर पग रखना,
ओ प्रेम-पथिक मतवाले !
मग मे पग-पग पर ठग बैठे,
अपना पाश सँभाले ॥
इधर सँभलकर पग रखना,
ओ प्रेम-पथिक मतवाले !!

पौष-मार्गशीर्ष : शक १९०४]

तू दीवाना तू सौदाई,
लुट जायेगी पुण्य-कमाई।
मारेंगे तुझको बिन आई?
तेरा गला दबाने को हैं,
हाथ गले में डाले।
इधर सँभलकर पग रखना,
ओ प्रेम-पथिक मतवाले!

प्रेम, स्वार्थ मे प्रेम कहाँ है,
छली मित्र तो क्षेम कहाँ है?
पीतल है वह हेम कहाँ है,
तू मधु-पात्र जिन्हे समझा है,
हैं वह विष के प्याले।
इधर सँभलकर पग रखना,
ओ प्रेम-पथिक मतवाले!

जब तक पूर्ण विराग नही है,
तब तक हरि-अनुराग नही है।
भाग, मत समझ आग नही है,
धधक रही कालानल ज्वाला,
अपनी जान बचा ले।
इधर सँभलकर पग रखना,
ओ प्रेम-पथिक मतवाले!

लुब्ध भ्रमर-सा रहा भूल तू,
देख रहा है फूल-फूल तू।
नहीं देखता छिपे शूल तू,
हृदय छेदने को नावक-सी,
जो हैं नोक निकाले,
इधर सँभलकर पग रखना,
ओ प्रेम-पथिक मतवाले!

□

प्रेम-संसार

प्रेम का एक नया संसार।
बसता है यह वहीं जहाँ पर,
भावुक हृदय उदार।
प्रेम का एक नया संसार।
संसृति सकल प्रेम के बल पर,
बिना प्रेम संहार।
प्रेम स्वर्ग पृथ्वी पर लाता ;
द्रोह · नरक-आगार ॥
प्रेम का एक नया संसार।
जड़-जंगम सब की स्थिति का है,
एक प्रेम-आधार।
अणु-अणु है जब मिला प्रेम से,
हुआ सृष्टि-विस्तार ॥
प्रेम का एक नया संसार।
हरि भी पिघल प्रेम से जाते,
लेते हैं अवतार।
जिसने प्रेम न जाना जग मे,
बना भूमि का भार ॥
प्रेम का एक नया संसार।
जब तक साँस 'सनेही' चलती,
करो प्रेम-सञ्चार।
यहाँ हार में जीत छिपी है,
और जीत में हार ॥
प्रेम का एक नया संसार।

□

प्रेम का राज्य

ले चल मुझको दूर,
सनेही !
ले चल मुझको दूर।

जहाँ प्रेम का राज्य, जहाँ पर,
रहता एक सुरूर,
सनेही !
ले चल मुझको दूर ॥१

ले चल मुझको दूर,
सनेही !
ले चल मुझको दूर।
जहाँ द्वेष के आघातों ने;
पत्थर-सी कठोर बातों ने ,
कभी न कोमल हृदय किये हों,
बेरहमी से चूर,
सनेही !
ले चल मुझको दूर ॥२

ले चल मुझको दूर ,
सनेही !
ले चल मुझको दूर।
रहे न दुई, एक हो जायें,
अपने को पाकर खो जायें।
मिटे चाह का गर्व, हुस्न का,
भी हो दूर गुरूर,
सनेही !
ले चल मुझको दूर ॥३

ले चल मुझको दूर,
सनेही !
ले चल मुझको दूर।
सुखमय यह संसार नहीं है,
इसमें दुख का पार नहीं है।
यहाँ जख्म-पर-जख्म फूटते,
भर-भर कर अंगूर,
सनेही !
ले चल मुझको दूर ॥४

ले चल मुझको दूर ,
सनेही !
ले चल मुझको दूर ।
मेरा तो तू है चिर संगी;
मैं हूँ अंग और तू अंगी ।
तेरे दर्शन से बरसेगा,
वहाँ नूर - ही - नूर,
सनेही !
ले चल मुझको दूर ।
ले चल मुझको दूर,
सनेही !
ले चल मुझको दूर ॥५

□

स्मृति-गीत

मेरे मन के मीत, कहाँ हो ?
यौवन के चिरसंगी रंगी,
जीवन के संगीत कहाँ हो ?
मेरे मन के मीत, कहाँ हो ?

नस-नस में था वास तुम्हारा ,
तुम थे मैं था खास तुम्हारा ।
बनकर आज अतीत, कहाँ हो ?
मेरे मन के मीत, कहाँ हो ?

प्रबल उमंगें तरल तरंगें,
ओज जवानी की वह जंगें ।
देने वाले जीत, कहाँ हो ?
मेरे मन के मीत, कहाँ हो ?

विदा स्वप्न-संसार हो गया ,
जीवन तुम बिन भार हो गया ।
ओ मेरे अविनीत, कहाँ हो ?
मेरे मन के मीत, कहाँ हो ?

पौष-मार्गशीर्ष : सं० १९०४]

पृथ्वी पर हो या कि गगन में,
क्या न मिलोगे इस जीवन में।
प्रीत बने विपरीत, कहाँ हो ?
मेरे मन के मीत, कहाँ हो ?

□

तुम्हारी याद

उन्मन-उन्मन जब होता मन,
दुख देता है जब सूनापन,
पैदा होती दिल में धड़कन;
हे प्राणाधिक ! हे जीवनधन ॥
तो याद तुम्हारी आती है।

घनघोर घटाएँ घिरती हैं,
मोरनी नाचती फिरती है।
बिजलियाँ हृदय पर गिरती हैं,
डूबती कभी हम तिरती हैं ॥
तो याद तुम्हारी आती है।

परदेशी जब घर आते हैं,
उड़ते-से बेपर आते हैं,
भीगे जल से तर आते हैं,
जल-बिन्दु बने घर आते हैं ॥
तो याद तुम्हारी आती है।

जब बनता है वन सावन का,
घिर आता है घन सावन का।
लहराता जीवन सावन का,
बन जाता तन-मन सावन का ॥
तो याद तुम्हारी आती है।

जब त्रिविध समीरण चलता है;
मन होकर विवश मचलता है।
बेहद वियोग-दुख खलता है,
वर्षा में भी जी जलता है ॥
तो याद तुम्हारी आती है।

□

तेरी सुध

जब तेरी सुध आ जाती है।
लोचन लालची ललकते हैं,
पाकर नव ज्योति झलकते हैं।
प्याले की तरह छलकते हैं;
रह-रह कर अश्रु ढलकते हैं॥
जब तेरी सुध आ जाती है।

उफ़, कैसी ठेस लगाती है।
कैसा तूफ़ान उठाती है।
भावों में प्रलय मचाती है,
रह-रह कर हृदय हिलाती है॥
जब तेरी सुध आ जाती है।

उन घातों की सुध आती है,
आघातों की सुध आती है।
उन बातों की सुध आती है।
उन रातों की सुध आती है॥
जब तेरी सुध आ जाती है।

मन मेरा मस्त मचलता है,
दारुण-वियोग दुख खलता है।
पीड़ा का स्रोत उबलता है,
जिसमें कि धैर्य बह चलता है॥
जब तेरी सुध आ जाती है।

आकुलता से भर जाता हूँ,
डूबता कभी तर जाता हूँ।
गुम होता हूँ हर जाता हूँ,
जीते जी मैं मर जाता हूँ॥
जब तेरी सुध आ जाती है।

मैं मार-मार मन रहता हूँ,
चुपचाप वेदना सहता हूँ।
कुछ नहीं किसी से कहता हूँ,
दुख की सरिता में बहता हूँ॥
जब तेरी सुध आ जाती है।

पौष-मार्गशीर्ष : सन १६०४]

आयेगा क्या तू आयेगा ?
विधि क्या दिन फेर फिरायेगा ?
नव जीवन अनुचर पायेगा ?
आने में क्यों सकुचायेगा ?
जब तेरी सुध आ जाती है।

□

कहाँ हो ?

जीवन के आधार कहाँ हो ?
तुम बिन उन्मन-सा रहता हूँ,
जो आ पड़ती है, सहता हूँ।
नहीं किसी से कुछ कहता हूँ,
बन-बन कर आँसू बहता हूँ ॥
घुला जा रहा धीरे-धीरे,
करो सुधा सञ्चार, कहाँ हो ?
जीवन के आधार कहाँ हो ?१

पथ तकते आँखें पथराईं,
किन्तु नहीं वे घड़ियाँ आईं।
पड़ी न देख कहीं परछाईं,
किरणें कहाँ सुछवि की छाईं ॥
अर्पण किसे करूँ मैं प्रियतम !
अपना सञ्चित प्यार कहाँ हो ?
जीवन के आधार कहाँ हो ?२

आशाओं की वह फुलवारी,
कुसुमित जिसकी क्यारी-क्यारी।
सूख चली आतप की मारी,
मुरझाईं कलियाँ मन-हारी ॥
बरस पड़ो घनश्याम कहीं से,
आये वही बहार, कहाँ हो ?
जीवन के आधार कहाँ हो ?३

□

मधुगीत

अब वह मधुमय गान कहाँ है ?
जीवन में वह प्रान कहाँ है ?

हृदयों में अशान्ति की छाया ,
निर्बल है मन निर्बल काया ।
वह हौसले कहाँ वह हिम्मत ,
बाकी वह अरमान कहाँ है ?
अब वह मधुमय गान कहाँ है ?

विश्व द्वेष ईर्ष्या का घर है,
प्रबल वैर ही पल-पल पर है ।
वसुधा एक कुटुम्ब सदृश हो,
ऐसा विमल विधान कहाँ है ?
अब वह मधुमय गान कहाँ है ?

प्रेम रह गया एक कहानी,
पड़ा सत्य पर भी है पानी ।
एक-एक का जानी दुश्मन ,
बच सकते बेजान कहाँ हैं ?
अब वह मधुमय गान कहाँ हैं ?

किसे सुनायें प्रेम-तराने ?
गायें कहाँ प्रीति के गाने ?
देव अदेव बने कुछ भी हों,
पर सच्चे इन्सान कहाँ हैं ?
अब वह मधुमय गान कहाँ हैं ?

☐

विरह-गीत

कितने हैं बे पीर ! चले गये ।
चली न कुछ तदबीर चले गये ।।

पहले आँखों में फिर दिल में ,
धीरे-धीरे आप समाये ।
अपनाये हम रहे निरन्तर ,
किन्तु अन्त में हुए पराये ।

करके प्राण अधीर चले गये।
चली न कुछ तदबीर चले गये॥

सादर जिसने उन्हें बसाया,
उन पर निज सर्वस्व लुटाया।
अद्भुत है कुछ उनकी माया,
दर्द न उनके दिल में आया॥

उसी हृदय को चीर चले गये।
चली न कुछ तदबीर चले गये॥

बाँधे रहे प्रेम-बन्धन मे,
शंका कभी न आयी मन में।
देंगे मृत्यु-स्वाद जीवन में,
छनक जायेंगे वह बस छन में॥

तोड़ प्रेम-जञ्जीर चले गये।
चली न कुछ तदबीर चले गये॥

लय हो गयी उमंगें सारी,
वे दिन बीते ये दिन आये।
अनगिन दिन दिन-दिन गिन-गिन के—
काटे कुछ बीते न बिताये।

बन के श्वास-समीर चले गये।
चली न कुछ तदबीर चले गये॥

□

विरह की आग

तेरे विरह की आग,
प्यारे!
तेरे विरह की आग।

सन्ध्या प्रात गगन पर छायी,
अवनी के अन्तर में छायी।
अब यह होली बनकर आयी,
उठी हृदय में आग,
प्यारे!
तेरे विरह की आग॥१

तेरे विरह की आग,
प्यारे !
तेरे विरह की आग।
धीरज मेरा खोती आती,
दावा-सी दुख बोती आती।
बाड़व-वह्नि डुबोती आती,
बचूँ कहाँ को भाग,
प्यारे !
तेरे विरह की आग ॥२

तेरे विरह की आग,
प्यारे !
तेरे विरह की आग।
राग भरी अनुराग भरी है,
रक्तिम रंग सुहाग भरी है।
भाग भरी है, भाग भरी है,
जाने क्या है लाग,
प्यारे !
तेरे विरह की आग ॥३

तेरे विरह की आग,
प्यारे !
तेरे विरह की आग।
आँखों से आँसू बरसाती,
शिर पर मेरे धूल उड़ाती।
अन्तर तर में आग लगाती,
खेल रही है फाग,
प्यारे !
तेरे विरह की आग।
तेरे विरह की आग,
प्यारे !
तेरे विरह की आग ॥४

□

पावस-गीत

उठी झूमती काली बदरिया।
विद्युत्-छवि छहराती आयी,
पील-पटी फहराती आयी।
मोर पंख लहराती आयी,
भृंगी-ध्वनि घहराती आयी॥
बन आयी बनमाली बदरिया।
उठी झूमती काली बदरिया॥

सरस मरुस्थल करती आयी,
थल-थल जल-थल करती आयी।
उर मे हलचल करती आयी,
प्रेमी पागल करती आयी॥
मस्त पवन मतवाली बदरिया।
उठी झूमती काली बदरिया॥

छोड़ी नदियों ने मर्यादा,
संगम का कर लिया इरादा।
उन्मद हैं क्या नर क्या मादा,
विरही मरने पर आमादा॥
विष उनको रसवाली बदरिया।
उठी झूमती काली बदरिया॥

सर सर-सर पुरवैया डोली,
नाच उठी मोरो की टोली।
जब पी कहाँ, चातकी बोली,
तुरत चोंच चातक ने खोली॥
देख आ गयी आली बदरिया।
उठी झूमती काली बदरिया॥

ऊष्मा मिटी, मिली सुख-छाया,
कृषकों ने नव जीवन पाया।
पलट गयी कानन की काया,
क्षमां स्वर्ग का सम्मुख आया॥
बनी कल्पतरु-डाली बदरिया।
उठी झूमती काली बदरिया॥

□

बदरिया

घूम-घूम बरसी रे बदरिया।
झूम-झूम बरसी रे बदरिया।।

तप्त हृदय की ताप सिरानी,
हुई मयूरों की मनमानी।
देखो जिधर उधर ही पानी,
भरती सर सरसी रे बदरिया।
झूम-झूम बरसी रे बदरिया।।१

घूम-घूम बरसी रे बदरिया।
झूम-झूम बरसी रे बदरिया।।
श्यामा-सी इठलाती आयी,
लतिकाएँ लहराती आयीं।
श्याम रंग दरसी रे बदरिया।
झूम-झूम बरसी रे बदरिया।।२

घूम-घूम बरसी रे बदरिया।
झूम-झूम बरसी रे बदरिया।।
बन कुञ्जें वह फूलों वाली,
कालिन्दी वह कूलों वाली।
सावन की छवि झूलों वाली,
बिन देखे तरसी रे बदरिया।
झूम-झूम बरसी रे बदरिया।।३

घूम-घूम बरसी रे बदरिया।
झूम-झूम बरसी रे बदरिया।।
देख नहीं वह शोभा पाती,
अविरल अश्रु-धार बरसाती।
हृदय तड़पता जलती छाती।
विरह-ज्वाल झरसी रे बदरिया,
झूम-झूम बरसी रे बदरिया।।४

घूम-घूम बरसी रे बदरिया,
झूम-झूम बरसी रे बदरिया।।

पौष-मार्गशीर्ष : शक १६०४]

आयी चली सवार हवा पर,
कलियुग को समझी थी द्वापर।
रोयी-धोयी क्या पाया पर;
गयी हाय! मरसी रे बदरिया॥
झूम-झूम बरसी रे बदरिया।
घूम-घूम बरसी रे बदरिया।
झूम-झूम बरसी रे बदरिया॥५

□

शरदागमन

शरद् ऋतु आनेवाली है।
चाँदनी छाने वाली है॥

चली सुरभित समीर शीतल,
हुआ सर सरित-सलिल निर्मल।
बना निर्झर 'झर-झर' 'कल-कल',
श्याम-से हुए श्वेत बादल॥

प्रकृति प्रिय पौदों को अपने,
हार पहनाने वाली है।
शरद् ऋतु आने वाली है,
चाँदनी छाने वाली है॥

स्वर्ग से उड़ आये खञ्जन,
लोक का करने मन-रञ्जन।
निखर उठा है धुला गगन,
रसा का है रसमय आँगन॥

झूमने वाले हैं तरुवर,
लता लहराने वाली है।
शरद् ऋतु आने वाली है,
चाँदनी छाने वाली है॥

हट गये वे काले बादल,
मचाये थे जो उथल-पुथल।
भस्म कृमि-कीट हुए जल-जल।
धरा फैलाये है आँचल॥

पवन दामन में भर लायी,
फूल बरसाने वाली है।
शरद् ऋतु आने वाली है,
चाँदनी छाने वाली है।

चन्द्र ने मुसकाकर ताका,
क्षमा बनने को है 'राका'।
बढ़ा है वैभव वसुधा का,
चलेगा भारत का 'साका'।।

सुयश उसका निज वीणा पर,
भारती गाने वाली है।
शरद् ऋतु आने वाली है,
चाँदनी छाने वाली है।।

□

वसन्त

फिर मधुमय वातावरण हुआ,
फिर हवा वसन्ती चलती है।

बौरे रसाल फूले सरसों,
वसुधा यों रत्न उगलती है।
ये दिन हैं प्रकृति सुन्दरी भी,
निज भूषण-वसन बदलती है।।
मुसकाती-हँसती आती है,
जो कलिका नयी निकलती है।
छन रही गुलाबी प्रभा कहीं,
केसरिया आभा ढलती है।।
फिर मधुमय वातावरण हुआ,
फिर हवा वसन्ती चलती है।।

जो तरु थे पीले पात लिये,
वे हरे हुए खिल बैठे हैं।
पक्षी भी हैं पर झाड़ चुके,
पायी है मञ्जिल बैठे हैं।।

नस-नस में जीवन दौड़ रहा,
सब भाई हिल-मिल बैठे हैं।
बैठे हैं अब भी प्राण-हीन,
प्राणी जिनके दिल बैठे हैं॥
फिर मधुमय वातावरण हुआ,
फिर हवा वसन्ती चलती है॥

बदला कुहरे का अन्धकार,
दिनमणि के उदित उजाले से।
छुटकारा पाया दुनिया के,
दीनों ने जाड़े-पाले से॥
जीवन-मदिरा घट में छलकी,
हो उठे लोग मतवाले-से।
नयनों में वह मस्ती आयी,
दिखलायी देते डाले से॥
फिर मधुमय वातावरण हुआ,
फिर हवा वसन्ती चलती है॥

मिलने का समय यही तो है,
हाँ, बढ़े परस्पर प्यार मिलें।
क्या मिले, मिले जो बरसों में,
चाहिये कि बारम्बार मिलें॥
जीवन-संगीत सुनायी दे,
बन कर वीणा के तार मिलें।
मिल जाय हृदय-से-हृदय,
गले-से-गला विजय उपहार मिलें॥
फिर मधुमय वातावरण हुआ,
फिर हवा वसन्ती चलती है॥

पृथ्वी ने काया पलटी है,
बन रहा एक संसार नया।
दुनिया को मिलने वाला है,
नव जीवन का अधिकार नया॥
फैलेंगे नये विचार और
जारी होगा व्यवहार नया।

जीवन-वन में आये वसन्त,
हो जाय परस्पर प्यार नया ।।
फिर मधुमय वातावरण हुआ,
फिर हवा वसन्ती चलती है ।।

□

वसन्तागमन

बदला जा रहा जमाना है ।

वृक्षों ने बदला बाना है,
भौंरों का नया तराना है ।
मधुमय कोयल का गाना है,
हर नौजवान मस्ताना है ।।
आया वह समय सुहाना है ।
बदला जा रहा जमाना है ।।
दिल में कुछ अजब उमंगें हैं,
रह-रह कर उठी तरंगें हैं ।
छिड़ रही प्रेम की जंगें हैं,
छनती केसरिया भंगें हैं ।।
फैला नव ताना-बाना है ।
बदला जा रहा जमाना है ।।

अब पिण्ड शिशिर ने छोड़ा है,
आया रविकर का कोड़ा है ।
झञ्झा ने पकड़ झँझोड़ा है,
जाड़े का भोंडा फोड़ा है ।।
बेबस हो रहा रवाना है ।
बदला जा रहा जमाना है ।।
'हर-हर' वसन्त, बैहर बोली,
पत्ती-पत्ती 'सर-सर' बोली ।
कलिका की मधु से तर बोली,
वह मधुर-मधुर हँस कर बोली ।।
जीवन यदि सरस बनाना है ।
बदला जा रहा जमाना है ।।

तू गोरा बन या काला बन,
निज देश-प्रेम मतवाला बन।
अदना है तो अब आला बन,
तू उस हाला का प्याला बन ।।
जिसका यह जग दीवाना है।
बदला जा रहा ज़माना है ।।

□

'वसन्त की खबर

तुम मनमारे-से बैठे हो,
तुमको वसन्त की ख़बर नहीं।

दक्षिण समीर धीरे-धीरे,
चलती सुगन्ध के भारों से।
कलरव कल कण्ठों का कूजन,
बन गूँज उठा चहकारों से ।।
वीणा की ध्वनि-सी ध्वनित हुई,
अलिगण की मृदु गुञ्जारों से।
बेलें तरुओं का हार बनीं,
तरु हुए फूल के हारों से ।।

पत्थर में भी रस बहा,
हृदय पर किन्तु तुम्हारे असर नहीं।
तुम मनमारे-से बैठे हो,
तुमको वसन्त की खबर नहीं ।।

खिले हुए यह सुमन लिये हैं,
हाथों में मधु दोना-सा।
हर पौदा निखरा तना खड़ा,
लगता नवयुवक सलोना-सा ।।
है प्रकृति बनी जादूगरनी,
कर रही अजब कुछ टोना-सा।
हैं मन्त्रमुग्ध-से मनुज,
नज़र आता होता अनहोना-सा।

मानिनी-मान हो गया भंग,
अब उसमें कोई कसर नहीं।
तुम मनमारे-से बैठे हो,
तुमको वसन्त की ख़बर नहीं ॥

घर-घर की कोई बात नहीं,
टोले-का-टोला बदला है।
मन महर्षियों का भी फिरता,
अब डोला-डोला बदला है ॥
दुनिया ही बदल गयी मानो—
ऐसा कुछ 'बोला' बदला है ॥
है रंग और ही बरस रहा,
वह गाँव नहीं, वह नगर नहीं।
तुम मनमारे-से बैठे हो,
तुमको वसन्त की ख़बर नहीं ॥

है उबला जोश जवानों का,
जगती में नव जीवन आया।
जो बड़े सुबोध सयाने थे,
उनमें भी पागलपन आया ॥
हलचल वह मची त्रिलोचन का,
डिगने को है आसन आया ॥
अब कहीं वहीं का नाम नहीं,
वह इधर नहीं वह उधर नहीं।
तुम मनमारे-से बैठे हो,
तुमको वसन्त की ख़बर नहीं ॥

□

नव-वर्ष

आया फिर नव-वर्ष,
सनेही !
आया फिर नव-वर्ष।
जन-जन में नव जीवन आया,
नव वसन्त लेकर वन आया।
रूठा मन फिर से मन आया,

पौष-मार्गशीर्ष : शक १६०४]

हुआ हृदय में हर्ष,
सनेही !
आया फिर नव-वर्ष ॥१

आया फिर नव-वर्ष,
सनेही !
आया फिर नव-वर्ष ।
जैसे-तैसे वर्ष बिताया,
क्या-क्या खोया, क्या-क्या पाया ।
सिर पर रहा विपद-घन छाया,
मँडराता अपकर्ष,
सनेही !
आया फिर नव-वर्ष ॥२

आया फिर नव-वर्ष,
सनेही !
आया फिर नव-वर्ष ।
गत होकर विस्मृत दुख सारे,
चमक उठे आँखों के तारे ।
नव आशाएँ नये सहारे,
सम्मुख नव उत्कर्ष,
सनेही !
आया फिर नव-वर्ष ॥३

आया फिर नव-वर्ष,
सनेही !
आया फिर नव-वर्ष ।
स्वीकृत हो नव वर्ष-बधाई,
है आनन्द घड़ी यह आई,
जीवो, जागो, पाओ भाई,
जीवन का निष्कर्ष,
सनेही !
आया फिर नव-वर्ष ।
आया फिर नव-वर्ष,
सनेही !
आया फिर नव-वर्ष ॥४

○

देवालय

मन्दमति ! कहना मेरा मान।
माला मन्त्र और तप दे तू,
मधुर-मधुर वह गान।
तिमिराच्छन्न कोण में बैठा,
करता जिसका ध्यान॥
मन्दमति ! कहना मेरा मान।

आँखें खोल, देख तू सम्मुख,
तेरा पूज्य यहाँ न।
वह है वहाँ जोतता धरती,
जहाँ गरीब किसान॥
मन्दमति ! कहना मेरा मान।

और जहाँ मजदूर सड़क पर,
तोड़ रहा पाषाण।
धूप-मेंह में उनका साथी,
उसे सदा तू जान॥
मन्दमति ! कहना मेरा मान।

पहने मैले वस्त्र उधर ही,
उसने किया प्रयाण।
फेंक पवित्र वस्त्र आ तू भी,
लगा काम में जान॥
मन्दमति ! कहना मेरा मान।

☐

जीवन

जीवन है एक पहेली,
जीवन है एक कहानी।

मैं कौन? कहाँ से आया?
क्यों कोई मुझको लाया?
मैं आकर क्या पाया—
या खोया की नादानी?

जीवन है एक पहेली;
जीवन है एक कहानी।

पौष-मार्गशीर्ष : शक १८०४]

क्यों है इतना कोलाहल ?
क्यों मची हुई है हलचल ?
जिसको देखो वह चञ्चल,
स्थिरता की नहीं निशानी।
जीवन है एक पहेली,
जीवन है एक कहानी।

रह-रहकर हृदय भरा है,
यह विरह-वेदना क्या है ?
उबला क्यों दृग-सोता है ?
क्यों हालत है तूफ़ानी ?
जीवन है एक पहेली,
जीवन है एक कहानी।

कण-कण में तो जीवन है;
पृथ्वी है या कि गगन है।
झञ्झा या मलय-पवन है,
पावक है या है पानी ।।
जीवन है एक पहेली
जीवन है एक कहानी।

जीवन का जीवन-दाता—
क्या-क्या है खेल खिलाता।
कुछ नहीं समझ में आता—
कह गये 'नेति मुनिज्ञानी ।।
जीवन है एक पहेली;
जीवन है एक कहानी।

□

प्रतीक्षा

इधर कब होगी करुणा-कोर ?
अन्धकार है बिना तुम्हारे,
मुझको चारों ओर ।।
इधर कब होगी करुणा-कोर ?

तुम घनश्याम प्राणधन मेरे,
मैं मधुबन का मोर।
तुम ब्रजचन्द्र नयन मेरे हैं,
तुम पर बने चकोर ।।
इधर कब होगी करुणा-कोर ?

पल-पल बीत रहे युग-युग सम,
विरह - वेदना घोर ।
डूब रहा हूँ दुख-सागर में,
जिसका ओर न छोर ।।
इधर कब होगी करुणा-कोर ?

डाँवाडोल हृदय है मेरा,
उठती विषम हिलोर ।
कौन सुने क्रन्दन-ध्वनि मेरी,
है लहरों का शोर ।।
इधर कब होगी करुणा-कोर ?

जीवन-धन जनके मन मन के,
चतुर चित्त के चोर ।
भोर हुआ जाता है प्यारे,
लगी तुम्हारी डोर ।।
इधर कब होगी करुणा-कोर ?

□

अभिमान न कर

दो दिन का जीवन है जग में,
इस जीवन पर अभिमान न कर।
अपने बल पर अभिमान न कर,
अपने धन पर अभिमान न कर ।।
दो दिन का जीवन है जग में,
इस जीवन पर अभिमान न कर ।।

कामिनी और कञ्चन ही तो,
माया के बेढब फन्दे हैं।
तू फँसता जाता है इनमें,
इस बन्धन पर अभिमान न कर॥
दो दिन का जीवन है जग में,
इस जीवन पर अभिमान न कर॥

चाँदनी चार ही दिन की है,
फिर वही अँधेरा पाख यहाँ।
तू भूल रूप पर मत अपने,
इस यौवन पर अभिमान न कर॥
दो दिन का जीवन है जग में,
इस जीवन पर अभिमान न कर॥

यह तन तो एक खिलौना है,
जिसमें है हवा भरी विधि ने।
इसका है यार भरोसा क्या,
नश्वर तन पर अभिमान न कर॥
दो दिन का जीवन है जग में,
इस जीवन पर अभिमान न कर॥

क्यों ज्ञान-गर्व पर चूर हुआ,
जाना तो क्या जाना तूने।
अपने को पहचाना होता,
भोले मन पर अभिमान न कर॥
दो दिन का जीवन है जग में,
इस जीवन पर अभिमान न कर॥

ऊँचे चढ़ता है वही एक दिन,
नीचे को भी गिरता है।
पाया है ईश कृपा से तो,
उच्चासन पर अभिमान न कर॥
दो दिन का जीवन है जग में,
इस जीवन पर अभिमान न कर॥

आतंक जमाया दुनिया में,
लेकिन न हृदय को जीत सका।
यह शासन भी क्या शासन है,
इस शासन पर अभिमान न कर॥
दो दिन का जीवन है जग में,
इस जीवन पर अभिमान न कर॥

दामिनी आज इतनी चञ्चल,
घनश्याम अङ्क में क्यो है तू।
निश्चित है तेरा भी गिरना,
इतना धन पर अभिमान न कर॥
दो दिन का जीवन है जग में,
इस जीवन पर अभिमान न कर॥

कविता की भागीरथी बहा—
सकता है भूप भगीरथ-सा।
यह भी ईश्वर की देन 'सनेही',
तू फ़न पर अभिमान न कर॥
दो दिन का जीवन है जग मे,
इस जीवन पर अभिमान न कर॥

□

मेरा घर

वह मेरा घर, वह मेरा घर।
जब याद मुझे आ जाता है,
दिल पर बस चोट लगाता है।
रह-रह कर जी घबराता है,
जब उसे समीप न पाता है॥
वह मेरा घर, वह मेरा घर।
मेरा प्यारा नन्दन-कानन,
मेरा वह सुन्दर इन्द्र-भवन।
मतवाला जिस पर रहता मन,
जिसमें जन्मा, जो है जीवन॥
वह मेरा घर, वह मेरा घर।

घर का वह टूटा-सा छप्पर,
है किसी महल से भी बढ़कर।
आती है हवा चली 'सर-सर',
देती सुगन्ध से आँगन भर॥
वह मेरा घर, वह मेरा घर।

टूटी टटिया परवा क्या है,
कोई आये क्या रक्खा है?
मुँह चोरों ने भी फेरा है,
मेरा तो रैन-बसेरा है॥
वह मेरा घर, वह मेरा घर।

माना है शहरी ठाट नहीं,
वह पलँग नहीं, वह खाट नहीं।
बिस्तर पुआल है, टाट नहीं,
दरवाजा नहीं कपाट नहीं॥
वह मेरा घर, वह मेरा घर।

फिर भी मैं उस पर मरता हूँ,
बस ध्यान उसी का धरता हूँ।
मेहनत मजदूरी करता हूँ,
भरना उसका ही भरता हूँ॥
वह मेरा घर, वह मेरा घर।

बच्चों का कलरव-सा कूजन,
हरता रहता है मेरा मन।
घरवाली कहती मुझे सजन,
तब पा जाता मैं नव जीवन॥
वह मेरा घर, वह मेरा घर।

बाम्बे हो या हो कलकत्ता,
जँचती न मुझे उसकी सत्ता।
किस बिरते पर पानी तत्ता,
हाँ, सुध आता है अलबत्ता॥
वह मेरा घर, वह मेरा घर।

□

जवानी

ऐ जीवन की जान जवानी।
तू मर्दों की शान जवानी॥
तू वसन्त है जीवन-वन है,
तेरे दम से चमन चमन है।
तन है और और ही मन है,
दूर देश भी घर-आँगन है॥
तू है पुष्पक-यान जवानी।
ऐ जीवन की जान जवानी॥
बल है तन में तेरे बल पर,
बल है मन में तेरे बल पर।
बल चितवन में तेरे बल पर,
बल जीवन में तेरे बल पर॥
तू है बल की खान जवानी।
ऐ जीवन की जान जवानी॥
कौमी शान जवानों से है,
देश जवान जवानों से है।
कायम आन जवानों से है,
सर मैदान जवानों से है।
चाहे क्यों न जहान जवानी।
ऐ जीवन की जान जवानी॥
चार हाथ करने को चञ्चल,
रहते हैं दो हाथ भरे बल।
पड़ता है जब भौंहों में बल,
मचती है दुनिया मे हलचल॥
बनती है तूफ़ान जवानी।
ऐ जीवन की जान जवानी॥
एक नशा-सा छाया रहता,
किस-किस पर दिल आया रहता।
जानें किसका साया रहता,
मन भरमा भरमाया रहता॥
हो न कहीं शैतान जवानी।
ऐ जीवन की जान जवानी॥

पौष-मार्गशीर्ष : शक १९०४]

क्या-क्या हैं आशाएँ मन में,
क्या-क्या अभिलाषाएँ मन में।
कहीं न यह रह जायें मन में,
कौन-कौन बतलाएँ मन में—
रखती है अरमान जवानी।
ऐ जीवन की जान जवानी॥

फिर स्वर में बिजली कड़का जा,
अंग-अंग रग-रग फड़का जा।
दिल में सोई आग जगा जा,
आ जा एक बार फिर आ जा॥
मैं तुझ पर क़ुरबान जवानी।
ऐ जीवन की जान जवानी॥

□

प्यार न कर

दिल देकर दुनिया वालों को,
दुखमय अपना संसार न कर।
सौ बार कहा मैंने तुझसे,
तू प्यार न कर! तू प्यार न कर!!

संकल्प कर लिया जो तूने,
उससे हटना नामर्दी है।
जिस मुँह से तूने 'हाँ' की है,
उस मुँह से फिर इनकार न कर॥
सौ बार कहा मैंने तुझसे,
तू प्यार न कर! तू प्यार न कर!!

जो पौदा तूने रोपा है,
परवान चढ़ाया है जिसको।
अब उसे काटने को निष्ठुर,
यों तेज तबर की धार न कर॥
सौ बार कहा मैंने तुझसे,
तू प्यार न कर! तू प्यार न कर!!

मनु संतति था मानव था तू,
कर्मों से दानव बन बैठा।
अब सीमा को दानवता की,
दुष्टात्मा बनकर पार न कर॥
सौ बार कहा मैंने तुझसे,
तू प्यार न कर ! तू प्यार न कर !!

जलते हों कुटिल कीर्ति-लोलुप,
जब तेरी निन्दा करते हों।
तो समझ सफलता मिली तुझे,
सब कुछ सुन किन्तु विचार न कर।
सौ बार कहा मैंने तुझसे,
तू प्यार न कर ! तू प्यार न कर॥

जिसने सर्वस्व दिया तुझको,
जो हुआ 'सनेही' तेरा है।
पहुँचा न चोट उसके दिल को,
उससे कठोर व्यवहार न कर॥
सौ बार कहा मैंने तुझसे,
तू प्यार न कर ! तू प्यार न कर !!

□

मन

फिरता मन मारा इधर-उधर।
रहता कब एकाग्र एक पल,
जैसे हो पारा इधर-उधर।
फिरता मन मारा इधर-उधर॥

लोक कभी, परलोक कभी है,
मुक्त कभी है, रोक कभी है।
अन्धकार-आलोक कभी है,
दु:ख कभी है, शोक कभी है॥
दूर शान्ति के उभय किनारे,
फिरता है हारा इधर-उधर।
फिरता मन मारा इधर-उधर॥

नहीं जानता सुस्थिर होना,
सीखा है अपने को खोना।
व्यर्थ बीज आशा के बोना,
खोज रहा रजकण में सोना॥
बेच रहा अपने को पागल,
बनकर बनजारा इधर-उधर।
फिरता मन मारा इधर-उधर॥

इस प्रकार निस्तार न होगा,
यों तो बेड़ा पार न होगा।
बन्धन से उद्धार न होगा,
मुक्त मुक्ति का द्वार न होगा॥
आश्रय एक चरण हरि के हैं,
है नहीं सहारा इधर-उधर।
फिरता मन मारा इधर-उधर॥

□

प्रगीत

किसी ओर बहता चला जा रहा हूँ।
बताऊँ तुम्हें क्या किधर जा रहा हूँ,
सभय जा रहा या निडर जा रहा हूँ।
इधर जा रहा या उधर जा रहा हूँ,
लिये साथ अपने लहर जा रहा हूँ।
नदी-सा उमड़ता चला जा रहा हूँ।
किसी ओर बहता चला जा रहा हूँ॥

लड़कपन से बहकर जवानी में पहुँचा,
जवानी से आगे मिला फिर बुढ़ापा।
न अब तक दिखायी दिया है किनारा,
लिये जा रही खींचती एक धारा॥
नहीं कुछ भी कहता चला जा रहा हूँ।
किसी ओर बहता चला जा रहा हूँ॥

भँवर मे पड़ा बच गया पर न डूबा,
रहा खाता चक्कर-पै-चक्कर न ऊबा।
बदन हो गया तर मगर सर न डूबा,
दिया जाने किसने अमर वर न डूबा ॥
विविध कष्ट सहता चला आ रहा हूँ।
किसी ओर बहता चला आ रहा हूँ ॥

पता कुछ नहीं मैं कहाँ जा लगूँगा,
नहीं जानता पार हूँगा न हूँगा।
मगर पार पहुँचे बिना दम न लूँगा,
जहाँ मैं रहा था वहीं पर रहूँगा ॥
युगों से मैं रहता चला आ रहा हूँ।
किसी ओर बहता चला आ रहा हूँ ॥

□

उपकार

जगत् में किससे किसका प्यार !
मातृ-गर्भ मे शिशु जब आया,
मातृ रुधिर-आधार ॥
जगत् में किससे किसका प्यार !

माता ने किस धुन से पाला,
कहकर लाला लाला लाला।
अपना तन जर्जर कर डाला,
चूस रहा माँ कहने वाला ॥
यही प्रीति की रीति हाय—
क्या यही प्रेम-व्यवहार !
जगत् मे किससे किसका प्यार !!

नाता एक स्वार्थ का नाता,
कैसे मित्र, कहाँ के भ्राता।
करता त्याग कौन सम खाता,
एक महाभारत मच जाता ॥
नष्ट देश-का-देश और—
होता है कुल-संहार।
जगत् में किससे किसका प्यार !!

अपनी पर जब आ जाते हैं,
सबल अबल को खा जाते हैं।
टिड्डी बन कर छा जाते हैं,
जंगल साफ उड़ा जाते हैं।।
पत्ती खाती अजा अजा है—
सिंहों का आहार।
जगत् में किससे किसका प्यार।।

कैसी दया, कहाँ उसका घर,
देखो जिसे रहा असु-बसु हर।
करता जो उपकार निरन्तर,
मनुज नहीं वह कोई सुर वर।।
आया है इस दुखी जगत् का—
करने को निस्तार।
जगत् में किससे किसका प्यार।।

□

स्वार्थमय संसार

स्वार्थमय है सारा संसार।
किसका कौन यहाँ साथी है,
कौन लगाता पार।
स्वार्थमय है सारा संसार।

वही पिता जिसने पाला है,
हो जाता है भार।
माता मोहमयी माता का,
विस्मृत होता प्यार।।
स्वार्थमय है सारा संसार।

प्रेम प्यार का शब्द व्यर्थ है,
एक स्वार्थ ही सार।
जब जी चाहे जाँच देखिये,
सब मतलब के यार।।
स्वार्थमय है सारा संसार।

बाहर से तो देख पड़ेंगे,
प्रेम - प्रीति - अवतार।
पर अन्तर में छिपी रहेगी,
छल की तीव्र कटार।।
स्वार्थमय है सारा संसार।

जप-तप तक तो इसीलिए हैं,
सुख पायें उस पार।
और पुजायें इसी लोक में,
रूप अलौकिक धार।।
स्वार्थमय है सारा संसार।

□

पश्चात्ताप

कैसा नीरस जीवन बीता,
मैं प्यार किसी का कर न सका।
अपकार किया किसका-किसका,
उपकार किसी का कर न सका।।
कैसा नीरस जीवन बीता,
मैं प्यार किसी का कर न सका।

कितने दुखिया बहते देखे,
दुख-सरिता में मँझधार पड़े।
मैं मस्त रहा अपनी धुन मे;
उद्धार किसी का कर न सका।।
कैसा नीरस जीवन बीता,
मैं प्यार किसी का कर न सका।

दिल भर आया अक्सर मेरा,
आँसू भी मैंने बरसाये।
पर हमदर्दी से उजड़ा दिल,
गुलज़ार किसी का कर न सका।।
कैसा नीरस जीवन बीता,
मैं प्यार किसी का कर न सका।

पौष-मार्गशीर्ष : शक १८०४]

कितने ही बन्दी बँधे हुए,
देखे दरिद्रता-बन्धन में।
बल रहते बाँहों में अपनी,
निस्तार किसी का कर न सका॥
कैसा नीरस जीवन बीता,
मैं प्यार किसी का कर न सका॥

दुख-ही-दुख देख पड़े मुझको,
हरदम इस दुख की दुनिया में।
लेकिन हलका तिल भर भी तो,
दुख-भार किसी का कर न सका॥
कैसा नीरस जीवन बीता,
मैं प्यार किसी का कर न सका।

कवि-कोविद गुणी बहुत आये,
मैंने सबका कौशल देखा।
पर 'वाह-वाह' को छोड़ और,
सत्कार किसी का कर न सका॥
कैसा नीरस जीवन बीता,
मैं प्यार किसी का कर न सका।

मैं ऐ 'त्रिशूल' बतलाऊँ क्या,
किस-किस पर वार किये मैंने।
पर बनकर ढाल निवारण मैं,
हा! वार किसी का कर न सका॥
कैसा नीरस जीवन बीता,
मैं प्यार किसी का कर न सका।

☐

मीठे-मीठे बोल

मीठे-मीठे बोल,
सनेही!
मीठे-मीठे बोल।
जिनसे मिश्री मात हुई थी,
सुधा सुलभ-सी ज्ञात हुई थी।

कितनी मधुमय रात हुई थी,
रस की तो बरसात हुई थी।
वे घड़ियाँ अनमोल,
सनेही !
मीठे-मीठे बोल। १

मीठे-मीठे बोल,
सनेही !
मीठे-मीठे बोल।
और आज ये बिफ़रे तेवर,
देते हैं उर में विषाद भर।
कर ले रोष, दोष मुझ पर धर,
पर यह हृदय किया जिसमें घर।
मत कर डाँवाँ-डोल;
सनेही !
मीठे-मीठे बोल ॥२

मीठे-मीठे बोल,
सनेही !
मीठे-मीठे बोल।
किसके मन में साध नहीं है,
या चाटना अगाध नहीं है।
मेरा कुछ अपराध नहीं है।
अपना हृदय टटोल,
सनेही !
मीठे-मीठे बोल।
मीठे-मीठे बोल,
सनेही !
मीठे-मीठे बोल ॥३

□

दिन अच्छे बीते जाते हैं

दिन अच्छे बीते जाते हैं।
दिल में है जोश, जवानी है,
लोहू में गर्म रवानी है।
जिस विरले पर तत्ता पानी,
दुनिया यह आनी-जानी है।।
दिन अच्छे बीते जाते हैं।

होती रसकी बौछारें हैं,
जीवन की यही बहारें हैं।
फिर आने वाला है पतझड़,
दो दिन अलिकी गुंजारें हैं।।
दिन अच्छे बीते जाते हैं।

जो कुछ करना है तू कर ले,
कर वशीकरण जादू कर ले।
दिल नहीं किसी का तोड़ेगा,
यह शपथ आज सिर छू कर ले।।
दिन अच्छे बीते जाते हैं।

फिर मिलना-जुलना यार! कहाँ,
फिर यह दिल, यह दिलदार कहाँ।
क्या जानें क्या परदे में हो,
मिलना भविष्य का पार कहाँ।
दिन अच्छे बीते जाते हैं।

जान गयी तो फिर क्या जाना,
बीती पर क्या अश्रु बहाना।
सोच अभी ले सीख सुहृदता,
अवसर चूके क्या पछताना।।
दिन अच्छे बीते जाते हैं।
दिन अच्छे बीते जाते हैं।।

□

नाक

हमें है प्यारी ऐसी नाक।
फूले कभी न जो सुहृदों पर,
हो सिकुड़न से पाक।
चढ़ न जाय जो ऊपर दुखिया—
दीन जनों को ताक।।
हमें है प्यारी ऐसी नाक।

कटती जो गाजर-मूली सी,
या कटता जिमि शाक।
झूठी शेखी मे है रहती,
तो रहती क्या खाक।।
हमें है प्यारी ऐसी नाक।

शुक सी है या तिल प्रसून सी,
क्या करना यह आंक।
ले जो सांस-सनेह-पवन में,
छल-रज जाय न फांक।।
हमें है प्यारी ऐसी नाक।

जिसमे दम न रहे हरदम हो,
निज गुण में चालाक।
बनी मोम की हो न जगत में,
रहे जमाये धाक।।
हमें है प्यारी ऐसी नाक।

□

कान

चाहिये ऐसे सुन्दर कान।
जो हरि-कथा श्रवण को उत्सुक,
रहते हों हर आन।
बहुश्रुत होकर बन जायें जो,
विविध ज्ञान की खान।।
चाहिये ऐसे सुन्दर कान।

जिनको अमृत सदृश भाता हो,
देश - सुयश - गुण - गान।
जिनमें हरदम गूँजा करती,
सुखद स्वदेशी तान ।।
चाहिये ऐसे सुन्दर कान।
पर - अवगुण परदोष ग्रहण जो,
करें न विष सम जान।
पर - निन्दा न पड़ी हो जिनमे,
हो इसका अभिमान ।।
चाहिये ऐसे सुन्दर कान.
चौकन्ने जो चुगुलों से हों,
दें आहों पर ध्यान।
वाणी सुनें सुकवि की संतत,
करें सुधा सी पान ।।
चाहिये ऐसे सुन्दर कान।

□

श्वेत केश

यौवन के बैरी श्वेत बाल।
जीवन के बैरी श्वेत बाल ।।
लाते यह हर्फ़जवानी पर,
पानी फिर जाता पानी पर,
सन्देश बुढापे का लाते,
बांधते कमर शैतानी पर ।।
हर घडी मौत ही का ख़याल।
जीवन के बैरी श्वेत बाल ।।
जब नर, तन पर इतराते हैं,
जब यौवन पर इतराते हैं।
जब मस्त किसी छवि पर होकर,
अपने मत पर इतराते हैं ।।
यह देते हैं खीसें निकाल।
जीवन के बैरी श्वेत बाल ।।

भूपति 'ययाति' को भरमाया,
उसने बेढब चरका खाया।
निज सुत से नव यौवन मांगा,
है महाप्रबल इनकी माया ।।
राजा 'दशरथ' के बने काल।
जीवन के बैरी श्वेत बाल ।।

कितने मुँह काले करवाये,
कितनों से आँसू भरवाये
कितने ही प्रणय सूत्र तोड़े,
बेमौत हजारों मरवाये ।।
कर दिये हृदय ऐसे निढाल।
जीवन के बैरी श्वेत बाल ।।

है कौन न इनको कोस रहा,
मन किसका नहीं मसोस रहा।
उजले केशो की करनी पर,
'केशव' को भी अफ़सोस रहा ।।
किसकी न जान के यह बवाल।
जीवन के बैरी श्वेत बाल ।।

मुँह लगे, हुए सर पर सवार,
हिमकण का शतदल पर प्रहार।
या हरी नील की खेती पर,
दीमक ने होकर दिया वार ।।
बस चलता लेते खीच खाल।
जीवन के बैरी श्वेत बाल ।।

ईजाद हुआ 'सेफ्टीरेज़र'
किसबत है पहुँच गयी घर - घर।
अब लोग सवेरा होते ही,
पहले काटते इन्हीं का सर ।।
यह मुँह दिखलायें क्या मजाल ?
जीवन के बैरी श्वेत बाल ।।

□

पौष मार्गशीर्ष : शक १८०४]

गोरख धन्धा

क्या ब्रह्म और क्या माया है ?
क्या है अकाय क्या काया है ?
किसने यह जाल बिछाया है ?
क्यों कोई फँसने आया है ?
हैरान हो रहा बन्दा है।
कैसा यह गोरख धन्दा है !!१

क्या दीन और क्या दुनिया है ?
क्या निगुनी है क्या गुनिया है ?
क्या है पठान क्या धुनिया है।
क्या लाल और क्या मुनिया है।।
सब फँसे एक ही फन्दा है।।
कैसा यह गोरख धन्धा है !!२

कोई तो सुख से सोता है।
कोई क़िस्मत को रोता है।
पाता है कोई खोता है।
मत पूछो क्या-क्या होता है ?
सारा प्रबन्ध ही गन्दा है।
कैसा यह गोरख धन्दा है !!३

चंचल है नहीं ठहरती है।
मरती है, जीती मरती है।
बनती है मुई सँवरती है।
बिगड़ी ऐसी न सुधरती है।।
चन्दे पर होता चन्दा है।
कैसा यह गोरख धन्धा है !!४

इसमें बाजार ठगों का है।
इसमें व्यवहार ठगों का है।
इसमें निस्तार ठगों का है।
कुल कारोबार ठगों का है।।
सच तेज झूठ का मन्दा है।
कैसा यह गोरख धन्धा है ।।५

धूर्तों के हाथों पिटे-कुटे।
माया के हाथों और लुटे।
फट गयी छातियाँ प्रान घुटे।
छुट सके न जब तक प्रान छुटे ॥
होता रन्दे पर रन्दा है।
कैसा यह गोरख-धन्दा है !!६

सुख ही सुख है दुख-भार नहीं।
किसको जीवन से प्यार नहीं।
कोई कहता कुछ सार नहीं।
हरदमें है खिजां बहार नहीं ॥
यह अन्धा या वह अन्धा है।
कैसा यह गोरख धन्दा है !!७

□

उजला ठग

कैसे लोग बने फिरते हैं।
सन्तों का सा रूप बनाये,
घर-घर मूड़ घने फिरते हैं।
कैसे लोग बने फिरते हैं ॥

मुँह में राम बगल मे छूरी,
मित्रों ही पर घात लगाये।
कालनेमि से राह रोकने—
को रहते हैं जाल बिछाये ॥
कैसे लोग बने फिरते हैं।

मधुर बीन सी बोली-बानी,
मानव-मृग छलते रहते हैं।
चालें अधिक बधिक से भी ये,
धूर्त छली चलते रहते हैं ॥
कैसे लोग बने फिरते हैं।

ऊँच निवास नीच करतूती ",
का अनुसरण सदा करते हैं।
मर जायें, दूसरे किसी विधि,
इस अभिलाषा पर मरते हैं॥
कैसे लोग बने फिरते हैं।
बातों-बातों में इनको मैं,
बात बनाते देख चुका हूँ।
सहृदय रसिकों की बातों में,
मैं ठग जाते देख चुका हूँ।
कैसे लोग बने फिरते हैं।
कैसे लोग बने फिरते हैं॥

□

भगत जी

रघुपति राघव राजाराम।
रघुपति राघव राजाराम॥
यहाँ नहीं घाटे का काम,
होते यहाँ आम के आम।
और गुठलियों के भी दाम,
काम काम का उसपर नाम॥
बोलो भाई आयी शाम,
रघुपति राघव राजाराम॥

रघुपति राघव राजाराम।
छुरी बगल में मुँह में राम,
भोले भाले मरें तमाम।
ठगो निकालो अपना काम,
मूड़ो बन जाओ हुआम॥
डालो दाना डालो दाम,
रघुपति राघव राजाराम॥

रघुपति राघव राजाराम।
हिन्दू और अह्ले इस्लाम,
करें दूर से तुम्हें सलाम।

बनो महन्त न लगे छदाम,
घर बन जाय पाँचवाँ धाम ॥
ध्वनि से गूँजे नगर तमाम,
रघुपति राघव राजाराम ॥

रघुपति राघव राजाराम।
भारी पेट अक़्ल के खाम,
आते जेरे दाम के आम।
उन्हें तमाशे दिखा तमाम,
उनको सुझा राम का नाम ॥
पर निकाल तू अपना काम।
रघुपति राघव राजाराम ॥

रघुपति राघव राजाराम।
सोचो नही हलाल-हराम,
तुम्हें काम से अपने काम।
नेक नाम हो या बदनाम,
दाम बिछाओ आयें दाम ॥
नगर नगर मे हो सरनाम।
रघुपति राघव राजाराम ॥

□

प्रश्न

क्या सचमुच ही सब अन्धे हैं?
अन्धे अगर नही तो फिर क्यो—
प्रचलित ये गोरख-धन्धे हैं।
क्या सचमुच ही सब अन्धे हैं?

नीरस में क्या रस समझे हैं?
पत्थर को पारस समझे हैं?
सहृदय चुप ही बस समझे हैं,
डाल चुके अपने कन्धे हैं?
क्या सचमुच ही सब अन्धे हैं?[1]

पौष-मार्गशीर्ष : शक १९०४]

जिसकी कृति का अर्थ नहीं है,
वह कवि क्या असमर्थ नहीं है?
उसकी बक-झक व्यर्थ नहीं है?
उसको और बहुत धन्धे हैं ॥
क्या सचमुच ही सब अन्धे हैं?२

□

सच्चे का बोलबाला

सच्चे का बोलबाला,
झूठे का मुंह है काला।
अदना हो या कि आला,
गोरा हो या कि काला।
तम हो कि हो उजाला,
लख पड़ता है निराला ॥
सच्चे का बोलबाला,
झूठे का मुँह है काला।

हो रंक या धनद हो,
हो नेक या कि बद हो।
हो प्रेम या कि क़द हो,
सद् हो कि असद् हो ॥
सच्चे का बोल बाला,
झूठे का मुँह है काला।

बातों से सच छिपाना,
रवि पर है रज उड़ाना।
खुल जायगा बहाना,
नादान बन न दाना ॥
सच्चे का बोलबाला,
झूठे का मुंह है काला।

सच्चे से मिल के झूठा,
पावन से मिल के जूठा।
दिखलाके जब अँगूठा,
इतना कहा, तो रूठा ॥

सच्चे का बोलबाला,
झूठे का मुंह है काला।

यक आदमी बड़ा था,
पर झूठ से मढ़ा था।
मैं उसके सर चढ़ा था,
तब मैंने यह पढ़ा था॥
सच्चे का बोलबाला,
झूठे का मुंह है काला॥

दो-चार दिन छिपाले,
जग में प्रसिद्धि पाले।
शाबासियाँ कमा ले,
झूठी दमक दिखाले॥
सच्चे का बोलबाला,
झूठे का मुंह है काला।

है गर्म तेरी मण्डी,
पर काठ की है हण्डी।
ऐ दंभी-दोषी-दंडी,
पापात्मा पाखण्डी॥
सच्चे का बोलबाला,
झूठे का मुंह है काला।

तू देश-हित करेगा—
क्या? पाप ले मरेगा।
अपराध सिर धरेगा,
यदि झूठ पर मरेगा॥
सच्चे का बोलबाला,
झूठे का मुंह है काला।

नित सत्य की लगन हो,
झूठों से दूर मन हो।
छल-दम्भ से जलन हो,
तो हाट में चलन हो॥
सच्चे का बोलबाला,
झूठे का मुंह है काला।

पौष-मार्गशीर्ष : शक १९०४]

है झूठ झूठ ही बस,
इसमें धरा है क्या रस ?
बेशर्म और नीघस—
बनकर, लहोगे अपयश ॥
सच्चे का बोलबाला,
झूठे का मुंह है काला ।
तप सत्य एक समझो,
यदि हो विवेक समझो ।
अघ झूठ नेक समझो,
तज दो कुटेव समझो ॥
सच्चे का बोलबाला;
झूठे का मुंह है काला ॥

□

अछूत

सेवक अगर अछूत न होते ।
कैसे आप अछूते रहते,
किसी तरह तो पूत न होते ।
सेवक अगर अछूत न होते ॥
भर जाता घर-घर पाखाना,
सिर पर पड़ता तुम्हे उठाना ।
मृतक ढोर भी ढोने पड़ते,
बहते रहते घिनके सोते ।
सेवक अगर अछूत न होते ।
सकल राज-पथ गन्दे होते,
कौन उठाता ? चन्दे होते ?
गाँव-गाँव मे महामारियाँ,
होती लोग भाग्य को रोते ॥
सेवक अगर अछूत न होते ।
इनको छूने से डरते हो,
स्वयम् कर्म क्या-क्या करते हो ।
अपने स्वजनों का भी यों ही,
क्या मल-मूत्र नही तुम धोते ।
सेवक अगर अछूत न होते ।

द्विज ! तुम देव-दूत कैसे हो ?
कहते हमे भूत कैसे हो ?
नेकी का बदला बद देते,
कार्य-क्षेत्र में हो विष बोते ।।
सेवक अगर अछूत न होते ।

□

जीवन-समर

क्षण-क्षण पर गहरा होता है,
यह कठिन महा रण जीवन का ।
आघातो-प्रत्याघातो से,
कोई न बचा क्षण जीवन का ।।

उद्भिज, स्वेदज, अण्डज, पिण्डज,
हैं एक दूसरे के दुश्मन ।
विधना ने रचकर सृष्टि किया,
उसमे संग्रामो का प्रचलन ।।
जय पाता सबल बुद्धि बल से,
निर्बल का होता पतन-निधन ।
जीना है जग मे तुम्हे अगर,
तो छोडो अब यह कायरपन ।।
"आजीवन लड़ते ही रहना,"
लो समझ पुण्य प्रण जीवन का ।
आघातो-प्रत्याघातो से,
कोई न बचा क्षण जीवन का ।।

पशुओ ने जंगल के जंगल,
चर डाले और उजाड दिये ।
मनुजों ने पशु-भक्षण करके,
हाडो के लगा पहाड दिये ।।
कितने ही शेरो ने बढकर,
सीने मनुजों के फाड़ दिये ।
कुछने छल-बल से विजय प्राप्त--
कर जयके झण्डे गाड़ दिये ।।

जो घाव लगा वह हरा रहा,
अच्छा न हुआ व्रण जीवन का
आघातों-प्रत्याघातों से,
कोई न बचा क्षण जीवन का।

प्राणी के आते ही आते,
रण धूर्तों से ठन जाता है।
पद-पद पर जीवन के पथ में,
वह खड़ी आपदा पाता है।।
कष्टों से होकर बे-परवा
वह आगे बढ़ता जाता है।
निर्भय होकर जय पाता है,
वह भय न किसी से खाता है।।
दिन-रात जूझने को उत्सुक,
रहता है कण-कण जीवन का।
आघातों - प्रत्याघातों से।
कोई न बचा क्षण जीवन का।।

धूम यही हो ग्राम-ग्राम में,
काम करो, बस काम करो।
करो राष्ट्र-संगठन और,
अरि-दल का काम तमाम करो।।
जब तक न मृत्यु की गोदी में,
चिर शान्ति हेतु विश्राम करो,
तब तक सोना हराम समझो;
संग्राम करो-संग्राम करो।।
पौरुष दिखलाते रहो निरन्तर;
है जो लक्षण जीवन का।
आघातों-प्रत्याघातों से,
कोई न बचा क्षण जीवन का।।

◻

हृदय !

हृदय ! तुम बने रहो बलवान ।
अपने तो सर्वस्व तुम्हीं हो ,
तन हो या हो जान ।
है बस हाथ तुम्हारे ही अब ,
पतन और उत्थान ॥
हृदय ! तुम बने रहो बलवान ।

तुमको निर्बल देख खिसकता ,
रहा-सहा भी ज्ञान ।
स्वावलम्ब औ स्वाभिमान की ,
तेरे हाथ कमान ॥

हृदय ! तुम बने रहो बलवान ।
तुमसे ही तो इस जग मे है ,
योद्धाओं का मान ।
बिना तुम्हारे हो जाता है ।
बाघ बटेर समान ॥
हृदय ! तुम बने रहो बलवान ।

सुख दुख की परवा न करो कुछ ,
कुछ रखते हो यदि ज्ञान ।
निज कर्तव्य कर्म में तत्पर ,
संतत रहो सुजान ॥
हृदय ! तुम बने रहो बलवान ।

□

परिवर्तन

आज फिर बदल रहा संसार ।
मची विश्व में विषम क्रान्ति है ;
जिसका वार न पार ।
आज फिर बदल रहा संसार ॥

जर्जर महल ढह रहे हैं फिर ;
हुई काल - हुङ्कार ।

हरने खोला विषम नयन है,
-हुआ सृष्टि संहार ।।
आज फिर बदल रहा संसार ।

मानव ने मानव को चूसा,
बही रक्त की धार ।
सिद्ध हुई दानवी सभ्यता,
सुबुध रहे धिक्कार ।।
आज फिर बदल रहा संसार ।

व्यर्थ बुद्ध की शिक्षा सारी,
ईसा का अवतार ।
और नही तो फिर क्यो मचती,
इतनी मारामार ??
आज फिर बदल रहा संसार !

धर्म कहाँ रह गया धर्म है,
धन जीवन-आधार ।
आज उसी धन-जन पर होते,
कैसे विकट प्रहार ।।
आज फिर बदल रहा संसार !

होगा यह तूफान शान्त फिर,
पहुँचेगे हम पार ।
जहाँ मनुष्य मनुष्य बनेगा,
होगा एका कार ।।
आज फिर बदल रहा ससार !

□

बेकार न बन

मैं कहता हूँ बेकार न बन ।
है झूठ पाप का मूल मूढ़ !
तू झूठो का सरदार न बन ।
पापो से बोझिल है पृथ्वी,
तू और भूमि का भार न बन ।।
मे कहता हूँ बेकार न बन ।।

निज लाभ-लोभ में फँसा हुआ,
मत लूट निरीह प्रजाओं को।
यों मानवता को छोड़ बहा—
मानव-कुल में अंगार न बन॥
मैं कहता हूँ बेकार न बन।

सच तो यह है सब हैं समान,
है सारा विश्व कुटुम्ब एक।
संकीर्ण हृदय बनकर पागल!
तू आँगन में दीवार न बन॥
मैं कहता हूँ बेकार न बन।

तू चूस चुका है रक्त बहुत,
जर्जर सब तेरे बन्धु हुए।
अब तो दे प्राण छोड़ उनके,
यों रावण का अवतार न बन॥
मैं कहता हूँ बेकार न बन!

बन्दी बनते हैं स्वयम् कभी,
जो औरों को बन्दी करते।
तेरा ही गला कटे जिससे,
तू वह तीखी तलवार न बन॥
मैं कहता हूँ बेकार न बन।

रहने दे स्वस्थ समाज नरक के—
कीड़े! विष न अधिक फैला।
जो सर्वनाश को उद्यत हो,
बढ़ कर ऐसा आज़ार न बन॥
मैं कहता हूँ बेकार न बन!

चल-फिर कर देख ज़रा दुनिया,
किस पथ पर जाने वाली है।
घिरकर घर के ही घेरे में,
तू घूम घूम परकार न बन॥
मैं कहता हूँ बेकार न बन!

ठगता है क्या दुनिया को तू,
अपने को धोखा देता है।

लेता है नाम दीन का तू,
बेदीन अरे दीदार ! न बन ॥
मैं कहता हूँ बेकार न बन !
जो कुछ है तू जैसा है तू,
लोगों ने है सब समझ लिया।
बनने से लोग बनायेंगे,
मैं कहता हूँ बेकार न बन ॥
मैं कहता हूँ बेकार न बन !

□

मुनाफ़ाख़ोर

मैं मुनाफ़ाख़ोर हूँ,
चाँदी हमेशा काटता हूँ।
ख़ून करके राष्ट्र का मैं,
ख़ून अपना चाटता हूँ ॥
मैं मुनाफाखोर हूँ,
चाँदी हमेशा काटता हूँ।
मर रहे है दीन, मर जायें,
मुझे परवा नही है।
रक्त-नद भर जायें,
भर जायें मुझे परवा नहीं है ॥
धन अगर होगा जहाँ,
तो धर्म की कोई कमी है?
पुण्य का पथ मैं अभी तो।
पाप से ही पाटता हूँ ॥
मैं मुनाफ़ाख़ोर हूँ,
चाँदी हमेशा काटता हूँ।
हो अगर आमद मुझे,
मंजूर है सबकी ख़ुशामद।
है किसे चिन्ता, मुझे—
दुनिया कहेगी नेक या बद ॥
गँठकटों ने कान पकड़े,
देखकर मेरी सफ़ाई।

आँख का अन्धा बनाकर,
गाँठ सबकी काटता हूँ ॥
मैं मुनाफ़ाख़ोर हूँ,
चाँदी हमेशा काटता हूँ।
लोभ में दुनिया फँसी है,
कह गये हैं दास तुलसी।
दे गये उपदेश मुझको,
स्वप्न में हैं ख़ास तुलसी ॥
स्वर्ग हो या नरक—
मरने पर मिले तो फ़ायदा क्या ?
स्वर्ग भोगूं, फिर नरक—
मैं ठाट ऐसे ठाटता हूँ ॥
मैं मुनाफ़ाख़ोर हूँ,
चाँदी हमेशा काटता हूँ।

□

विजया-दशमी

सुमन खिलाती घर - घर आयी,
अम्बर - छवि अवनी पर आयी।
मलय - समीरण 'सर - सर' आयी,
बनको कुछ का कुछ कर आयी ॥
भाई ! विजयादशमी भायी।
आयी विजयादशमी आयी ॥
कमल सरोवर मे खिल - खिलकर,
हँसते हैं मधुपों से मिलकर।
जले विरह में जो तिल-तिलकर,
पीते मधुकोषों में पिल कर ॥
छायी शरद चाँदनी छायी।
आयी विजयादशमी आयी ॥
रणशूरों में आया पानी,
उमग उठी फिर नयी जवानी।
चमचम चमकी कुटिल कृपानी,
लिखने को निज अमर कहानी ॥

रक्त शत्रु का भर-भर लायी।
आयी विजयादशमी आयी॥

रावण-राम रण स्मृति आयी,
सम्मुख आदि सुकवि-कृति आयी।
कायरता भागी, धृति आयी,
याद पुरानी संस्कृति आयी॥
पायी हाँ, जीवन-निधि पायी।
आयी विजयादशमी आयी॥

है त्योहार आर्य-वीरों का,
है यह दिवस धर्म-धीरों का।
चढ़ी कमान खिंचे तीरों का,
अवसर जय की तदवीरो का॥
खायी हार शत्रु ने खायी।
आयी विजयादशमी आयी॥

□

राष्ट्रीय तरंग

आइनए हिन्द

(हम पहिले क्या थे)

वे भी दिन थे कभी, दम भरती थी दुनिया अपना,
था हिमालय की बुलंदी पै फरेरा अपना।
रंग अपना था जमा, बैठा था सिक्का अपना,
कोई मैदाँ था, वहाँ बजता था डंका अपना।

हमसरी[1] के लिए अपनी कोई तैयार न था;
काम अपने लिये कोई कहीं दुश्वार[2] न था।

खुशबयाँ[3] ऐसे थे, जादू का असर रखते थे;
कोई फन बाक़ी न था इल्मो-हुनर रखते थे।
हम किसी का न कभी खौफ़ो ख़तर रखते थे;
दिल बला का, तो कयामत का जिगर[4] रखते थे।

कोई शमशेरो[5]-कलम में न था सानी[6] अपना;
पानी-पानी हुये दुश्मन वो था पानी अपना।

एकजाँ क़ौम थी आपस मे मुहब्बत वह थी;
फैज[7] आलम[8] को पहुँचता था सखावत[9] वह थी।
दिले दुश्मन को हिला देते थे कूवत वह थी,
मौत से भी नही हम डरते थे हिम्मत वह थी।

सर फिरा जिसका, दिखाया उसे अक्सर नीचा;
सर के रहते कभी हमने न किया सर नीचा।

धर्म के, प्रेम के दरिया थे बहाये हमने;
एक समझे थे सदा अपने पराये हमने।
'भेद' क्या-क्या नही लोगो को बताए हमने;
आदमी बन गये 'गुर' ऐसे सिखाये हमने।

जानवर को भी हम इन्सान बना देते थे;
इल्म की अक्ल की यक कान[10] बना देते थे।

---

१. समता। २. कैठिन। ३. सुवक्ता। ४. कलेजा। ५. तलवार। ६. जोड़। ७. बहु-लाभ। ८. संसार। ९. दान उदारता। १०. खानि।

पौष-मार्गशीर्ष : शक १९०४]

राम और कृष्ण की बातें तो पुरानी समझो ;
अब फ़साना[१] उन्हें समझो कि कहानी समझो।
जो समझना हो तुम्हें राज़े[२]-निहानी[३] समझो ;
बुद्ध भगवान की शंकर की ज़ुबानी समझो।
मुक्ति क्या चीज़ है संसार में बन्धन क्या है ;
और बन्धन में बँधा आपका यह मन क्या है।

तने - इन्सान[४] में यह रूह[५] का जल्वा[६] क्या है ?
एक दुनिया तो है यह दूसरी दुनिया क्या है ?
धर्म क्या चीज़ है ईमान का नक्शा क्या है ?
शास्त्र क्या कहते हैं और वेद का दावा[७] क्या है ?
लापता जो था पता उसका लगाया हमने ;
एक आलम नया आलम का दिखाया हमने।

इल्म[८] मुमकिन न था जिसका, किया उसको मालूम ;
नूरे-ईमाँ[९] से किया कुफ़्र[१०] को हमने मादूम[११]।
दीनो-दुनिया का ज़माने को सुझाया मफ़हूम[१२] ;
दोनों आलम में हुआ शोहरा[१३] पड़ी अपनी धूम।
धर्म का तत्व समझकर लिखी गीता हमने ;
योग के बल से बली काल को जीता हमने।
एक मैदान था वीराँ,[१४] जो चमन हमसे हुआ ;
सत्य का, प्रेम का दुनिया में चलन हमसे हुआ।
भंग अपना न कभी कोई वचन हमसे हुआ ;
हम हुए फ़ख़्रे-वतन[१५] फ़ख़्रे वतन हमसे हुआ।
साफ दिल सबके हुये की वो सफाई हमने ;
रोशनी ज्ञान की दुनिया को दिखायी हमने।
दान देने में न कुछ जान को समझा हमने ;
सच्ची बलि अपने ही बलिदान को समझा हमने।
जान से भी सिवा सम्मान को समझा हमने ;
शान पर अपनी रहे आन को समझा हमने।
धर्म को छोड़ के हर्गिज़ न हुए हम बेदीं[१६] ;
खाल खिंचवाई है, हैं हड्डियाँ अपनी दे दीं।

---

१. कथा। २. भेद। ३. गुप्त। ४. मनुष्य-शरीर। ५. आत्मा। ६. प्रकाश। ७. कथन। ८. ज्ञान। ९. धर्म का प्रकाश। १०. नास्तिकता। ११. नष्ट। १२. अर्थ। १३. प्रसिद्धि। १४. उजाड़। १५. जन्म भूमि का गर्व। १६. अधर्मी।

मुल्क और क़ौम पै हम जान फ़िदा करते थे ;
वह वफ़ादार थे, दम रहते वफ़ा करते थे।
नातिक़ा[1] बन्द मुख़ालिफ़[2] का किया करते थे ;
हक़ जो था हुब्बे[3]-वतन का वो अदा करते थे।
नाज़[4] था हमको फ़ने-जंग[5] की उस्तादी पर ;
सर झुकाते न थे मर मिटते थे आज़ादी पर।

जंग में हाथ सदा पड़ता था बढ़कर अपना ;
दुश्मनों का था जिगर और था खंजर अपना।
दम में सर कर लिया मैदाँ, कि दिया सर अपना ;
पर्दे पर रुए-ज़मीं के न था हमसर अपना।
रास्त[6] वह तीर थे दुश्मन की कजी[7] पर बैठे ;
कितने ही मूँज़ी[8] उड़ा देते थे हम घर बैठे।

रश्के-गुलज़ार[9] था यह फूला-फला अपना वतन ;
सर्वो नाज़ा[10] थे कहीं चर्बज़ुबां थी सौसन।
हम थे जी-जान से समझे इसे अपना जीवन ;
इसपे कुरबान किया हमने सदा तन, मन, धन।
इसकी सेवा से कभी हाथ न खींचा हमने ;
ख़ून अपना दिया और ख़ून से सींचा हमने।

इसका फल यह था कि यक बहार आई थी ;
नक्शा जन्नत[11] का था ऐसी चमन-आराई थी।
पाँव रखती थी सँभाले जो सबा[12] आई थी ;
लुत्फ़ था दौलतो सख़्त[13] की घटा छाई थी।
ऐसा कंचन था बरसता, हैं तरसती आँखें ;
देखने को थीं ज़माने की बरसती आँखें।

कौन था जो मए-उल्फ़त[14] का तलबगार[15] न था ;
कौन दिल था जो आनन्द से सरशार[16] न था।
थी वह आज़ादी ग़ुलामी से सरोकार न था ;
आप अपनी थी मदद, ग़ैर मददगार न था।
कौन घर था न थे इशरत[17] के तराने[18] जिसमें ?
वह जगह कौन थी, सुख के न थे थाने जिसमें ?

---

१. बोलना। २. शत्रु विरोधी। ३. जन्मभूमि का प्रेम। ४. गर्व। ५. युद्ध। ६. सीधे। ७. कुटिलता। ८. हिंसक। ९. वाटिका। १०. गर्वित। ११. स्वर्ग। १२. पूर्वी पवन। १३. संपत्ति। १४. प्रेम-मद्य। १५. इच्छुक। १६. मस्त। १७. सुख-भोग। १८. राग।

पौष-मार्गशीर्ष : शक १९०४]

की भी हिंसा तो फ़कत नफ़्स[१] को मारा हमने ;
अपने ही बाजुओं का रक्खा सहारा हमने।
गर किया तो किया व्यसनों से किनारा हमने ;
लोक के साथ ही परलोक सँवारा हमने।
लूटना सुख का समझते थे लुटाना दिल का ;
चोरी में जानते थे सिर्फ चुराना दिल का।
आई भी कोई मुसीबत, न मुसीबत समझी ;
हासिले-जिंदगी बस, हमने मुहब्बत समझी।
वक्त की कद्र की और इल्म की कीमत समझी ,
जर्रा से लेके फ़लक[३] तक की हकीक़त समझी।
देवताओ पे फजीलत[४] का था दावा हमको ,
ब्रह्म से ही मिला ब्रह्मा का भी रुतबा हमको।

□

१. मन का दमन किया। २. जीवन का पल। ३ आकाश। ४. गुरुता।

हम अब क्या हैं

दफ़अतन[१] रंग ज़माने का कुछ ऐसा बदला ;
भाई से भाई भिडा बाप से बेटा बिगडा।
ख़ानाजंगी[२] से हुई घर मे कयामत[३] बरपा ;
एक को दूसरा खा जाने को तैयार हुआ।
तीन तेरह हुए जब हिंद में भी फूट पड़ी ;
सारी दुनिया की मुसीबत भी यही टूट पडी।
जो ज़माना था कभी फिर वो ज़माना न रहा ;
इल्मो-दौलत का यहाँ पर वो ख़ज़ाना न रहा।
साज़ वह ऐश था इशरत का तराना न रहा ;
अपनी शौकत का वो घर-घर में फ़साना न रहा।
अपनी वो बातें सभी राम-कहानी ठहरीं ;
शायरी ठहरी तबीअत की खानी ठहरीं।
गैरो के हाथ पड़े और हुई जिल्लत[५] अपनी ;
फिर तो रुख़सत हुई वह फहमो-फरासत[६] अपनी।

१ अचानक। २. गृह-कलह। ३. प्रलय। ४. आतंक। ५.अपमान। ६. बुद्धिमत्ता।

ख़्वाब सी हो गयी वह ताक़तो-क़ुदरत[1] अपनी ;
हाय ! मिट्टी में मिली जुरअतो हिम्मत अपनी ।
सींचते नाले हैं हर वक्त जरस की सूरत ;
आशियाँ[2] हमको बना अब तो कफ़स[3] की सूरत ।

मिट गए सब वो हुनर सनअतो[4] हिरफत[5] न रही ।
हाथ में अपने किसी शय[6] की तिजारत न रही ।
दिल में भी अहले वतन की वो मुहब्बत न रही ;
सिफ़लापन[7] सीख लिया हमने, शराफत न रही ।
जाके गैरों की बजाई जो सलामी हमने ;
शौक से डाल लिया-तौक़े-गुलामी हमने ।

कौन वह दुख है, नहीं हमको जो सहना पड़ता ,
बैल ही की तरह दिन रात है बहना पड़ता ।
जुल्म सहते हुए खामोश ही रहना पड़ता ,
नाक में आया है दम, है यही कहना पड़ता ।
हाय ईश्वर ये जिलाने का करीना[8] क्या है ;
मौत दे मौत गुलामी मे ये जीना क्या है ।

रंजो-इफलास[9] ने घर अपना बना रक्खा है ;
दिन दहाड़े लुटा अब हिंद में क्या रक्खा है ।
बेगुनाहो को सजावारे सज़ा[10] रक्खा है ,
मुह से कुछ बोले, तो बस, हुक्मे-कज़ा[11] रक्खा है ।
कैसा इंसाफ अजी साफ गुलामों के लिए ,
साफ कहते हैं वो-इंसाफ गुलामो के लिए ।

सामने गम का है दरिया नहीं जिसका साहिल[12] ,
और उधर कूवतें अपनी जो थी, सब हैं बातिल[13]।
जोते बोएँ तो हम, और गैर लें उसका हासिल ;
खाते हैं खूने-जिगर आँसू सदा पीते हैं ;
जीते होगे कोई, पर हम तो नहीं जीते है ।

इस क़दर सनअतो-हिरफ़त[14] की हुई पामाली[15] ;
है तिजारत भी तो पाते हैं कमीशन खाली।

---

१. विद्वता । २. नीड । ३. पिंजड़ा-बन्दीगृह । ४. शिल्पकला । ५. कलायें । ६. पेशा । ७. नीचता । ८. तरीका । ९. दीनता । १०. दण्डनीय । ११. मृत्यु । १२. किनारा । १३. मिथ्या-व्यर्थ । १४. उपज । १६. कमी ।

पौष-मार्गशीर्ष : शक १९०४]

ग़ैर के हाथों में कुल काम हैं मुल्की माली ;
बेबसी ऐसी है अपनी कि वकीले हाली—
"आ पड़ी ग़ैर के हाथों में हर एक बात अपनी ;
अब न दिन अपना रहा, और न रही रात अपनी।

हम तो वीरान हुए और वो गुलज़ार हुये ;
भेड़ बनकर जो मिले, भेड़िये ख़ूँख़ार हुये।
पार सीने के हुए ज़ुल्म के तहवार हुए ;
नाम आज़ादी का लेते ही गिरफ्तार हुए।
कैसा इंसाफ़ है ग़ैरों की अदालत ठहरी ;
जुर्म अपने लिए भारत की मुहब्बत ठहरी।

नौकरी के सिवा हमको कोई पेशा न रहा ;
कोई हथियार बजुज़[1] हथा में वैसा न रहा।
शेर हम कैसे रहें, जबकि बेशा[2] न रहा ;
हाय अगलाख़ ज़माना वो हमेसा न रहा।
बेच दी हाथ में ग़ैरों के जहानत[3] अपनी ;
चंद पैसो में बिके हैं यही कीमत अपनी।

रह गई शान न वह अगली-सी शौकत बाक़ी ;
आई हिस्से में ग़ुलामी रही ज़िल्लत बाक़ी।
कैसे फिर रहती भला दौलतो-सरवत बाक़ी,
कोई भी रह गयी दुनिया मे मुसीबत बाक़ी ?
ख़ान-ए-हिंद[4] में आकर न जो मेहमान हुई ;
रोज़ गर्दिश रही कब जान न हलकान हुई ?

छाई ग़फ़लत तो उसे मुल्क ने मस्ती समझा ;
चीज़ बेहद जो गरां[5] थी उसे सस्ती समझा।
होता वीरान गया, बस्ती है बस्ती समझा ;
पस्त[6] होता गया, लेकिन नहीं पस्ती समझा।
ग़ार[7] में जाके पड़ा अब है निकलना मुश्किल ;
ऐसा बीमार है, जिसका है संभलना मुश्किल।

मादरे-हिंद[8] के बच्चो पे मुसीबत आई ;
गोलियाँ गन[9] से चलीं और कयामत आई।

---

१. अतिरिक्त। २. वन। ३. बुद्धिमत्ता। ४. भारत-गृह। ५. मंहगी। ६. नीचा।
७. गड्ढा। ८. भारत-माता। ९. बंदूक।

खोले घूँघट गए यों खतरे में इज्जत आई ;
हाय ! अफसोस नहीं फिर भी तो गैरत[1] आई ।
उनके पैरों पे रही रक्खी पगड़ी हमने ;
पेट के बल चले और नाक भी रगड़ी हमने ।

□

---

१. लज्जा ।

हम आगे क्या होने वाले हैं

कौम की आँखों से परदा सा लगा हटने अब ;
श्री तिलकजी जो डटे, लोग लगे डटने अब ।
खौफ़े-बेजा[1] था जो दिल में वो लगा छँटने अब ;
देखी हालत जो ये, गैरत से लगे कटने अब ।
जान आई, हुई फिर कौम में जुंबिश[2] पैदा ;
और आजादी की फिर से हुई ख्वाहिश[3] पैदा ।

मुल्क जब नशे मे आजादी के सरशार[4] हुआ ,
आगे गाँधीजी बढ़े प्रेम का अवतार हुआ ।
दिल में फिर पैदा स्वदेशी के लिए प्यार हुआ ;
तारे-जर[5] फिर हमें 'चर्खे' का कता-तार हुआ ।
'सिक्का' 'मलमल' की जगह बैठ गया 'खादी' का ;
हर तरफ शोर मचा मुल्क में आजादी का ।

देवता से भी जियादा हुई इज्जत उनकी ;
कोने-कोने मे जहाँ के हुई शोहरत[6] उनकी ।
शांति और प्रेम भरी हाय, वो मूरत उनकी ;
राज गैरों का है, पर दिल में हुकूमत उनकी ।
वह जो सरदार हुए, काफ़िला-सालार[7] हुए ;
वार जितने हुए सरकार के, बेकार हुए ।

पहले थी कौंसिलों में सिर्फ़ हवालातों की धूम ;
अब हुई काम की धूम और कमालात की धूम ।

---

१. व्यर्थ-भय । २. गति । ३. इच्छा । ४. मस्त । ५. सीने का तार । ६. प्रसिद्धि ।
७. समूह-पति ।

मच गई मुल्क में वह तर्के-मवालात[1] की धूम ;
जेल की धूम मची और हवालात की धूम ।
नौजवाँ मुल्क के चुन-चुन के गिरफ्तार हुए ;
क़ौम के वास्ते सर देने को तैयार हुए ।

मुत्तफ़िक[2] होके मुक़ाबिल जुजो कुल आए ;
कोई भी ईज़ा[3] हो मरने के लिए तुल आए ।
होंगे "आज़ाद" यही करते हुए गुल आए ;
फूल काँटों में खिंचे, दाम[4] मे बुलबुल आए ।
पाँव रखना हुआ दुश्वार हुआ वह रेला ;
लग गया जेल में याराने-वतन[5] का मेला ।

कौम पर कर दिए क़ुर्बान दिलो-जाँ जिसने ;
दिल में पैदा किए आज़ादी के अरमाँ जिसने ।
आत्मबल से दी पलट गर्दिशे-दौराँ[6] जिसने ;
और मुहैया[7] किए बेदारी[8] के सामाँ जिसने ।
क़ैद में ले गयी उस गाँधी को नौकरशाही ;
मादरे-हिंद तड़पती रही मिस्ल-माही[9] ।

आसमाँ राह मे फिर काँटे नए बोने लगा ;
जिसका अंदेशा था हर सिम्म[10] वही होने लगा ।
मुल्क मे सोने की आदत थी वो फिर सोने लगा ;
देखने वालो का दिल देखके यह रोने लगा ।
संगठन ही रहा वह, और न दुरुस्ती बाकी ;
चुस्ती जाती रही वह, रह गयी सुस्ती बाकी ।

है तो विश्वास, मगर है नही हिम्मत बाकी ;
शर्म कुछ है भी जो दिल में कहाँ गैरत बाकी ।
काम तो कुछ नही हाँ सिर्फ है हुज्जत बाकी ।
और आपस मे है अफसोस कूदूरत[11] बाकी ।
दर्द वैसा ही रहा कोई भी दरमाँ[12] न हुआ ;
है गुलामी वही आज़ादी का सामाँ न हुआ ।

---

१. असहयोग । २. सहमत । ३. कष्ट । ४. जाल । ५. देश-प्रेमी । ६. संसार-चक्र । ७. एकत्र । ८. जागृति । ९. मछली । १०. ओर । ११. मालिन्य । १२. इलाज, चिकित्सा ।

हो जो ग़ैरत, उठें भारत के दुलारे उट्ठें,
मुल्क की जान उठें कौम के प्यारे उट्ठें,
अब हैं ले दे के यही अपने सहारे उट्ठें,
जोश के शोले[1] न ठंढे हों शरारे[2] उट्ठें।
फिर बुझाए न बुझे आग लगा दें ऐसी ;
एक हो सबकी लगन, लाग लगा दें ऐसी।

देर है किसलिये गर आते हों आएँ मिलकर ;
"हाथ" अपने वो जमाने को दिखाए मिलकर।
हक मिटाते हैं जो वह उनको मिटाएँ मिलकर,
भाई-भाई से मिलें माओं से माएँ मिलकर।
हक पै अड़ जायें फिर ऐसे, कि हटाए न हटें ;
हौसले ऐसे बढ़ें दिल के, घटाए न घटें।

देगी मुँहमाँगी मुरादें[3] ये सदाकत[4] हमको ;
फिर हटा सकती नहीं कोई भी ताकत हमको।
होगी मालूम मुसीबत न मुसीबत हमको ;
तब नजर आएगी आज़ादी की सूरत हमको।
ख़ूँन से अपने सिचें, खाद भी हो ख़ादी की ;
तब कहीं फूले-फले बेल ये आज़ादी की।

देखना; नाम बुजुर्गों का मिटाना न कहीं ;
पैर आगे जो बढ़ा है वो हटाना न कहीं।
हौसिला दिल का बढ़ा है, तो घटाना न कहीं ;
तुम पै है सबकी नजर, नाक कटाना न कहीं।
मादरे-हिंद के फरज़दे-दिलावर[5] तुम हो ;
कौमे-बदबख़्त के तो बख़्ते[6] के अख़्तर[7] तुम हो।

ज़िंदगी मुफ्त न अब कौम को बरबाद करो ;
शान वह अपने बुजुर्गों की ज़रा याद करो।
अपनी उजड़ी हुई बस्ती को फिर आबाद करो ;
सुर्ख़रु दुनिया में हो मुल्क को आज़ाद करो।
दूर हो रंगे गुलामी न मुसीबत फिर हो ;
मुल्क अपना है, न क्यों अपनी हुकूमत फिर हो ?

---

१. लपटें। २. चिनगारियाँ। ३. मनोरथ। ४. सत्य। ५. वीर-पुत्र। ६. भाग्य। ७. तारे।

कब्जे में जिनके कभी तख्त रहें, ताज रहें ;
इल्मो-फ़न में भी जमाने के जो सरताज रहें।
वह गुलामी करें और गैरों के मोहताज रहें ;
नित नए जुल्म बने कोढ़ में यों खाज रहें।
जिस जगह जायें वहीं रोज हो जिल्लत अपनी ;
हाय ! मिट्टी में मिले इस तरह इज्जत अपनी।

तेगे-हिम्मत मे हों जौहर जो दिखाएँ अब तो ;
हस्ती अपनी भी जमाने को जताएँ अब तो।
"मातरम्-बंदे" की गूँज उट्ठे सदाएँ[1] अब तो ;
तान आजादी की घर-घर मे सुनाएँ अब तो।
जोश दिल में हो भरा प्रेम से हो तर आँखें ;
मारे हैरत के फलक[2] की भी हो पत्थर आँखें।

तब तो हम जुल्म को दुनिया से उठाकर मानें ;
बेबसी और गुलामी को मिटाकर मानें।
सिक्का आजादी का दुनिया में बिठाकर मानें ;
जोर हिम्मत का सदाकत का दिखाकर मानें।
दिल में हिंसा की जगह लुत्फो-मुहब्बत भर दें ;
मादरे-हिंद का फिर और ही नक्शा कर दे।

शान एक चेहरे पे हो और ताज हो सर पर बाँका ;
बिजली की सी हो चमक उसके वदन से पैदा।
हाथ में उसके 'त्रिशूल' और हो हँसता चेहरा ;
पीठ पर हाथ धरें प्रेम से कहकर बेटा।
जाऊँ कुर्बान मैं कुर्बानी से दिलशाद हुई ;
हिम्मतें थी ये तुम्हारी कि मैं आजाद हुई।

□

---

१. शब्द। २. आकाश।

राष्ट्र-गीत

जय-जय भारत की जय हो।
यह प्यारा देश हमारा;
जीवन का एक सहारा।
सत् और अहिंसा द्वारा,
चमका सौभाग्य - सितारा।
परवशता से छुटकारा,
मिल गया, दूर दुख सारा।
अब है स्वतन्त्र निर्भय हो।
जय-जय भारत की जय हो ॥१

उट्ठी विजयध्वनि घहरा,
हर जगह तिरंगा फहरा।
दिल धड़क रहा था ठहरा,
सागर उमंग का लहरा।
है रंग जम रहा गहरा,
अब लगे प्रेम का पहरा।
समता हो शांति विनय हो।
जय-जय भारत की जय हो ॥२

यह धन स्वदेश का धन है,
इसका तन मन जीवन है।
हम अलि यह खिला चमन है;
हम बन यह सावन घन है।
हम सबका यही वतन है,
बलि-बलि इस पर जन-जन है।
यह अजर-अमर-अक्षय हो।
जय-जय भारत की जय हो ॥३

कितना बलिदान हुआ है,
तब यह सम्मान हुआ है।
इसका उत्थान हुआ है,
हमको अभिमान हुआ है।

पौष-मार्गशीर्ष : शक १८०४]

घर - घर जय - गान हुआ है;
जी उठा जवान हुआ है।
अब आगे बढ़े उदय हो।
जय-जय भारत की जय हो ॥४

□

राष्ट्रीय गीत

जयति भारत जय हिन्दुस्तान।

सुरसरि सलिल सुधा से सिंचित, मंजुल मलय समीर संचरित,
सुषमा सब सुरपुर की संचित, करते सुर गुण - गान।
जयति भारत जय हिन्दुस्तान ॥

पुण्य - पुंज पावन पृथ्वी पर, धीर वीर वर धर्म - धुरन्धर,
सत्य - अहिंसा - दया - सरोवर, भुक्ति - मुक्ति की खान।
जयति भारत जय हिन्दुस्तान ॥

बँधा जगत् में तेरा शाका, अलख कर दिया जिसको ताका,
चूम रही नभ विजय - पताका, फहरा रहा निशान।
जयति भारत जय हिन्दुस्तान।

बैरी भी तूने अपनाये, नर - पशु तूने मनुज बनाये,
जग में सुयश - वितान तनाये, छेड़ी सुखमय तान।
जयति भारत जय हिन्दुस्तान ॥

घन बन कर जगती में छाया, नीरस बन मे रस बरसाया,
स्वाति - सुधा चातक तक पाया, ज्ञानामृत कर पान।
जयति भारत जय हिन्दुस्तान।

हर कर भी तू हरा नहीं है, डर कर भी तू डरा नहीं है;
मर कर भी तू मरा नहीं है, रक्तबीज की शान।
जयति भारत जय हिन्दुस्तान ॥

कण्टक - कण्ट कटे अब तेरे, बाधक बिघ्न हटे अब तेरे;
उठ कर पुत्र डटे अब तेरे, निश्चित है उत्थान।
जयति भारत जय हिन्दुस्तान।

ये स्वतन्त्रता के मतवाले, तेरा तौक गले में डाले;
कहते हैं जो चाहे पा ले निर्लेग अरमान।
जयति भारत जय हिन्दुस्तान ॥

कभी पैर पीछे न पड़ेंगे; स्वत्व - समर में शूर लड़ेंगे,
बन जायेंगे यदि बिगड़ेंगे, बनें अमर, दें जान।
जयति भारत जय हिन्दुस्तान ।।
होंगी अष्ट सिद्धियाँ दासी तेरे कोटि - कोटि ये वासी,
समझें तुझको काबा - काशी, धर्म और ईमान ।।
जयति भारत जय हिन्दुस्तान ।।

□

आशा

जब दिल दुख से घबराता है, भय से शरीर थर्राता है।
जब साहस पीठ दिखाता है, पद दृढ़ता का हट जाता है।।
तब तू ढाढ़स बँधवाती है।
क्या सब्ज बाग़ दिखलाती है।।१
जब घोर विपद्-घन घिरते हैं, सिर पर दुख-ओले गिरते हैं।
नर बने बावले फिरते हैं, प्रिय प्राण डूबते तिरते हैं।।
तब तू ही उन्हें बचाती है।
नौका बन कर आ जाती है।।२
दौर्भाग्य-दुष्ट जब आता है, नित नई आपदा लाता है।
मन सुहृदों का फिर जाता है, आँखें हर एक दिखाता है।
तब प्राण-संगिनी बनती है।
तुझ से बस गाढ़ी छनती है।।३
जब जब नर व्याकुल होता है, खाना दुख-सर मे ग़ोता है।
अपने अभाग्य पर रोता है, जब हाथ धैर्य से खोता है।।
तब करुणा तुझको आती है।
तू उसका मन बहलाती है।।४
जब चिन्ता-चिता धधकती है, पीड़ा की लपट लपकती है।
मुंह खोल मृत्यु पथ तकती है, कर यत्न बुद्धि भी थकती है।।
तब झट चुपके से आती है।
तू आश्वासन दे जाती है।।५
जब व्यथा व्यथित मन करती है, दुश्शंका सुख सब हरती है।
जब भूख प्यास भी मरती है, निद्रा भी आते डरती है।।
तब आकर थपकी देती है।
सब मनों-व्याधि हर लेती है।।६

दुख मुझे लिखा क्या थोड़ा था, क्या विधि का घोड़ा छोड़ा था।
दिल दुःखों ने यो तोड़ा था, मैंने सिर अपना फोड़ा था ॥
यदि आशा तू न पकड़ लेती।
निज-बन्धन मे न जकड़ लेती ॥७

जब कुटिया मे दुख पाता हूँ, आशा के महल बनाता हूँ।
पद पीछ नही हटाता हूँ, जब तुझे दाहिने पाता हूँ ॥
तुझ पर वारूँ तन मन आशा।
तू ही है जीवन-धन आशा ॥८

□

धीर नर

पड़े विपद पर विपद किन्तु पद पीछे नही हटाते हैं,
अपना रोना कभी न रोते साहस नही घटाते हैं।
बन पड़ता है जहाँ तलक दीनो का दुःख घटाते हैं;
निज-पौरुष से समर-भूमि में अरि को धूल चटाते है।
वही धीर नर धरा-धाम में धवल-कीर्ति नित पाते हैं ॥१

अत्याचारी की गर्दन को झट मरोड वे देते हैं,
अन्यायी का मुख थप्पड़ से सदा मोड़ वे देते है।
कोटि विघ्न आ पड़े कार्य निज नही छोड़ वे देते है,
लाख विफलताओ पर भी दिल नही तोड वे देते हैं।
धीर धुरन्धर वही वीर-वर विश्व-विदित हो जाते हैं ॥२

मनुज-केसरी इस भव-वन मे भय-गज मार भगाते हैं।
पड़े लोह-पिंजड़े मे तो भी घास कदापि न खाते हैं।
दम में दम जब तक रहता है अपनी आन निभाते हैं;
श्वान समान दशन दिखला कर वे दुम नही हिलाते हैं;
उनकी सूरत देख भीरु भय भूरि भरे थर्राते हैं ॥३

चाल चले उनसे कोई क्या नही काल से डरते हैं;
शूरो की संसार-समर में सन्तत करणी करते हैं।
मार-मार कर दुष्ट-दलों को भार भूमि का हरते हैं;
हो जाते हैं अमर जगत मे कभी नही वे मरते हैं।
कीर्ति-कौमुदी से अपनी वे विमल चन्द्र बन जाते हैं ॥४

अटल सदा निज प्रण पर रहते करते सत्पथ त्याग नही ;
अत्याचारी अधम जनों से उनको है अनुराग नही ।
नही चाहते हलुआ-पूड़ी अशन मिले पर साग नही ;
पर स्वतन्त्रता पर वे अपनी लगने देते दाग नहीं ।
धृति धारण कर ध्रुव से बनते धीर वही कहलाते हैं ॥५

□

कृषक के प्रति

"औरों के सुख को' दुःख बिसारे तुम्हीं तो हो
प्राणों के प्राण अपने सहारे तुम्हीं तो हो ।
बिगड़ी दशा को अब भी सँवारे तुम्ही तो हो
मरने न देते भूख के मारे तुम्हीं तो हो ।
सच्चे सपूत देश के प्यारे तुम्ही तो हो ॥

वह मन्द मति है, नीच तुम्हे कोई गर कहे
चुपचाप तुमने जितने पड़े दुःख सब सहे ।
पी पी के खून रह गये, आँसू नही बहे
गुण ज्ञान-हीन होके भी सिरमौर ही रहे ।
सच्चे सपूत देश के प्यारे तुम्ही तो हो ॥

आशा तुम्हारे बाहुओ की लोग करते हैं
नृप भी तुम्हारी रक्षा के उद्योग करते हैं ।
कुछ योगियों से कम न कृषक योग करते हैं
दम से तुम्हारे लोग ये सुख-भोग करते है ।
सच्चे सपूत देश के प्यारे तुम्ही तो हो ॥

प्यारी प्रकृति की देखते तुम नित्य हो छटा
यह हिस्सा बस तुम्हारा है, इसमें न कुछ बँटा ।
ठंढी हवा तो पेड़ों पै चिड़ियो का जमघटा
मुनियों के चित्त को भी जो देता है लटपटा ।
सच्चे सपूत देश के प्यारे तुम्ही तो हो ॥

बोते हो एक दाना तो सौ कर दिखाते हो
आधे ही पेट खाते हो सबको खिलाते हो ।

कौशल है और क्या, यहाँ अब तुम जीनाते हो
हम क्या सँभल सकेंगे जो तुम गिरते जाते हो।
सच्चे सपूत देश के प्यारे तुम्ही तो हो ॥
मन छोटा मत करो ऐ मेरे मन चले कृषक
यह व्यर्थ जायगा न जो श्रम करते हो अथक।
श्रद्धेय सबके बन के रहोगे नहीं है शक
लेंगे बलायें दौड़ के राजा से रंक तक।
सच्चे सपूत देश के प्यारे तुम्हीं तो हो ॥
शिक्षा का है प्रचार भरतखण्ड में बढ़ा
उतरा है भूत जो कि था अज्ञान का चढ़ा।
प्रत्येक व्यक्ति जो कि है कुछ भी लिखा पढ़ा
समझेगा वह अगर न रहा स्वार्थ से मढ़ा।
सच्चे सपूत देश के प्यारे तुम्हीं तो हो ॥
जो कुछ है देश में वो तुम्हारी कमाई है
पाई न हमने एक भी औरो की पाई है।
अपना भी है भला जो तुम्हारी भलाई है
यह सच्ची बात विज्ञ जनों ने बताई है।
सच्चे सपूत देश के प्यारे तुम्ही तो हो ॥
ये सब देख सुन हाय सुन हो गया मैं
न आपे में फिर रह सका खो गया मैं।
कहा मैंने यारो सँभालो गया मैं
गया चेत ही कह के यह "लो! गया मैं"।
ख़बर कुछ नहीं है कि फिर क्या हुआ था।
कृषक वह बचा था कि ग़म से मुआ था।

□

युद्ध

वन तज कर घर बना-बना कर रहना सीखा,
मौन न रहा विशेष बहुत कुछ कहना सीखा।
पारस्परिक सहानुभूति दुख दलना सीखा,
हाथ-पैर की जगह पैर से चलना सीखा।
सीख-साख में स्वार्थवश चोरी डाका सीख कर।
बना गया-बीता बहुरि वनचर-गण से चतुर नर ॥१

चोरी है, लें माल किसी का, आँख बचा कर ;
डाका है, लें लूट किसी को, आँख दिखा कर।
श्रम अतीव कर लोग अर्थ-संग्रह करते हैं,
डाकू उसको छीन पेट अपना भरते हैं।
कैसा भीषण पाप है रोता रह जाये धनी ?
हाय ! हाय ! तेरा बुरा हो डाइन डाके-जनी ॥२

कितने घर बर्बाद किये डाइन तूने हैं;
पृथ्वी तल के कौन भाग तुझ से सूने हैं।
बहुरुपिणी विचित्र रूप क्या धर रक्खे हैं,
कितने ही भूपाल स्ववश में कर रक्खे हैं।
अन्य देश को लूटने जाते वे सज साज हैं।
ज्यों बलहीन बटेर पर गिरते बढ़ कर बाज़ हैं ।३

द्वेष-लोभ से कभी-कभी मदमाते होकर,
परोत्कर्ष को देख डाह से निज मति खोकर।
करके कभी विचार नष्ट व्यापार करेंगे,
कभी सोच है शत्रु पुराना दर्प हरेंगे।
चढ़ जाते पर देश पर संग लिये अगणित अनी।
कौन कहेगा फिर कहो, समर नहीं डाके-जनी ॥४

लुटते घर दो चार, जहाँ पर डाका पड़ता,
किन्तु युद्ध से हाय ! देश का देश उजड़ता।
डाके में दो चार आदमी यदि हैं मरते,
समर-सिन्धु में लक्ष-लक्ष असि-घाट उतरते।
बह जाती है देश में मनुज-रुधिर की धार ही।
आ जाता है लोक में मूर्तिमान संहार ही ॥५

प्रलय-मेघ से गरज-गरज तोपों के गोले,
गिरते मानो अविश्रान्त ज्वालामय ओले।
जल के क्या क्या धाम धूल में हैं मिल जाते;
क्या क्या रम्याराम धूल में हैं मिल जाते।
धौरहरे हो भग्नशिर होते खण्डित ताड़ से।
होकर भस्मीभूत हैं भवन भँभाते भाड़ से ॥६

तोपें करतीं एक ओर संहार सनातन,
एक ओर "बम" छोड़ रहीं गोलियाँ सनासन।

संगीनों की मार प्राण लेती है पल में,
हिल जाता यमराज-हृदय भी इस हलचल में।
मनुज पतिंगों की तरह भुनते रण की आग से।
दल के दल हैं काटते निर्मम हो कर साग से ॥७

कोई कहता हाय! हमारा बेटा प्यारा,
असमय मे ही छोड़ हमें परलोक सिधारा।
कहती कोई नवल वधू व्याकुल रो रोकर,
हाय! रहा क्या पास प्राणपति तुमको खो कर।
करुणा-क्रन्दन कठिन पर दिये न जाते कान हैं।
बाल, वृद्ध वनिता सभी बन जाते दुखखान हैं।८

पीडित होते कृषक लोग अति सन्तापो से,
चौपट होते खेत अश्व-गण की टापो से।
छूटता है घर बार विकल मारे फिरते है,
रक्षा का न उपाय विपद के घन घिरते हैं।
कहाँ जायें किसकी शरण ग्रहण करे इस काल मे।
रह जाते रो-पीट कर समझ यही था भाल मे ॥९

व्यापारी व्यापार छोड कर सिर धुनते हैं,
घर बैठे बेकार विकल तिनके चुनते हैं।
लुटता है घर बार देखते रह जाते है,
होते हैं निरुपाय घटी यह सह जाते हैं।
इस गडबड से देश मे पड जाता दुष्काल है।
फँसते लाखों लोग हैं मृत्यु बिछाती जाल है ॥१०

और कहाँ तक कहे समर क्या दुःख दिखाता,
ऐसी कौन विपत्ति नहीं जो है यह लाता।
खोता है स्वातन्त्र्य, जाति-परतन्त्र बनाता,
गिर जाता है देश कभी फिर सँभल न पाता।
धन्य धन्य वह देश है वही भाग्य का है धनी।
हो न जहाँ सौभाग्य से युद्धरूप डाके-जनी ॥११

धन्य वीर हैं जो स्वदेश की रक्षा करते,
जय जय जननी जन्मभूमि कह कह कर मरते।
लेते लोहा प्रबल शत्रु को मार भगाते,
देते ऐसा कूट, लूट का मजा चखाते।

जिसमें फिर साहस न हो ऐसे अत्याचार का
समुपस्थित अवसर न हो व्यर्थ लोक-संहार का ॥१२
क्या ऐसा दिन कभी विभो ! जग में आयेगा,
लोक-क्षय-कर समर भयंकर उठ जायेगा।
विविध जातियाँ सुखी रहेंगी द्वेष भूल कर,
होंगी धनसम्पन्न, फलेंगी फूल फूल कर।
समरानल में भस्मवत् होंगी कभी न भ्रान्ति से।
सीखेंगी संसार में रहना सुख से शान्ति से ॥१३

❑

देश-प्रेमोन्मत्त

प्यारे भारत, प्यारे भारत, तुझ पर वारे जायेंगे—
स्वर्ग-लालसा छोड़ तुझे हम अपना स्वर्ग बनायेंगे।
मन्द मलय-मारुत के झोंके मेरा मन बहलायेंगे—
तप्त हृदय को शीतल करने हिमगिरि-हिमकण आयेंगे ॥१

नीलाम्बरा भूमि-जननी ले गोद हमें दुलरायेगी—
त्रिविध फूल-फल देकर हमको मधुमय पान करायेगी।
मणि-गण हमे वसुमती देकर चाव सदैव बढ़ायेगी—
क्षमा, धीरता, सहनशीलता के प्रिय पाठ पढ़ायेगी ॥२

सारे कलिमल-कलुष हमारे सुरसरि-धारा धोयेगी—
तरल तरंग त्रिवेणीजी की तपतापों को खोयेगी।
कल-रव करके चातक कोकिल गाना हमें सुनायेंगे—
घर बैठे ही मातृ-कृपा से सुरपुर-सुख हम पायेंगे ॥३

वह देखो वंशी-ध्वनि सुन लो कुंवर कन्हैया आता है—
गीता वाले गीत आज फिर मधुर स्वरों में गाता है।
दुःख भुला दो, क्लेश भुला दो, स्वागत को तैयार रहो—
जय यदुनन्दन, जय वंशीधर, स्वागत ! स्वागत ! कहो कहो ॥४

अहो हिमालय ! नगाधिपति हो, उच्च भाव कुछ दिखलाओ—
श्यामागम में रत्न-कोष सब अपना आज लुटा जाओ।
धर्मराज ने महासमर में जब सर्वस्व गँवाया था—
कंचन का भाण्डार तुम्हीं से धर्म-कार्य-हित पाया था ॥५

पौष-मार्गशीर्ष : शक १८०४]

देख दरिद्र हमारा तुमको क्या न दया कुछ आयेगी—
हरि-स्वागत को क्या यह जनता खाली हाथों जायेगी ?
सूम सदृश क्यों चुप हो तुम कुछ न दो हमें परवाह नहीं—
हैं ऋषियों के वंशधरों में : हमको धन की चाह नही ।।६
सुनते हैं पूर्वज कितने ही तव गृह में तप तपते हैं—
ध्यान-धारणा मे रत रह कर नाम श्याम का जपते हैं ।
उन तक विनय विनीत हमारी है गिरिवर तुम पहुँचाओ—
कहो कि—"अपनी मातृ-भूमि की लेने खबर शीघ्र जाओ ।।७

स्वर्गेच्छा है अगर स्वर्ग भारत ही बनने जाता है—
दर्श-लालसा है यदि हरि की ब्रह्म कृष्ण बन आता है ।
गिरी हुई सन्तानो को तुम जाकर शीघ्र सचेत करो—
ज्ञानरहित तव पुत्र पौत्र हैं उनको ज्ञान-समेत करो" ।।८

जिसमे हरि के दर्शन पायें मन न तरसते रह जायें—
श्याम-विरह मे अश्रुधार ही नेत्र बरसते रह जायें ।
ध्यान मग्न वे अगर तुम्हारी नही प्रार्थना सुनते हैं—
तो बस इतनी दया करो तुम देखो हम सिर धुनते हैं ।।९

निज तनया से कहो कि जब वे सागर से मिलने जायें—
सुरसरि निज प्रिय द्वारा इतना विनती हरि तक पहुँचायें ।
"क्षीर सिन्धु मे कब तक स्वामी आप बेखबर सोयेंगे—
कब तक हम दुनिया के आगे अपना दुखड़ा रोयेंगे ।।१०

करुणासिन्धो ! कहो तुम्हें क्या भारत-भूमि न प्यारी है—
तुम तो कहते थे यह पृथ्वी तीन लोक से न्यारी है ।
जो ऐसे दिन दिखलाने थे, तो फिर क्यो अपनाया था—
क्यो भूमण्डल भर मे प्रभुवर ! भारत तुमको भाया था ।।११

एक नही दस बार तुम्ही ने गिरते हुए बचाया है—
दयासिन्धु ! फिर दया कीजिए कठिन समय यह आया है ।
हृदय-भूमि मे हाला-डोला हर दम आता रहता है—
गेसर सदृश उबल नयनो से तप्त तप्त जल बहता है ।।१२

वैर-विरोध-सिन्धु बढ़ कर हा ! हमे डुबोये देता है—
मुख बन ज्वालामुखी धुआँ आहो का छाये देता है ।
मोह-निशा अज्ञान-अँधेरा उस पर दुख-घन घेरा है—
विपदा-विद्युत् चमक रही है, विकट काल का फेरा है ।।१३

गिरिधर ! फिर सिरधरा बनो तुम तो लज्जा बच जायेगी—
बिना तुम्हारी दया दयानिधि ! महाप्रलय मच जायेगी"।
नहीं बोलते, क्यों बोलोगे ? कौन बुरे दिन का साथी ?
हो पवि-हृदय लगा दो तुम कुछ पत्थर ही हाथा हाथी ॥१४

तुम अपनी क्रूरता न छोड़ो, हृदय कठिन भरपूर करो—
अपना भार डाल कर हम पर हमको चकनाचूर करो।
किसी तरह तो इन दुःखों से हे नग-नाथ ! छुड़ाओगे—
कुछ न करोगे तो गिरिवर किस काम हमारे आओगे ॥१५

ओहो ! आर्त्तजनों के मन भी नहीं ठिकाने रहते हैं—
देखो तो हम जड़ पदार्थ से अपनी बीती कहते हैं।
भारतीय भाइयो देश-दुख-दवा तुम्हीं अब बन जाओ—
बिगड़े रहे बहुत दिन तक तुम अब तो कुछ मन में लाओ ॥१६

प्रेम - पयोद - घटा बरसाओ, द्वेष - दवानल बुझ जाये—
भारत-वन फिर हरा भरा हो, वैभव-ऋतुपति फिर आये।
फिर ब्रह्माण्ड ज्ञान-सौरभ से भारत-भू के महक उठे—
फिर यश गान करे कवि कोकिल चुप न रह सके चहक उठे ॥१७

हृदय हृदय से मिला-मिला दो, पिला-पिला दो नय-प्याले—
जन्मभूमि की करो जय-ध्वनि अवनी और गगन हाले।
बढ़ो करो उद्योग हृदय से बैठे रहना ठीक नहीं—
दिल्ली दूर अभी है भाई ! उन्नति कुछ नजदीक नहीं ॥१८

कितने खाई, खन्दक तुमको पार अभी करने होंगे—
कितने नद - नाले रस्ते मे अभी तुम्हे तरने होंगे।
कला-ज्ञान नभयान बना कर जब ऊँचे चढ़ जाओगे—
भव्य भाग्य वाले भारत के तब तुम दर्शन पाओगे ॥१९

बैठा होगा वीरासन वह तेज दिवाकर सा होगा—
दृग-चकोर लख मुद पायेंगे वदन सुधाधर सा होगा।
चौड़ा वक्षस्थल निहार कर चकित हुए रह जाओगे—
करुणा दया देख कर उसकी पिघल-पिघल तुम जाओगे ॥२०

मुख-मण्डल से उसके हरदम शान्ति मनोहर बरसेगी—
फिर दुनिया उसके दर्शन को व्याकुल होगी—तरसेगी।
वहीं बैठ कर कृष्णचन्द्रजी मुरली मधुर बजायेंगे—
जनता दुःख दूर करने को दशरथ-नन्दन आयेंगे ॥२१

दृष्टि जायगी जिधर, उधर विज्ञान-ज्योति फैली होगी—
जिसे देख कर चन्द्र - चन्द्रिका झेंपेगी—मैली होगी।
वह अपने कौशल से ऐसी सुधा - धार, बरसायेगा—
अमर करेगा निज पुत्रों को यह चिर तृषा मिटायेगा ।।२२

तुमको देख गले मिलते, वह मन्द मन्द मुसकायेगा—
गुण - गरिमा वह देख तुम्हारी फूला नहीं समायेगा।
स्वर्ग-लालसा फिर तुम जी में अपने कभी न लाओगे—
जो चाहोगे इसी लोक मे प्रियवर तुम पा जाओगे ।।२३

सुन ये बातें देशभक्त की आँसू मेरे निकल पड़े—
मानो भारत - पदस्पर्श को हृदयज बालक मचल पड़े।
मैंने कहा थाम कर आँसू—"हा ! वह दिन कब आयेगा—
जो यह स्वप्न समान सुआशा सच्ची कर दिखलायेगा" ।।२४

उत्तर मिला—"आप जब जी से भारत को अपनायेंगे—
तभी कृपा करके वे अपना असली रूप दिखायेंगे।"
मैंने कहा—"सखे ! आओ यह हृदय-भेंट स्वीकार करो—
देश-प्रेम-जलधि-बोहित हो मुझको भी तुम पार करो ।।"२५

□

'आजाद हिन्द फौज का कड़खा'

आजाद हिन्द फौज है तैयार हो गई,
क़ायम स्वतंत्र अपनी है सरकार हो गई;
दुनिया हमारी आज है गमख्वार हो गई,
कश्ती किनारे आ ही लगी-पार हो गई;
अब सिर्फ चार हाथ लगाने की देर है !
तुम शेर हो दिलेर हो दुश्मन भी जेर है !

तुमको पुकारती हैं हिमालय की चोटियाँ,
रोती गमे गुलामी से हैं सारी नदियाँ;
उठता जिगर से फ़िक्रए-दिल्ली के है धुवां,
क़ुरबान तुम पै हिन्द के लाखो है नौजवां;
तुम खुद हो एक-एक बहुत लाख-लाख को !
हाँ, तेग़ के धनी हो न खोओगे साख को !

चालीस कोटि बन्धु न दब के रहेंगे हम,
दरिया को पाट देंगे जो मिल के बहेंगे हम;
हों एक तो किसी के सितम क्यों सहेंगे हम,
"जां दे के भी ये सौदा है सस्ता" कहेंगे हम;
गैरों का अब निशान वतन में न छोड़ेंगे!
जैसे भी, हो गुलामी की जंजीर तोड़ेंगे!

भाई हो और किससे कहें अपने घर की बात,
सच कहने में नहीं है किसी को भी डर की बात;
क्या माल करेंगे न हम मालोजर की बात;
मोड़ो न मुंह जी आपके जानो जिगर की बात;
सर दो वतन को फ़र्ज़े मुहब्बत अदा करो!
आजादी चाहते हो तो कीमत अदा करो!

□

समस्या-पूर्ति

रुख राखि सनेह को रूखे भये मुख फेरि के क्यो रस में विष घोलत?
दृग नीचे किये हो कटे-कटे जात जो बोलत बैन फटे-फटे बोलत॥
चुप साधि रहे अपराध है का? केहि कारन गांठि हिये की न खोलत?
इत आवत ना कबौं भूलिहू कै दिन बीतत है इत की उत डोलत॥

□

लहराये जा

तेरा यह केसरिया बाना,
केन्द्र शान्ति को तूने माना,
चाह रहा, हो हरा जमाना,
चक्र-सूर्य चमकाये जा।
लहराये जा! लहराये जा॥१

सरस्वती, गङ्गा, यमुना की,
एक साथ ही तुझ मे झांकी,
तीन रंग से भारत मां की,
यक-रंगी दिखलाये जा।
फहराये जा! फहराये जा॥२

संगी भारतीय नर-नारी,
उनमे भरता है बल भारी,
कम्पित होते अत्याचारी,
जीवन-घन बन छाये जा।
लहराये जा! लहराये जा ॥३

तेरी छाया सुरतरु छाया,
अभय हुआ जो इसमे आया,
देता पलट पलक में काया,
नव उत्साह बढ़ाये जा।
फहराये जा! फहराये जा !!४

भाई से भाई मिल जाता,
एक सूत्र मे है सिल जाता,
संघ फूल सा है खिल जाता,
यो एकता सिखाये जा,
लहराये जा! लहराये जा !!५

तेरी छवि घर घर मे छहरी,
कोटि कोटि भट तेरी प्रहरी,
छाप हृदय पर तेरी गहरी,
गहरा रंग जमाये जा।
फहराये जा! फहराये जा !!६

स्वतन्त्रता से तेरा नाता,
तू स्वदेश का भाग्य-विधाता,
जाता जहाँ, वहाँ जय पाता,
कुटिल हृदय दहलाते जा।
लहराये जा! लहराये जा !!७

समता की सत्ता का पायक;
न्याय धर्म का है तू नायक,
लोकतन्त्र का नीति-विधायक,
जीवन ज्योति जगाए जा,
फहराये जा! फहराये जा !!८

□

मजदूरों का गीत

ग़म खाते गुजरती है दिलशाद नहीं कोई।
करता है गरीबों की इमदाद नहीं कोई।
इन्साफ़ है दुनिया में, हमने तो नहीं देखा,
हम लाख मरें सुनता फ़रियाद नही कोई।
वीरान वो गुलशन है सीचा न जिसे हमने,
ऐसी तो कभी देखी आबाद नही कोई।
खेती है तो हमसे है, सनअत है तो हमसे है,
उसका है एवज़ हमसा बरबाद नही कोई।
तकदीर के जादू में हम भूल गये ऐसे।
रस्ते पे हमें लाये उस्ताद नहीं कोई॥

मग़मूर हैं तो हम हैं, रंजूर हैं तो हम हैं,
माजूर हैं, तो हम हैं, मजबूर हैं तो हम हैं।
दुनिया में यो तो दौलत की कुछ कमी नही है।
नादारी-मुफ़लिसी में मशहूर हैं तो हम हैं।
देखो जिधर उधर ही दौलत के चोंचले हैं,
आराम औ खुशी से गर दूर हैं तो हम हैं।
दुनिया के काम सारे बेख़ौफ़ चल रहे हैं,
खतरे की हर जगह पर मामूर हैं तो हम है।
सरमायादार जाने किस जोम में हैं भूले।
यह सोचते नही हैं—मंदूर हैं तो हम हैं॥

□

नवयुग आगमन

नवयुग अभिनव संसार लिये आता है।
कलि में सतयुग अवतार लिये आता है॥
हिंसा का आसन हिला अहिंसा-बल से।
फिर बाजी पाई सबल सत्य ने छल से।
कल तक थे बेकल सकल, रहें अब कल से।
वरदान मिल रहा कठिन तपो के फल से।
स्वातन्त्र्य-साम्य उपहार लिये आता है।
कलि में सतयुग अवतार लिये आता है॥१

पौष-मार्गशीर्ष : शक १८०४]

भय के चरणों में शीश पे न धरना होगा।
परवश पड़ कर बे-मौत न मरना होगा।
जो डूब रहे हैं, उन्हें उभरना होगा।
अपनी करनी से पार उतरना होगा।
उन्मुक्त मुक्ति का द्वार लिये आता है।
कलि में सतयुग अवतार लिये आता है।।२

कल्पना हुई साकार साधना पूरी।
हो रही कामना पूर्ण न रही अधूरी।
हो रही विदा दासता और मजबूरी।
हो रही मनुज से दूर मनुज की दूरी।
सामने स्वर्ग सुख-सार लिये आता है।
कलि में सतयुग अवतार लिये आता है।।३

क्या कहें पड़ा किस-किस विपत्ति से पाला।
कितनी भीषण थी भीष्म ग्रीष्म की ज्वाला।
फिर अन्धकार का राज्य घिरा घन काला।
अब चन्द्र आ रहा लिये अनूप उजाला।
वह साथ विजय-त्योहार लिये आता है।
कलि मे सतयुग अवतार लिये आता है।।४

□

शह-सवार

जिसमें अपूर्व शक्ति है, धीरज अटल,
जब तक न लक्ष्य प्राप्त हो, लेता नहीं है कल।
सत्पथ का वह पथिक है, जिसे छू गया न छल,
जिसने कि शान्ति से ही किया विश्व पर अमल।
फुरती में जिससे मानती बिजली भी हार है।
जय जिसकी अनुचरी है, ये वह शह सवार है।।
पत्थर जो बन गये थे, हृदय वह हिला रहा,
पश्चिम से पूर्व को है बराबर मिला रहा।
मुर्दा दिलों को है नये सर से जिला रहा,
मुरझाये थे जो दिल के कँवल वह खिला रहा।
निर्भय डरे हुओं को अभय-दान कर रहा।
निकले जिधर से सर वही मैदान कर रहा।।

यह गांधी-भक्त प्रेम की प्रतिमा भुवन में है,
मुंह पर वही है बात रही जो कि मन में है।
तन हो कहीं भी, मन सदा अपने वतन में,
यह अद्वितीय वीर अहिंसा के रन में है।
अवकाश एक पल नहीं लेता है काम से।
जग में है जगमगाता जवाहर के नाम से॥
अरि छोड़ इसको देख के मैदान देते हैं,
वह शान है कि जिस पै युवक जान देते हैं।
संकेत पै करोड़ों ही बलिदान देते हैं,
जितने भी राष्ट्र हैं सम्मान देते हैं।
सेनानी सच्चा वीर विजेता हमारा है।
सौभाग्य हमारा, ये नेता हमारा है॥

☐

बापू वन्दना

बापू तुम अद्भुत जादूगर!
जय करते हो निज सत् बल से, निश्शस्त्र अकेले स्वत्व समर।
बापू तुम अद्भुत जादूगर!

दानव को मानव कर देते,
सद्भाव हृदय में भर देते।
फिर पुण्यवान वह बन जाये,
पापी को भी अवसर देते।
निर्दय को दया दिखाते हो,
पिघला देते हो तुम पत्थर।
बापू तुम अद्भुत जादूगर॥

कौतुकी बहुत से आते हैं,
अपना कौतुक दिखलाते हैं।
चिर चकित लोक के करने को,
पानी में आग लगाते है।
पर तुम तो जलती ज्वाला को,
पानी-पानी देते हो कर।
बापू तुम अद्भुत जादूगर॥

तुमसे स्वदेश का त्राण हुआ,
प्रसरित उसमे नव-प्राण हुआ।
जी उठा पुनः स्वातन्त्र्य प्रेम,
दासत्व उठा-म्रियमाण हुआ।
जीवन-सन्देश नया लाये,
बीसवी सदी के पैगम्बर।
बापू तुम अद्भुत जादूगर॥
यश ध्वजा गड़ी घर-घर मे है,
जय ध्वनि अवनी अम्बर मे है।
वह आत्म-शक्ति दिखलायी है,
सारी दुनिया चक्कर मे है।
काता स्वातन्त्र्य सूत तुमने,
चरखे को दे-दे कर चक्कर।
बापू तुम अद्भुत जादूगर॥
अपराध अनय अभिशाप मिटा,
चिरसंगी दुख-सन्ताप मिटा।
तुम रहे अहिंसा पर अविचल,
जो मिटा वह अपने आप मिटा।
सुन-सुन कर आता है सत्युग,
कलियुग है कांप रहा थर-थर।
बापू तुम अद्भुत जादूगर॥
फैलाकर प्रेम-धर्म आदिम,
कर रहे एक पूरब-पश्चिम।
हैं वेद और क़ुरआन एक,
तुमको समान हिंदू-मुसलिम।
है रामाधुन के साथ-साथ,
अल्लह अकबर-अल्लह अकबर।
बापू तुम अद्भुत जादूगर॥
मच रही देश मे महाप्रलय, है अनलमयी न सही जलमय,
पर तुम 'मुकुन्द' से हे भगवन्! निश्चित निर्भ्रान्त और निर्भय।
हो नयी सृष्टि की सोच रहे, सुस्थिर हो पाकर अक्षय वर।
बापू तुम अद्भुत जादूगर॥

□

परतन्त्रता

मानव -जीवन के विकास की अरिनि अरी तू,
निशाचरी-सी हाय ! हमारे पिण्ड परी तू,
अब तक कितने देश न जाने तूने खाए,
तेरा भरा न पेट घूमती है मुँह बाए ॥१

कभी मिस्र को लिया कभी फारस पर दौड़ी,
बजती घर-घर आज हिन्द मे तेरी डौड़ी,
तेरे कर से हा ! न कोरिया कोरा छूटा,
धन-वैभव क्या, ज्ञान-मान भी तूने लूटा । २

डाइन है तू चतुर जानती जादू टोना,
भाता तेरे वशीभूत हो सुख से सोना,
होती नींद न, भंग अजब थपकी देती है,
स्वाभिमान क्या, कभी प्राण तक हर लेती है ॥३

धनी रंक विद्वान मूर्ख कोई कब छोड़े,
तेरे वश हो सभी घूमते खीस निपोडे,
क्रूरपना कर चुकी बहुत अब दूर निकल तू,
है "त्रिशूल" का वार अरी निश्चरी ! सँभल तू ॥४

□

स्वतन्त्रता

नन्दन की प्यारी छवि से तू प्रकृति पुरी को सजती है,
आती है स्वर्गीय तरंगे जब तब वंशी बजती है।
चिड़ियाँ गगनांगन मे उड़कर तेरे गीत सुनाती हैं,
देवी स्वतन्त्रते ! गुण तेरे स्वर्गदेवियाँ गाती हैं ॥१

तेरे आराधक निर्भय हो निर्जन-वन में फिरते है,
तो भी वे ऊँचे चढ़ते है नीचे कभी न गिरते हैं।
तेरे दर्शन का सुख पाकर दुःख दूर हो जाते हैं,
सुनकर तेरी हांक क्रूर भी परम शूर हो जाते हैं ॥२

तुझसे विमुख विमुख जीवन से होकर जग में रहते हैं,
पड़े दासता के बन्धन में नरक-यातना सहते हैं।

दब जाता अत्याचारों से उनका सिर झुक जाता है,
होता है निश्चय विनाश ही फिर विकास रुक जाता है ।।३
तेरी ध्वनि सुनते हैं तो भी दुर्लभ दर्शन तेरे हैं,
विपदाओं से घिरे हुए हैं चेरों के भी चेरे हैं।
कर दे हमें सनाथ हाथ दोनों की ओर बढ़ा दे तू,
जीवन-रण मे मिले सफलता ऐसा पाठ पढ़ा दे तू ।।४
आओ-आओ बढ़ो बन्धुगण स्वतन्त्रता-हुंकार सुनो,
अपने ही हाथों अब अपना करो करो उद्धार सुनो।
स्वतन्त्रता देवी के पथ पर यदि निज शीश चढ़ाओगे,
पाओगे सु सुयश लोक में अन्त अमरपद पाओगे ।।५
साहस तुम्हें स्वयम् वह देगी बल हृदयों मे आयेगा,
कोटि-कोटि कण्ठों का गर्जन अवनी-गगन कँपायेगा।
विकट दासता का बन्धन यह चूर-चूर हो जायेगा,
अरिदल का अभिमान मिटेगा दैन्य दूर हो जायेगा ।।६
वीर प्रताप शिवा के पद का निज हृदयों में ध्यान करो,
हे भारत के लाल, पूर्वजों की कृति पर अभिमान करो।
स्वतन्त्रता के लिए मरें जो उनका चिर सम्मान करो,
है "त्रिशूल" अनुकूल समय यह अब अपना बलिदान करो ।।७

□

सत्याग्रह

सत्य सृष्टि का सार, सत्य निर्बल का बल है,
सत्य सत्य है, सत्य नित्य है, अचल अटल है।
जीवन - सर में सरस मित्रवर ! यही कमल है,
मोद मधुर मकरन्द सुयश सौरभ निर्मल है ।।
मन-मलिन्द मुनिवृन्द के, मचल-मचल इस पर गये।
प्राण गये तो इसी पर, न्यौछावर होकर गये ।।१
अटल सत्य का प्रेम, भरे जिस नर मे मन में,
पाये जो आनन्द आत्मबल के दर्शन में।
पशुबल समझे तुच्छ, संग भूषण गर्दन में—
सनके भी जो नहीं गलियों की सन - सन में ।।
जीवन में बस प्रेम ही, जिसका प्राणाधार हो।
सत्य गले का हार हो, इतना उस पर प्यार हो ।।२

इस पथ में बस वही वीर, पहुँचा मंजिल पर,
डाल न सकती शक्ति मोहिनी जिसके दिल पर।
उससे भिड़ कर कौन भाल फोड़ेगा सिल पर,
'खेड़े' में हो अड़ा या कि वह 'रौलट-बिल' पर॥
समझो सम्मुख ही धरा, जो कुछ उसका ध्येय है।
विश्व-विजयिनी शक्ति यह, परम अभेद्य, अजेय है॥३

सत्याग्रह प्रेमास्त्र मनों को हरने वाला,
जिनसे परम विरोध उन्हें वश करने वाला।
क्या मनुष्य, वह, नहीं काल से डरने वाला,
अजर अमर वह, नहीं किसी से मरने वाला॥
कहते थे श्री गोखले 'सत्याग्रह' तलवार है।
जिसमें चारों ही तरफ, धरी तीव्रतर धार है॥४

जिस पर इसका वार हुआ आत्मा निर्मल की,
खा जाती है जग हुई जो छाया छल की।
कितनी इसमे लचक, भरी है यह कसबल की,
नही किसी पर बोझ हवा से भी है हलकी॥
पर अनीति की अनी मे बिजली की सी चाल है।
दाँतो मे अंगली दिये कहते लोग 'कमाल है'॥५

उसका है कर्तव्य जो कि सत्याग्रह ठाने,
अन्यायी कानून असत्यादेश न माने।
छेड़े हर दम रहे प्रेम, आनन्द-तराने,
निश्चित अपनी विजय सत्य के रूप मे जाने॥
ज्यों-ज्यों गहराती उधर, क्षण-क्षण जीवन जंग हो।
त्यों-त्यों गहराता इधर, दृढ़ उमंग का रंग हो॥६

सत्याग्रह का व्रती कष्ट कितने ही झेले,
मारें उसको मन्द मूढ़ ढेले पर ढेले।
समझें उनको दया-पात्र चोटें सिर ले ले,
मोह प्राण का छोड़ जान पर अपनी खेले।
अपने पशुबल से कभी, सत्याग्रही न काम ले।
आत्मिक बल की ढाल ही, निज रक्षा हित थाम ले॥७

कोई उससे द्रोह करे, वह राह दिखाये,
कोई रैसे मखा उसे वह गले लगाये।

मरते दम भी यही प्रार्थना मन मे लाए,
'ईश्वर इनको क्षमा करे ये हैं भ्रम खाए—
भव में भूले हुए हैं, दिखा इन्हे पथ ज्ञान का।
कुफल न भोगें नरक में, ये अनुचित अभिमान का" ॥८

यह व्रत है अति कठिन समझ कर इसको लेना,
देह, गेह, प्रिय, प्रिया, पुत्र-ममता तज देना।
अपने बल से नाव पडेगी इसमे खेना,
पहले ही लो समझ न पीछे देना ठेना॥
करना होगा सामना, भीषण अत्याचार का।
सहना होगा घाव पर घाव, तीर-तलवार का ॥९

सह कर सिर पर मार मौन ही रहना होगा,
आये दिन की कडी मुसीबत सहना होगा।
रंगमहल सी जेल आहनी गहना होगा,
किन्तु न मुख मे कभी, हन्त हा! कहना होगा॥
डरना होगा ईश से, और दुखी की हाय से।
भिडना होगा ठोंक कर, खम, अनीति, अन्याय से ॥१०

तुम होगे सुकरात जहर के प्याले होगे,
हाथो मे हथकडी पदो मे छाले होगे।
'ईसा' से तुम और जान के लाले होंगे,
होगे तुम निश्चेष्ट डस रहे काले होगे॥
होना मत व्याकुल कही, इस भव-जनित विषाद से।
अपने आग्रह पर अटल, रहना बस प्रहलाद से ॥११

होगे शीतल तुम्हे आग के भी अंगारे,
मर न सकोगे कभी मौत के भी तुम मारे।
क्या गम है. गर छुट जायेंगे साथी सारे,
बहलायेंगे चित्त चन्द्र चमकीले तारे॥
दुख में भी सुख शान्ति का नव अनुभव हो जायगा।
प्रेम-सलिल से द्वेष का, सारा मल धो जायगा ॥१२

धीरज देगी तुम्हे मित्रवर! मीराबाई,
प्रेम-पयोनिधि-थाह भक्ति से जिसने पाई।
रही सत्य पर डटी प्रेम से बाज न आई,
कृष्ण रंग में रंगी कीर्ति उज्ज्वल फैलाई॥

आई भी उसकी टली वह विष प्याला पी गई।
मरी उसीकी गोद मे जिसको पाकर जी गई ॥१३

भगवन् ! बल दो हमे सत्य-पथ पर डट जायें,
निज इच्छा अनुसार मन, वचन, कर्म बनायें।
करो प्रेम में सुदृढ बुद्धि यो खौफ़ न खायें,
बढकर स्वागत करे अगर विपदाएँ आये ॥
सहनशक्ति वह दीजिये, जीत समझ लें हार मे।
दे कातिल को दाद हम, उसके हर हर वार मे ॥१४

सत्य रूप हे नाथ ! तुम्हारी शरण रहूँगा,
जो व्रत है ले लिया- -लिये आमरण रहूँगा।
ग्रहण किये मैं सदा आपके चरण रहूँगा,
भीत किसी से और न है भय हरण रहूँगा ॥
पहली मंजिल मौत है प्रेम-पन्थ है दूर का।
सुनता हूँ मत था यही, सूली पर "मन्सूर" का ॥१५

भगवन् ! जितने हुए आज तक दास तुम्हारे,
आजीवन वे रहे सदा सत्याग्रह धारे।
आत्मिक बल से भीत भीम भट ऐसे हारे,
जैसे गीदड भगे सिंह-सुत के ललकारे ॥
शक्ति यही अब दीजिये, प्रिय भारत-सन्तान को।
भेजा है यदि अग्रणी, 'गाँधी' से गुणवान को ॥१६

□

राष्ट्रीयता

प्राणिमात्र मे प्रेम ब्रह्म की तरह समाया,
घट-घट मे है देख पड रही इसकी माया।
इसमें मधु-माधुर्य मक्खियो तक ने पाया,
मनुजो ने तो इसे प्राण ही सा अपनाया।
इसने इस मरलोक मे सदा अमृत की सृष्टि की।
कुल, कुटुम्ब की, जाति की, इसने जग मे सृष्टि की ॥१

कुल मिलकर जब बँधे एकता के बन्धन मे,
लगे विरने भाव एक-से मानव-मन मे।

हुई एक ही प्रीति धर्म में थी या धन में,
भव्य भवन बन गये, बस्तियाँ बस कर बन में।
जन्मी यों जातीयता पलने में पलने लगी।
विद्युत्-गति से यह चली जब पैरों चलने लगी ॥२

चिरकाल में कभी प्रेम में फँसकर आई,
कभी धरणि-धन-लोभ धर्म में धँसकर आई।
कभी विजयलालसा लोल में नसकर आई,
रही हँसाती रही जब तलक हँसकर आई।
निखरी इसकी सुघर छवि दूना हुआ अमाल है।
अब तो जातीयता का जग में यौवनकाल है ॥३

बढ़ी एकता, तोड़ धर्म्म बन्धन को डाला,
उर में है स्वातंत्र्य भाव धर लिया निराला।
हुआ देश में प्रेम उसी की जपती माला,
जिसने देखा हुआ उसी का मन मतवाला।
योद्धाओं की जान भी इस पर बलि जाने लगी।
दृश्य स्वर्ग का मर्त्य मे है यह दिखलाने लगी ॥४

बनी जातियाँ राष्ट्र-शक्ति निज केन्द्रित करके,
देशराज्य के प्रेम, एकता से भर-भर के,
भेद-भाव मिट चले घाट के रहे न घर के,
अमर हुए राष्ट्रीय समर में योद्धा मरके।
प्रतिबन्धक जितने मिले उनके सिर तोड़े गये।
नाते स्वाधीनता से राष्ट्रों के जोड़े गये ॥५

ऐक्य, राज्य, स्वातंत्र्य यही तो राष्ट्र-अंग है,
सिर, धड़, टांगो सदृश जुड़े हैं संग-संग है।
सप्तरंग इव मनुज मिले हैं एकरंग हैं,
बुन्द-बुन्द मिल जलधि बने लेते तरंग हैं।
व्यक्ति, कुटुम्ब, समाज सम मिले एक ही द्वार में।
मिला शान्तिसुख राष्ट्र के पावन पारावार में ॥६

हैं मस्तिष्क अनेक किन्तु सब हृदय एक हैं,
जाति-देश के हानि-लाभ के समय एक हैं।
होकर परम सशक्त वीर हैं अभय एक हैं,
अस्त एक ही और सभी के उदय एक हैं।

हुआ ऐक्य इस भाँति जब फिर क्या पौबारा हुए।
लोकविदित लौकोक्ति है एक-एक ग्यारा हुए ॥७

आँख उठाये, रही शक्ति यह किस नृपवर मे ;
क्या मजाल, कर सके उन्हे जो कोई कर में।
सिर तोडे जो हाथ कहीं डाले पर घर में,
बेयुग फूँटे गोट नहीं परती चौसर में।
कडी-कडी से बन गई बहुत बड़ी जंजीर है।
अब गजेन्द्र को बाँधने में समर्थ है धीर है ॥८

साम्यवाद बन्धुत्व एकता के साधन हैं,
प्रेम-सलिल से स्वच्छ निरन्तर निर्मल मन है।
डाल न सकते धर्म आदि कोई अड़चन है,
उदाहरण के लिए "स्वीस" है "अमेरिकन" है।
मिले रहें मन मनों मे अभिलाषा भी एक हो।
सोना और सुगन्ध हो जो भाषा भी एक हो ॥९

अंग राष्ट्र का बना हुआ प्रत्येक व्यक्ति हो,
केन्द्रित नियमित किये सभी को राजशक्ति हो।
भरा हृदय में राष्ट्रगर्व हो, देशभक्ति हो,
समता मे अनुरक्त विषमता से विरक्ति हो।
राष्ट्र-पताका पर लिखा रहे "न्याय-स्वाधीनता"।
पराधीनता से नही बढकर कोई हीनता ॥१०

बँधते पशुवत् मनुज पराई जजीरो मे,
पिसते बने गुलाम चाल वाले मीरो मे।
रहता कुछ भी भेद न उनमें तसवीरो मे,
होते कंकड सदृश ज्ञात उज्वल हीरों मे।
बन्दा अब इस जगत् मे बन्द्र का बन्दा हुआ।
बँधे हुए जल की तरह मिलता हुआ गन्दा हुआ ॥११

रहें व्यक्ति स्वाधीन अबाधित हो उनकी गति,
हों जो निर्मित नियम दे सकें उसमें सम्मति।
करे जाति निर्णीत स्वयम् निज शासन पद्धति,
समझे जिसको योग्य बनाये उसे राष्ट्रपति।
हाथ रहे हर व्यक्ति का रानियम-निर्धार में।
रहे राष्ट्र-स्वाधीनता शासन में अधिकार में ॥१२

यों स्वतन्त्र जातियाँ शान्ति अन कर रहती हैं,
व्यर्थ नहीं ऐंठती न वह तन कर रहती है।
निज मित्रों से मिली शत्रु हन कर रहती हैं,
पराधीन जातियाँ व्याधि बन कर रहती है।
स्वाभिमान है चित्त में और देश का प्यार है!
तो जातीय-जहाज अब खेओ बेड़ा पार है ॥१३

उठो युवकगण उठो, भेद का भण्डा फोड़ो,
आड़े आयें और रूढ़ि के बन्धन तोड़ो।
सम्मुख उन्नतिपथ प्रशस्त है इसे न छोडो,
राष्ट्र बनाओ और देश से नाता जोडो।
जागृत हो जातीयता उन भावों का ध्यान हो।
भारत के अरमान हो तुम्हीं देश की जान हो ॥१४

बाँधो सबको ऐक्य-सूत्र मे तुम बँध जाओ,
मुड़ो न पीछे राष्ट्रयज्ञ मे आओ, आओ।
सोमसुधा-स्वातन्त्र्य वीरगण पियो पिलाओ,
प्राणदान दो जाति मृतक जो रही जिलाओ।
बंशी बजे स्वराज्य की होने घर-घर गान दो।
जय-जय भारत की कहो और छेड़ यह तान दो ॥१५

जय-जय भारतराष्ट्र परमप्रिय प्राण हमारे,
संभव विभव विभूति जयति जय प्राण हमारे।
जय रस, रूप, स्पर्श, शब्द जय त्राण हमारे,
तूने जागृत किये भाव भ्रियमाण हमारे।
जीवन हमको दे रहा तेरा ही जलयान है।
तेरी ही वर वायु मे हममे आई जान है ॥१६

तेरा गौरव हमे गौरवान्वित करता है,
तेरा वैभव परम दीनता दुख हरता है।
तेरा बल बलहीन जनों मे बल भरता है,
तेरा यशामयंक धवलाता धुर धरता है।
पावन तेरी वसुमती रत्नगणों की खान है।
भूषण है तू भुवन का तू हम सबकी जान है ॥१७

फेंको-फेंको फूट प्रेममधु-भोग लगाओ,
दूर करो दासता न अब यह रोग लगाओ।

जुड़ जायें सब अंग वही अब योग लगाओ,
मिलकर ऐसी लगन-लाग सब लोग लगाओ।
एक बार फिर जगत् का चित्त चकित होने लगे।
देख प्रताप प्रचण्ड बल दृष्टि थकित होने लगे।।१८

जहाँ नहीं सर वहाँ नहीं होता सरोज-धन,
जहाँ नहीं रस वहाँ नहीं जाता मिलिन्द-मन।
जहाँ नहीं व्यापार वहाँ कब रहा धान्य-धन,
जहाँ नहीं सरकार वहाँ क्या जाये सज्जन!
जहाँ नहीं जातीयता वहाँ कहीं जीवन नहीं!
फल की आशा जड़ बिना क्या दीवानापन नहीं!।१९

ठीक समय है यही वीर! अवसर मत चूको,
फूंको-फूंको शंख कता का अब फूंको।
बनो शिवाजी बना भवानी भारत-भू को,
बन्द न हो यह घड़ी कूक कुछ ऐसी कूको।
नींव राष्ट्र की प्रौढ़ हो साधन सब तैयार हैं।
गुणवर चतुर परिश्रमी नेतागण मेमार हैं।।२०

हो शरीर यह शिला भव्य जातीय महल की,
गारा-सा है रुधिर जरूरत क्या है जल की।
चूना हो हड्डियाँ जुड़ाई हो कसबल की,
फिर न हिलाई हिले इमारत यह अरिदल की।
गर्वोन्नत शिर वक्र भ्रू एक अनोखी आन से।
सिंहासन आसीन हो भारतमाता के शान से।।२१

देखें कब भगवान हमें वह दिन दिखलायें,
सकल जातियाँ-देश राष्ट्र की पदवी पायें।
क्षीर-नीर की भाँति परस्पर सब मिल जायें,
वृहद् राष्ट्र बन जायें शान्ति की उड़े ध्वजायें।
साम्यभाव बन्धुत्व से पूरा आठो गाँठ हो।
फिर "वसुधैव कुटुम्बकम्" का घर-घर में पाठ हो।।२२

□

मौन भाषा

जिनके रसना नही मौन है बेजबार है, अथवा दुखवश बने मूक ही के समान है।
दर्द भरी वे यदपि नही छोड़ते तान है, अपनी बीती प्रकट नही करते बयान हैं ।।
तदपि भाव क्या-क्या प्रकट करते है चुपचाप ही,
कहाँ शक्ति वक्तृत्व मे है यह, कीजे आप ही ।।१

यह असीम आकाश असंख्य चमकते तारे, औषधीश रजनीश सूर्य सर्वस्व हमारे।
अगम अगाध समुद्र उच्चगिरि गुरुता धारे, बड़े-बड़े मैदान नदी नद कटे करारे ।।
ये सब विभु की सृष्टि मे क्या है रहते ही नही।
माना है ये मौन पर क्या कुछ कहते ही नही ।।२

खडरो की यह झुकी खड़ी दर की दीवारे, कुछ कहने को खोल रही मुँह, नहीं दरारे।
बेजबान है हाय ! और किस तरह पुकारें, रोती है चुपचाप और क्या दाढ़े मारें ।।
चहल-पहल वह अब रही और न वे स्वामी रहे।
मिटने को है नाम भी कहने को नामी रहे ।।३

इनकी करुणा कथा आप क्या कुछ न सुनेंगे, क्या इनकी दुर्दशा देखकर सिर न धुनेंगे।
भाव-रत्न है ढेर आप क्या कुछ न चुनेंगे ? क्या रोड़ो को आप व्यर्थ ही वस्तु गुनेंगे ?
टूटे-फूटे खण्ड थे बिखरे ग्रन्थ पवित्र है।
पुरातत्व-इतिहास के इनमे जीवित चित्र है ।।४

दीना विधवा हाय ! सहाय सहारे जिसके—प्रियतम श्रीपतिदेव देवपुर असमय खिसके।
रहे कलेजा थाम न रोये, तड़पे, सिसके, पर न करेगी छेद हृदय-पत्थर मे किसके?
उनकी यह चिरमौनता मुख छवि मुरझाई हुई।
घोर उदासी क्षीणता अग-अंग छाई हुई ।।५

कह देगी क्या वे न सजल आखें पुकार के ? बेडा डूबा हाय ! हमारा बीच धार के।
और कमलिनी पर न छिपेगे चिर-तुषार के, बिखा कहेगे बाल भ्रमर से भरे छार के ।।
बिगड गया सर्वस्व ही अब सँवार के दिन गये।
तीक्ष्ण तपनि का समय है वे बहार के दिन गये ।।६

वह अनाथ असहाय भिखारी, बालक भूखा, कोई उसको नहीं, खिलाता रूखा-सूखा।
हाय कौन अब कहे, लाल ! मेरे चल तू खा, पडे कई उपवास पेट सूखा मुँह सूखा ।।
नही माँगना जानता खड़ा हुआ चुपचाप है।
मानो सम्मुख आ गया मूर्तिमान परिताप है ।।७

बिना कहे ही व्यक्त कर रही करुण कहानी, दुखिनी आँखे और कान्ति मुख की कुम्हिलानी।
बाल रहा प्रत्यंग कि माँ की गोद न जानी, बदा हुआ था द्वार द्वार का दाना-पानी ।।
वाम विधाता ने किये जो-जो अत्याचार है।
मुख-मुद्रा से हो रहे जाहिर सब आसार हैं ।।८

पर कतरे है, क़ैद किया है, जबा काट ले, दे-दे छलिया छुरी कि खंजर लहू चाट-ले।
बुलबुल से खल वधिकर बैर अपना निपाट ले, पर पीड़न के पास-पुञ्ज से भवन पाट ले ।।
सिर पर चढ़कर खून पर छिपा न फिर रह जायेगा।
नुचे परों का ढेर सब उड-उड़ कर कह जायेगा ।।६

कर्म्मवीर चुपचाप खड़ा करता शोर है, मुँह से कहें न लोग चित्त पर उसी ओर है।
है यह भाषा मौन मगर किस कदर जोर है, उस बोली को पहुंच सका चातक न मोर है ।।
दृढ शरीर उसका नही अति विशाल मीनार है।
खबर उसी से दे रहा बिना तार का तार है ।।१०

भारत-मन्त्री दु:ख-दर्द सुनने आये है, समुचित सुखद सुधार-सार चुनने आये हैं।
राजनीति का नया वस्त्र बुनने आये हैं, क्या हैं, किसके स्वत्व तत्व गुनने आये हैं ।।
उनसे अपना ध्येय है कहते सभी पुकार के।
पर बेचारे कृषक हैं रहे मौन ही धार के ।।११

हाँ-हाँ वे ही कृषक चल रही जिनसे रोटी, जिनके तन पर रही सिर्फ है लटी लँगोटी।
जिनकी मिहनत खरी किन्तु किस्मत है खोटी, ज्यो-ज्यो अन्धा बटे करे त्यों पड़वा छोटी ।।
जितनी ही खेती बढी उतना ही टूटा पड़ा।
निर्दय हृदयो, करो से उनका घर लूटा पडा ।।१२

उनकी यह मौनता नही क्या क्या कहती है, चित्त वृत्ति भी कही छिपाये छिप रहती है।
माना घर-घर नही अश्रुधारा बहती है, करुणा स्रोतस्विनी लाज-भंवर गहती है ।।
सहते क्या क्या कष्ट है पाते क्या क्या क्लेश हैं।
पर, घर बैठे मौन ही करते ऐड्रेस पेश है ।।१३

कह ते सकरुण अहो दयानिधि आओ आओ, जो जो मांगे लोग स्वत्व उनको दिलवाओ।
हम दीनो को महोदार पर भूल न जाओ, हम हैं मरणासन्न हमारे प्राण बचाओ ।।
इन कानूनों मे प्रभो ! ऐसा सदय सुधार हो।
अपने खेतो पर हमे कुछ भी तो अधिकार हो ।।१४

इस भाषा की कहूँ कहाँ तक महा महत्ता, चर हो या हो अचर सभी में इसकी सत्ता।
बोली यह बोलता फूल हो या हो पत्ता, है यह इतनी मधुर कि मानो मधु का छत्ता ।।
मुंह बँध जाता है सदा इसकी मञ्जु मिठास से।
होता उज्ज्वल हृदय-नभ इसके ही आभास से ।।१५

चप तक मिलती नही, समय यो चुप जाता है, किन्तु न उसका चरण चिन्ह कुछ लुप जाता है।
शिक्षा का तरु हृदय कुञ्ज मे रुक जाता है, जग के मत्थे सुफल कुपल सब थुप जाता है।
विद्यालय मे विश्व के लें कि न वे तारीख लें।
जिनको हो कुछ सीखना सबक़ समय से सीख लें ।।१६

कर लें पहले किन्तु मौन भाषा का अर्जन, यह कोरी बकवास करें बुधवर्य विसर्जन।
कभी बरसते नहीं अधिक करते जो गर्जन, कर सकता है कौन मौन भाषा का वर्जन ?
हो उमंक, जी खोलकर इस भाषा में बोल लें।
सरल हृदय पहले बनें हृदय ग्रंथियाँ खोल लें ॥१७

मित्रों पहले पहल मनुज जब जग में आया, भाषा थी बस यही कि जिसने काम चलाया।
न तो कोष था कहीं न था व्याकरण बनाया, लेते काम इसी से अब भी शिशु, माँ, दाया ॥
प्रकृति शिक्षिका है बनी इसे सिखाने के लिये।
हृदय निष्कपट चाहिए राह दिखाने के लिये ॥१८

बनें आप यदि कहीं मौन भाषा विज्ञानी, हो त्रिकाल दर्शित्व प्राप्त, फिर, रहे न सानी।
बातें सब आ जायें नई हों या कि पुरानी, झूठे कपटी कह न सकें फिर कपट कहानी ॥
आप वृथा भटकें नहीं सामुद्रिक की चाह में।
दिव्य दृष्टि मिल जायेगी चलिए तो इस राह में ॥१९

जब से हमने पाठ मौन भाषा का छोड़ा, रही मनुजता नहीं पड़ा है इसका तोड़ा।
किसी दीन को डाट डपट कर पकड़ झँझोड़ा, पड़ा किसी पर टूट किसी पर सटका कोडा ॥
कष्ट किसी को क्यो न हो हमे काम से काम है।
नहीं जानते सदयता किस चिड़िया का नाम है ॥२०

ता, मा तो पर सकल जगत के कर लेते हैं, इसकी शिक्षा पूर्ण सुकवि, बुधवर देते हैं।
मति-पत्नी के लिए इसी से पर लेते हैं, ज्ञान महोदधि इसी नाव से तर लेते हैं ॥
पढ़िए प्रियवर आप भी कैसा हूँ मैं कौन हूँ।
श्रीगणेश कर दीजिए मैं अब होता मौन हूँ ॥२१

□

शान्ति

शान्ति इस विश्व में कहाँ है ? एक धोखा है,
कोई बतलाये कि किसी ने शान्ति पाई है ?
एक कवि ने कहा है—"दौड़ने से चलने में,
चलने बैठने में, बैठने से सोने में,
सोने से अधिक मरने में मिली शान्ति है।"
अभिप्राय यह कि शान्ति जीवन में है नहीं,
मरने के बाद शान्ति स्वर्ग ही में हो तो हो।
शान्ति के लिए अनेक समर रचे गये,
कोटि-कोटि मानवों का हुआ बलिदान भी।

कितने ही ज्ञानियों ने, पण्डितों ने मारा सर,
योगियों ने योग की बताई बहु विधियाँ।
ज्यों-ज्यों लोग बढ़े शान्ति पाने की हवस में,
त्यों-त्यों दूर होती गई क्षितिज की रेखा सी।
थक कर अन्त में सँभाली गोद मृत्यु की,
कौन बतलाये शान्ति है कि अब भी नहीं।
फिर भी समस्त विश्व शान्ति की है खोज में,
जितने हैं प्राणी चाह में हैं शान्ति-सुख की,
जब आप देखते हैं हम शान्त बैठे हैं,
आप देख सकते नहीं हैं क्लान्त उर को,
रोता है हृदय पर आँसुओं को रोक हैं,
डरते हैं जी मे कि भरम खुल जायेगा।
संसृति है गतिशील यों भी शान्ति है नही,
उस पर कामनायें उर मे असीम हैं।
काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद हैं भरे हुए,
मानो मन है नही शान्ति का अखाड़ा।
और जाने कितने बखेड़े दुनिया के हैं,
धधक-धधक है उदर-ज्वाला जलती।
प्रति पल रहता अशान्ति ही से सामना,
थक कर लोग करते हैं शान्ति-कामना।
आती आँधियाँ हैं और फिर शान्त होती हैं,
छिड़ते महासमर, सन्धि फिर होती है।
शान्ति कह लीजिये, परन्तु शान्ति है कहाँ,
साधन अशान्ति के जुटाने फिर लगते,
ढलती हैं तोपें, बनते हैं वायुयान भी।
कभी दुनिया मे शान्ति रही हो तो रही हो,
पर आजकल तो दिखाई नहीं पड़ती।

□

आजादी आ रही है

जिस पर कि लोकमान्य ने कुर्बान जान की,
महिमा महान बापू ने जिसकी बखान की।

जिसके लिए सुभाष ने सीधी कृपान की,
अपना के जिसको दूनी जवाहर ने शान की।
आजादी-वतन की समझते जो कद्र हैं।
आजाद हिन्द क्यों न हो "आजाद" सद्र हैं ॥१

यह फिक्र दिल में रहती है अक्सर लगी हुई,
आजादी की लगन है बराबर लगी हुई।
लो देखिए तो यही घर-घर लगी हुई,
है एक आग जो सरासर लगी हुई।
सौदा स्वतन्त्रता का वतन का जुनून है।
क्या रंग ला रहा, ये शहीदों का खून है ॥२

निकले खरे कसौटी मे हर इम्तिहान पर,
बरसो ही बान बटते रहे आन-बान पर।
कितने जवान खेल गये अपनी जान पर,
आने दी आँच पर न तिरंगे की शान पर।
तदबीर मे बनाने को तकदीर चल पड़े।
दीवाने तोड़-तोड़ के जंजीर चल पड़े ॥३

उमड़ा वतन मे कौमी मुहब्बत का जोश है,
हिम्मत बढ़ी हुई है शुजाअत का जोश है।
हर एक नौजवान मे गैरत का जोश है,
रोकेगा कौन इसको कयामत का जोश है।
है क्या अजब जो कब्रो से मुर्दे निकल पड़े।
"जयहिन्द" बोल-बोल के दिल्ली को चल पड़े ॥४

□

भारत-सन्तान

जगत गुरू, जगन्मुक्ति-दातार,
झुकाता था सिर सब संसार।
सभ्यता के आकर आधार,
किया सम सबको हमने प्यार।
बढ़ाया अमरो मे सम्मान, किया यो मनुज-जाति-उत्थान।
वही हम हैं भारत सन्तान, वही हम हैं भारत-सन्तान ॥१

किसी को नहीं बनाया दास,
किसी का किया नहीं उपहास।
किसी का छीना नहीं निवास,
किसी को दिया नहीं है त्रास।

किया है दुखित जनो का त्राण, हाथ में लेकर कठिन कृपाण।
वही हम हैं भारत-सन्तान, वही हम हैं भारत-सन्तान ॥२

बहुत दिन सहा न स्वेच्छाचार,
कर दिया दुष्टों का संहार।
विदित भृगुपति का कठिन कुठार,
शिवा की धार दार तलवार।

रामू के व्याल सदृश वे बाण, खा गये अरि को भेक समान।
वही हम हैं भारत-सन्तान, वही हम हैं भारत-सन्तान ॥३

बैध-आन्दोलन पर तुल गये,
आज हैं हम फिर मिल-जुल गये।
दाग़ हृदयों के हैं धुल गये,
आज फिर जौहर हैं खुल गये।

हमारा भूत, भविष्य महान, गूंजती गली-गली यह तान।
वही हम हैं भारत-सन्तान, वही हम हैं भारत-सन्तान ॥४

हमें धमकाये कोई लाख,
उठाये हाथ, दिखाये आँख।
न खोयेंगे हम अपनी साख,
करेंगे पूरी निज अभिलाख।

न छोड़ेंगे हम अपनी आन रहे चाहे जाये यह जान।
वही हम हैं भारत-सन्तान, वही हम हैं भारत-सन्तान ॥५

किसी के नहीं छीनते स्वत्व,
बढ़ाते झूठा नहीं महत्त्व।
नहीं कुछ छल-छन्दों में तत्त्व,
दिखा देंगे दुनिया को सत्त्व।

चूर कर देंगे हम अभिमान, मिटा के झूठी शेखी शान।
वही हम हैं भारत-सन्तान, वही हम हैं भारत-सन्तान ॥६

पौष-मार्गशीर्ष : शक १८०४]

हमारे जन्म-सिद्धि अधिकार,
अगर छीनेगा कोई यार।
रहेंगे कब तक मन को मार,
सहेंगे कब तक अत्याचार।
कभी तो आवेगा यह ध्यान, सकल मनुजो के स्वत्व समान।
वही हम हैं भारत-सन्तान, वही हम हैं भारत-सन्तान ।।७

□

सन् १८५७ की जनक्रान्ति

जब विदेशियों का भारत में, धीरे-धीरे अधिकार हुआ।
बन गया प्रजा के लिए नरक सूना मुख का संसार हुआ ।।
जनता का रक्त चूसने को, व्यवसाय हुआ, व्यापार हुआ।
थे दुखद दासता के बन्धन, उस पर यह अत्याचार हुआ ।।
छिन गया शिल्प शिल्पीगण का, छिन तख्त गये, छिन ताज गये।
शाहो की शाही छिनी और राजाओ के भी राज गये ।।

जो थे लक्ष्मी के लाल वही, दानों के हो मुहताज गये।
नौकर यमदूत कम्पनी के बन और कोढ मे खाज गये ।।

तब धूं-धूं करके धधक उठी, जनता की अन्तर-ज्वालायें।
वीरो की कहे कहानी क्या, आगे बढ आयी बालायें ।।

आँखों मे खून उतर आया तलवारें म्यानों से निकलीं।
टोलियाँ जवानों की बाहर, खेतों-खलिहानों से निकलीं ।।

सम्राट बहादुरशाह "जफर", फिर आशाओ के केन्द्र बने।
सेनानी निकले गाँव-गाँव, सरदार अनेक नरेन्द्र बने ।।

लोहा इस भाँति लिया सबने रंग फीका हुआ फिरंगी का।
हिन्दू-मुस्लिम हो गये एक, रह गया न नाम दुरंगी का ।।

अपमानित सैनिक मेरठ के, फिर स्वाभिमान मे भडक उठे।
घनघोर बादलों से गरजे, बिजली बन-बन कर कडक उठे ।।

हर तरफ क्रान्ति ज्वाला दहकी, हर ओर शोर था जोरो का।
"पुतला बचने पाये न कही पर; भारत में अब गोरों का ।।

आगरा-अवध के बीर बढे आगे बगाल बिहार बढ़ा।
जो था सपूत, वह आजादी की करता हुआ पुकार बढ़ा ।।

हाँ, हृदय देश का मध्य हिन्द रण मदोन्मत्त हुंकार बढ़ा।
झाँसी की रानी बढ़ी और नाना लेकर तलवार बढ़ा॥

कितने ही राजों नव्वाबों ने, कसी कमर प्रस्थान किया।
हम बलिवेदी की ओर बढ़े, इसमे अनुभव अभिमान किया॥

आसन परदेशी सत्ता का पीपल-पत्ता सा डोल उठा।
उत्साहित होकर भारतीय "भारत माँ की जय" बोल उठा॥

दुर्दैव, किन्तु कुछ भारतीय, बन आये बेंट कुल्हाड़ी के।
पीछे खीचने लगे छकड़ा गरियार बैल ज्यो गाड़ी के॥

धन-लाभ किसी को हुआ और कुछ आये पद के झाँसी मे।
देश-द्रोही बन गये फँसे जो मोह-लाभ के लासे थे॥

बलिदान व्यर्थ कर दिए और पहनाया तौक गुलामी का।
यह मिला नतीजा हमे बुरा अपनी-अपनों को खामी का॥

दब गई क्रान्ति की ज्वालायें, भारत अधिकांश उजाड़ हुआ।
गोरों के अत्याचारो से जीवन भी एक पहाड़ हुआ॥

यह कही दमन-दावानल से, उपचार क्रान्ति का होता है।
रह-रह कर उबल-उबल पड़ता, यह ऐसा अद्‌भुत सोता है॥

फिर भड़के जहाँ-तहाँ, जब-तब जल उठे क्रान्ति के अंगारे।
आजादी को बलिवेदी पर, बलि हुए देश-लोचन सारे॥

बीसवी सदी के आते ही, फिर उमड़ा जोश जवानो मे।
हलकम्प मच गया नए सिरे से, फिर शोषक शैतानों मे॥

सौ बरस भी नही बीते थे सन् बयालीस पावन आया।
लोगो ने समझा नया जन्म लेकर सन् सत्तावन आया॥

आजादी की मच गई धूम फिर शोर हुआ आजादी का।
फिर जाग उठा यह सुप्त देश चालीस कोटि आबादी का॥

लाखो बलिदान ले चुकी है आजादी आने वाली है।
अब देर नही रह गयी तनिक काली का खप्पर खाली है॥

पीछे है सृजन "त्रिशूल" हाथ में लेता प्रथम कपाली है।
है अन्त भला सो हाथ आई अपने ही पाली है॥

□

सत्याग्रही प्रह्लाद

जलेगी होलिका प्रह्लाद "हरि-हरि" जप के निकलेगा।
खरा सोना "सनेही" आग ही में तप के निकलेगा॥

मैं डरने का नहीं चमकती तलवारों से,
जंजीरों की जकड़ कठिन कारागारों से।
महा मत्त गजराज, घातकों की मारों से,
अगम सिन्धु से और आग से अंगारों से।

श्री हरि-नाम-प्रताप से दुख भी मुझको मोद है।
शय्या फूलों की बनी अग्नि-देव की गोद है॥१

है असत्य संसार, मोह-माया है, छल है,
सत्य एक हरि नाम भान होता प्रति पल है।
मुझे सत्य पर प्रेम और विश्वास अटल है,
यह निराश की आश यही निर्बल का बल है।

मैं विचलित हूँगा नहीं व्यर्थ काल की चाल है।
करे वार पर वार वह, यहाँ अहिंसा-ढाल है॥२

पिता भ्रमित हैं, मुझे पिता पर रोष नहीं है,
कर्म-कुफल है प्रकट किसी का दोष नहीं है।
मोह-मन्त्र से लोग मुग्ध है, होश नहीं है,
मुझको प्रिय हरिनाम, धाम धन कोष नहीं है।

टले मेरु, मन्दर टले, सीमा विधि-मर्याद की।
पर टल सकती है नहीं, अटल टेक प्रह्लाद की॥३

ज्ञान-दीप में जला आप जल कर जाऊँगा,
करके सत्य-प्रकाश, असत्-तम हर जाऊँगा,
है अनित्य यह देह सोच क्या मर जाऊँगा,
श्री हरि-सत्य-प्रताप पलक में तर जाऊँगा।

अपराधी हैं या नहीं, मृत्यु-दण्ड स्वीकार है।
सब सरकारों से बड़ी श्री हरि की सरकार है॥४

□

जागृति-गीत

तू जन्मभूमि की सुन पुकार ॥
बन्धन में पड़ी सिसकती है,
विपदा है कड़ी सिसकती है।
उपचार नहीं कोई चलता,
व्याकुल हर घड़ी सिसकती है।
साहस कर साहस ले उबार।
तू जन्मभूमि की सुन पुकार ॥

बैरी भी घात लगाए हैं,
बढ़-बढ़ कर चढ़-चढ़ आए हैं।
नाकों दम देश-द्रोहियों से,
वे मुक्ति-सूत्र उलझाए हैं,
अब सुलझा गुत्थी कर सुधार।
तू जन्मभूमि की सुन पुकार ॥

जीवन किसने है दिया तुझे,
सामर्थ्यवान है किया तुझे।
तू सोया किसकी छाती पर,
दिन-रात गोद तक लिया तुझे।
यह तो अपने मन में विचार।
तू जन्मभूमि की सुन पुकार ॥

थक गई भार धरते-धरते,
सेवा तेरी करते-करते।
पत्थर बन गया न पिघला तू,
कुछ तो कर ले मरते-मरते।
ऋण तुझ पर है मन में विचार।
तू जन्मभूमि की सुन पुकार ॥

□

साम्यवाद

समदर्शी ने सकल मनुज सम उपजाये थे,
प्रकृति-दत्त अधिकार सभी ने सम पाये थे।
अमृत-पुत्र सम सभी जगत बन में आये थे,
सब ने मेवे मधुर मुक्ति के सम खाये थे।
जीवन-उपवन के लिए जन समान दरकार था।
पृथ्वी, पानी, पवन पर सबका सम अधिकार था ॥१

भेड़ एक हो और दूसरा शेर, नहीं था,
एक बाज हो और अनेक बटेर, नही था।
एक जबर हो और दूसरा जेर नही था,
आये दिन यह मचा हुआ अन्धेर नहीं था।
सबको सम संसार मे सब सुख, सकल सुपास थे।
प्रभु उनमे कुछ थे नही और नही कुछ दास थे ॥२

पर मनुजो की प्रकृति रंग कुछ ऐसे लाई,
समय-समय पर घोर क्रान्ति जग मे करवाई।
सबल पड़े बलवान मौत निर्बल की आई,
बना सुदामा एक, एक धनपति का भाई।
घोर नारकी एक तो एक स्वर्ग का दूत-सा,
एक पुण्यमय पूत अति, पापी एक अछूत-सा ॥३

कुछ भूखों मर रहे महा तनु शीर्ण हुआ है,
कुछ इतना खा गये कि घोर अजीर्ण हुआ है।
कैसा यह वैषम्य-भाव अवतीर्ण हुआ है,
जीर्ण हुआ मस्तिष्क, हृदय सकीर्ण हुआ है।
कुछ मधु पीकर मत्त हो, आँसू पीकर कुछ रहें।
कुछ लूटे संसार-सुख, मरते जी कर कुछ रहे ॥४

कुछ को मोहनभोग बैठ कर हों खाने को,
कुछ सोवे अधपेट तरस दाने-दाने को।
कुछ तो ले अवतार स्वर्ग के सुख पाने को,
कुछ आये, बसनरक भोग कर मर जाने को।
कुछ आनन्द-तरंग मे मग्न सदा रहकर रहे।
कुछ जीवन-भर क्लेश मे, "हाय भाग्य !" कहकर रहें ॥५

प्रलय-धार-सी बढ़ी विषमता विष-सी धाई ,
तह में सोये बहुत, नाव कुछ ही ने पाई ।
दूर जा पड़े बहुत छूट कर भाई-भाई ,
डूबा सकल समाज, बाढ़ कुछ ऐसी आई ।
स्वर्ग नरक दोनों विषम बने साम्य-संसार में ।
कोई महलों में रहा, कोई कारागार में ।।६

पड़े-पड़े ही लोग लगे कुछ मौज उड़ाने ,
कुछ श्रम से भी पा न सके मुट्ठी-भर दाने ।
मिटी मित्रता, लगे मनुज से मनुज घिनाने ,
एकरूप वह कहाँ, बन गये नाना बाने ।
वो पाँसें पड़ते कि कुछ बने श्रेष्ठ कुछ हीन हैं ।
"पौबारा" कुछ के सदा, कुछ के "काने तीन" हैं ।।७

श्रम किसका है मगर मौज हैं कौन उड़ाते ,
है खाने को कौन, कौन उपजा कर लाते ।
किसका बहता रुधिर, पेट हैं कौन बढ़ाते ,
किसकी सेवा और कौन हैं मेवा खाते ।
क्या से क्या यह देखिये, रंग हुआ संसार का ।
युग विकास या ह्रास का सिरजन या संसार का ।।८

यह दारुण वैषम्य काल की यह निठुराई ,
रावण की क्रूरता कंस की सी कुटिलाई ।
मारे कितने मनुज मौत इसने बे-आई ,
नहीं सूझने दिया, हाय भाई को भाई ।
परम पीड़ित विह्वल, पृथ्वी लगी पुकारने ।
हिला दिया हरि का हृदय, भीषण हाहाकार ने ।।६

समदर्शी फिर "साम्य" रूप धर जग में आया ,
समता का सन्देश गया घर-घर पहुँचाया ।
धनद-रंक का, ऊँच-नीच का, भेद मिटाया ,
विचलित हो वैषम्य बहुत रोया चिल्लाया ।
काँटे बोये राह में फूल वही बनते गये ।
साम्यवाद के स्नेह में सुजन-सुधी सनते गये ।।१०

ठहरा यह सिद्धान्त स्वत्व सबके सम हो फिर,
अधिक जन्म से एक दूसरे क्यों कम हों फिर।
पर-सेवा में लगे-लगे क्यों बेदम हों फिर,
जो कुछ भी हो एक साथ ही सब हम हों फिर।
सांसारिक सम्पत्ति पर सबका सम अधिकार हो।
वह खेती या शिल्प हो विद्या या व्यापार हो ॥११
सभी प्रकृति के पुत्र जान सबको है प्यारी,
पायें प्रकृति-प्रसाद सभी हैं सम अधिकारी।
धनाधीश क्यों रहे एक दूसरा भिखारी,
है यह अति अन्याय लोक-उत्पीड़नकारी।
मिलता दीनों को नहीं, समुचित श्रम का मोल है।
प्रकट न देखें लोग पर, भरी ढोल मे पोल है ॥१२
एक रहे सुर और दूसरा असुर, न हो अब,
दुर्योधन हो एक दूसरा विदुर, न हो अब।
एक रहे कटु और दूसरा मधुर, न हो अब,
बहुत रहा वैषम्य जगत् मे प्रचर न हो अब।
सुख-दुख सम सबके लिए हों इस नये समाज में,
सब का हाथ समान हो, लगा तख्त मे, ताज में ॥१३
फैले हैं ये भाव नया युग लाने वाले,
घोर क्रान्ति कर उलट-फेर करवाने वाले।
कलि में सतयुग सत्य रूप वर लेने वाले,
समता का सन्देश सप्रेम सुनाने वाले।
समता-सरि की बाढ मे, ऊँच-नीच बह जायगा।
समतल-जल ही की तरह, एक रूप रह जायगा ॥१४

□

असहयोग

कठिन है परीक्षा न रहने कसर दो,
न अन्याय के आगे तुम झुकने सर दो।
गँवाओ न गौरव नये भाव भर दो,
हुई जाति बेपर है तुम इसको पर दो।
असहयोग कर दो।
असहयोग कर दो ॥१

जानते हो घर-घर खिलाफत का मातम,
अभी दिल में ताज़ा है पंजाब का ग़म।
तुम्हें देखता है खुदा और आलम;
यही ऐसे ज़ख्मों का है एक मरहम।
असहयोग कर दो।
असहयोग कर दो ॥२

किसी से तुम्हारी जो पटती नहीं है,
उधर नींद उसकी उचटती नहीं है।
अहम्मन्यता उसकी घटती नहीं है,
रुदन सुन के भी छाती फटती नहीं है।
असहयोग कर दो।
असहयोग कर दो ॥३

बड़े नाजों से जिनको माँओं ने पाला,
बनाये गये मौत के वे निवाला।
नहीं याद क्या बागे जलियानवाला;
गये भूल क्या दागे जलियानवाला!
असहयोग कर दो।
असहयोग कर दो ॥४

गुलामी में क्यों वक्त तुम खो रहे हो,
ज़माना जगा हाय तुम सो रहे हो।
कभी क्या थे पर आज क्या हो रहे हो,
वही बेल हर बार क्यों बो रहे हो।
असहयोग कर दो।
असहयोग कर दो ॥५

हृदय चोट खाये दबाओगे कब तक,
बने नीच यों मार खाओगे कब तक।
तुम्हीं नाज़ बेजा उठाओगे कब तक,
बँधे बन्दगी यों बजाओगे कब तक!
असहयोग कर दो।
असहयोग कर दो ॥६

नजूमी से पूछो न आमिल से पूछो,
रिहाई का रास्ता न कातिल से पूछो।

ये है अक्ल की बात अक्ल से पूछो,
"तुम्हें क्या मुनासिब है" खुद दिल से पूछो।
असहयोग कर दो।
असहयोग कर दो ॥७

जियादा न जिल्लत गवारा करो तुम,
ठहर जाओ अब वारा-न्यारा करो तुम।
न शह दो, न कोई सहारा करो तुम,
फँसो पाप में मत, किनारा करो तुम।
असहयोग कर दो।
असहयोग कर दो ॥८

दिखाओ सुपथ जो बुरा हाल देखो,
न पीछे चलो जो बुरी चाल देखो।
कृपा-कुंज में जो छिपा काल देखो,
भरा मित्र में भी कपट जाल देखो।
असहयोग कर दो।
असहयोग कर दो ॥९

सगा बन्धु है या तुम्हारा सखा है,
मगर देश का वह गला रेतता है।
बुराई का सहना बहुत ही बुरा है,
इसी में हमारा तुम्हारा भला है।
असहयोग कर दो।
असहयोग कर दो ॥१०

धराधीश हो या कि धनवान कोई,
महाज्ञान हो या कि विद्वान कोई।
उसे हो न यदि राष्ट्र का ध्यान कोई,
कभी तुम न दो उसको सम्मान कोई।
असहयोग कर दो।
असहयोग कर दो ॥११

अगर देश ध्वनि पर नहीं करने देना,
समय की प्रगति पर नही ध्यान देता।
वतन के भुला सारे एहसान देता,
बना भूमि का भार ही जान देता।

असहयोग कर दो ।
असहयोग कर दो ।।१२

उठा दो उसे तुम भी नजरों से अपनी,
छिपा दो उसे तुम भी नजरों से अपनी ।
गिरा दो उसे तुम भी नजरों से अपनी,
हटा दो उसे तुम भी नजरों से अपनी ।
असहयोग कर दो ।
असहयोग कर दो ।।१३

न कुछ शोरगुल है मचाने से मतलब,
किसी को न आँखें दिखाने से मतलब ।
किसी पर न त्योरी बढ़ाने से मतलब,
हमें मान अपना बचाने से मतलब ।
असहयोग कर दो ।
असहयोग कर दो ।।१४

कहाँ तक कुटिल क्रूर होकर रहेगा,
न कुटिलत्व क्या दूर होकर रहेगा ।
असत् सत् मे सत् शूर होकर रहेगा,
प्रबल पाप भी चूर होकर रहेगा ।
असहयोग कर दो ।
असहयोग कर दो ।।१५

भुला पूर्वजों का न गुणगान देना,
उचित पापपथ मे नही साथ देना ।
न अन्याय मे भूलकर हाथ देना,
न विष-बेलि में प्रीति का पाथ देना ।
असहयोग कर दो ।
असहयोग कर दो ।।१६

न उतरे कभी देश का ध्यान मन से,
उठाओ इसे कर्म से मन-वचन से ।
न जलना पड़े हीनता की जलन से,
वतन का पतन है तुम्हारे पतन से ।
असहयोग कर दो ।
असहयोग कर दो ।।१७

डरो मत नहीं साथ कोई हमारे,
करो कर्म तुम आप अपनें सहारे।
बहुत होंगे साथी सहायक तुम्हारे,
जहाँ तुमने प्रिय देश पर प्राण वारे।
असहयोग कर दो।
असहयोग कर दो ॥१८

प्रबल हो तुम्हीं सत्य का बल अगर है,
उधर गर है शैतान ईश्वर इधर है।
मसल है कि अभिमानी का नीचा सर है,
नहीं सत्य की राह में कुछ ख़तर है।
असहयोग कर दो।
असहयोग कर दो ॥१९

अगर देश को है उठाने की इच्छा,
विजय-घोष जग को सुनाने की इच्छा।
व्रती होके कुछ कर दिखाने की इच्छा,
व्रती बन के व्रत को निभाने की इच्छा।
असहयोग कर दो।
असहयोग कर दो ॥२०

अगर चाहते हो कि स्वाधीन हों हम,
न हर बात मे यो पराधीन हों हम।
रहे दासता में न अब दीन हो हम,
न मनुजत्व के तत्व से हीन हो हम।
असहयोग कर दो।
असहयोग कर दो ॥२१

न भोगा किसी ने भी दुख-भोग ऐसा,
न छूटा लगा हस्य का रोग ऐसा।
मिले हिन्दू-मुसलिम लगा योग ऐसा,
हुआ मुद्दतो मे है संयोग ऐसा।
असहयोग कर दो।
असहयोग कर दो ॥२२

नहीं त्याग इतना भी जो कर सकोगे,
नहीं मोह को जो नहीं तर सकोगे।

अमर होके जो तुम नहीं मर सकोगे,
तो फिर देश के क्लेश क्या हर सकोगे।
असहयोग कर दो।
असहयोग कर दो॥२३

□

उर्दू की राष्ट्रीय कवितायें

गजल नं० १

पीछे पड़े हैं योरूपी अजार की तरह,
मजबूर एशियाई हैं बीमार की तरह।
हमसे छिपी न रह सकी उस अवगुमा की बात,
दिल की खबर हमारे हुई वार की तरह।
अवतार पर यक़ीन जिन्हे हो न; देख लें,
गांधी भी आज पुजते हैं अवतार की तरह।
दिलजोई का था कौल मगर दिल मसल दिया,
वादा खिलाफ़ कौन है सरकार की तरह।

गज़ल नं० २

वो हम पे जफ़ा पर जफ़ा कर रहे हैं।
हमारा ही उल्टा गिला कर रहे हैं।
गज़ब है, कि है एक का एक दुश्मन,
इन्हें क्या था करना, ये क्या कर रहे हैं।
जो करते हैं तर्पण गरीबों के खूं से,
वो बापो की अपने गया कर रहे हैं।
पिलाते हैं रह-रह के यह घूंट विष के,
दिखाते हैं हम यह दवा कर रहे हैं।
गला काटते कुन्द तलवार से हैं,
मुहब्बत का हक़ यह अदा कर रहे हैं।
हैं बीमार के उनके जन्नत यहीं पर,
वो दामन से अपने हवा कर रहे हैं।

गज़ल नं० ३

हैं दम भरते हम उनका, वे हमें बेदम समझते हैं।
समझते होंगे वे जी में कि हम कुछ कम समझते हैं।
हमारे दर्द-दुख का हाल कोई ग़ैर क्या समझते हैं,
गुज़रती हम पे क्या-क्या है, उसे बस हम समझते हैं।
शरारत से नहीं बाज़ आते हमको छेड़े जाते हैं,
अगर हम कहते है कुछ तो, उसे ऊधम समझते हैं।
हमें हाजत नहीं है अब किसी की रहनुमाई की,
हम अपने दिल के आईने को जामें-जम समझते हैं।
'त्रिशूल' अब तो उठा दिल से है उनका एतिबार ऐसा,
जो वह हीरानी देते हैं मिला सब हम समझते हैं।

गज़ल नं० ४

है ये बे-मिस्ल बलन्दी में हमारा झण्डा ?
जान से मुल्क सिवा, मुल्क से प्यारा झण्डा।
पस्त जब झण्डा था तो हम भी थे पस्ती मे पड़े,
है बलन्दी पे पहुँचने का सहारा झण्डा।
दिल में गैरो के खटकता रहा काँटा बनकर,
अपने घर से मगर हमने न उतारा झण्डा।
आये दिन अच्छे, नहीं देर अब आज़ादी मे,
बन के चमका है ये क़िस्मत का सितारा झण्डा।
मादरे हिन्द के चरनो के सहारे हम हैं,
और माता के है हाथो का सहारा झण्डा।
अब चलें साथ मेरे फ़ख़् है जिनको मुझ पर,
कर रहा है सरे मैंदाँ .ये इशारा झण्डा।

गज़ल नं० ५

ये चर्खा चक्र है इसका चले जो चर्खा घर घर में।
लगाये इस कदर चक्कर कि चर्ख आ जाये चक्कर में।
क़रार आता नही है जब से दिल दस्ते सितमगर मे,
न बाहर चैन आता है न जी लगता है अब घर में।
मिले हैं जब तक आपस मे नहीं दुश्मन का कुछ खटका,
कि मस्ती है तो मरती है अकेली गोट चौसर में।

गुलामी और जिल्लत मे बहुत दिन हमने दिन काटे,
खुदा जाने लिखा है और तब क्या क्या मुक़द्दर में।
गले मिलने से उससे आरज़ू बिनती गले को थी,
लिपट कर रह न जाता क्यों गले का खून खंजर में।
न जाने क्यों तरह देता है यह दिल वर्ना ये ज़ालिम,
डुबा दे तुझको वह तूफ़ाँ है अहने दीदये-तर में।

□

हिन्दी ग़ज़ल

जीवन भर जिसकी चाह रही,
जीते जो वह प्रियवर न मिला।
अर्पित करते यह अश्रुहार,
ऐसा कोई अवसर न मिला।
बन-बन ढूँढा योगी बन कर,
दिश-दिश मे अलख जगा आये,
है कही यहीं पर उसका घर,
घर-घर देखा, वह घर न मिला।
कैसे हम भला गले मिलते,
छाती मे छाती मिलनी क्या,
दर्शन तक दुर्लभ रहे हमे,
जीवन भर कर से कर न मिला।
उसने मिलने का वचन दिया,
इससे जी को सन्तोष रहा,
अब क्या मिलने की आस करें,
जब अब तक वह आकर न मिला।
जितने सुन्दर देखे, निकले,
वह नीरस किंशुक सुमन सदृश,
होता जो सरस दयालु हृदय
ऐसा कोई सुन्दर न मिला।
छवि उसकी अंकित कण-कण में,
उसकी सुगंध प्रति कलिका में,
जिसमें उसकी कुछ झलक न हो
ऐसा कोई पत्थर न मिला।

इसमें सन्देह सनेही क्या
लाया तू मुक्ता-कोष खोज,
क्या मूल्य समझ सकते बनचर,
क्या अचरज जो आदर न मिला।

कर्मवीर

कूप, बावली, झील और कितने ही सर हैं,
सरितायें सैकड़ो बहुत झरते निर्झर हैं।
जिनका पय कर पान सभी के तालू तर हैं,
चातक हैं बिरतृषित नहीं देखते उधर हैं।
सुधावृष्टि ही क्यों न हो ? उनको क्या परवाह है,
है उनका संकल्प दृढ़ स्वाति-बुन्द की चाह है ॥१

हंसों ने कब दीन मीन पर चोंच चलाई,
मरे क्षुधा से पर न घास सिंहो ने खाई।
रवि कब शीतल हुआ ? ताप शशि में कब आई,
तेजस्वी संकल्प नही तजते हैं भाई।
कभी छोड़ते हैं नहीं कर्मवीर निज आन को।
अधिक जान से जानते स्वाभिमान सम्मान को ॥२

उनकी इच्छाशक्ति जिधर को मुड़ जाती है,
आके दैवी शक्ति उधर ही जुड़ जाती है।
चौपट होत क्लेश, भीति-भी गुड़ जाती है,
धज्जी-धज्जी विघ्नवृन्द की उड़ जाती है।
झंझा पवन झकोर से गिरिवरगण झुकते नहीं।
तृण-समूह को रोक के रोके नद रुकते नही ॥३

करलें जो संकल्प पूर्ण ही कर के छोड़ें,
निज करणी से कीर्ति भुवन में भर के छोड़ें।
लहें सफलता या कि काम वह मर के छोड़ें,
वीर नहीं जो टेक धरें फिर डर के छोड़ें ॥
अपने दृढ़ विश्वास से अपनी अविचल भक्ति से।
कर सकते वे क्या नहीं अपनी इच्छाशक्ति से ॥४

होता भय से नहीं कलेजा जिनका धक-धक ,
सम्मुख पञ्चादर्श उन्हीं के हैं आराधक ।
ठान लिया जो मन्त्र उसी के रहते साधक ;
डिगा न सकते उन्हें विघ्न गण बन कर बाधक ।
कुछ दिन में प्रतिकूल भी हो जाते अनुकूल हैं ।
काँटे उन के मार्ग में बिछते बनकर फूल हैं ॥५

हल विवेक का लिये बैल निज बल के जोड़े ,
देह गेह का मोह नहीं मानों मुँह मोड़े ।
साधन हैं किस कदर बहुत हैं या हैं थोड़े ,
इस की चिन्ता नहीं, भीतियाँ भव की छोड़े ।
साहस रक्खे हृदय मे विमल ज्योति युग नेत्र में ।
फल आशा बलवती रख आते कर्म-क्षेत्र में ॥६

सम करते हैं विषम भूमि को अपने कर से ,
पुण्य बीज बो लाभ उठाते हैं अवसर से ।
दया श्याम घन करें नीर बरसे फिर बरसे ,
अगर न बरसे स्वयं सींचते खूनेजिगर से ।
पनप नहीं सकते जहाँ बेरी और बबूल हैं ।
कर्मवीर लेते वही अमृत भरे फल-फूल हैं ॥७

भारत भू उर्वरा बनी ऊसर बंजर है ,
वह हरियाली कहाँ ? धूल उड़ती घर-घर है ।
आओ वीरो ! बढ़ो, काम का यह अवसर है ,
कहते हैं सब "कुछ वसन्त की तुम्हें खबर है ।"
फूल फल रहे आजकल सकल देश संसार के ।
यह बेचारा रह गया मानों पाला मार के ॥८

भोले ऐसे हुए शक्ति अपनी भूले हैं ,
भय झोंके से हृदय फिरे झोले-झोले हैं ।
रंग-रूप है ठीक नहीं लंगड़े-लूले हैं ;
पर है नहीं सुवास विरस किंशुक फूले हैं ।
इनके हृदयों में अगर सुदृढ़ आत्मा-विश्वास हो ।
आयें कर्म-क्षेत्र में उन्नति और विकास हो ॥९

आर्य अवनि के पुत्र-वृढ़व्रत होकर आओ ,
जीवन का उद्देश्य कुछ न कुछ तो ठहराओ ।

कर्म करो अब कर्म, कर्म ही के गुण गाओ,
ठोको नहीं कपाल भाग्य निज स्वयं बनाओ ।।
जीवन है तो आइए नहीं शक्तियाँ घुन गईं ।
फिर पछताना क्या कि जब खेती चिड़ियाँ चुन गईं ।१०

□

स्वदेश

वह हृदय नही है पत्थर है,
जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं ।
जो जीवित जोश जगा न सका,
उस जीवन में कुछ सार नही ।
जो चल न सका संसार-संग,
उसका होता संसार नहीं ।।
जिसने साहस को छोड़ दिया,
वह पहुँच सकेगा पार नही ।
जिससे न जाति-उद्धार हुआ,
होगा उसका उद्धार नही ।।
जो भरा नहीं है भावों से,
बहती जिसमें रस-धार नहीं ।
वह हृदय नही है पत्थर है,
जिसमे स्वदेश का प्यार नही ।।
जिसकी मिट्टी में उगे बढ़े,
पाया जिसमें दाना-पानी ।
हैं माता-पिता बन्धु जिसमें,
हम हैं जिसके राजा-रानी ।।
जिसने कि खजाने खोले हैं,
नव रत्न दिये हैं लासानी ।
जिस पर ज्ञानी भी मरते हैं,
जिस पर है दुनिया दीवानी ।।
उस पर है नहीं पसीजा जो,
क्या है वह भू का भार नहीं ।
वह हृदय नहीं है पत्थर है,
जिसमें स्वदेश का प्यार नही ।।

निश्चित है निस्संशय निश्चित,
है जान एक दिन जाने को।
है काल-दीप जलता हरदम,
जल जाना है परवानों को ॥
है लज्जा की यह बात शत्रु—
आये आँखें दिखलाने को।
धिक्कार मर्दुमी को ऐसी,
लानत मर्दाने बाने को ॥

सब कुछ है अपने हाथों में,
क्या तोप नहीं तलवार नहीं।
वह हृदय नही है पत्थर है,
जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं ॥

□

स्वदेश के प्राण

प्रिय स्वदेश है प्राण हमारा,
हम स्वदेश के प्राण।
आँखो में प्रतिपल रहता है,
हृदयों मे अविचल रहता है।
वह है बली, बली हैं हम भी,
उसका हमको बल रहता है ॥
और सबल इसको करना है,
करके नव - निर्माण।
प्रिय स्वदेश है प्राण हमारा,
हम स्वदेश के प्राण ॥
जनता की सेवा करना है,
स्वावलम्ब उसमे भरना है।
तक्षक तुल्य छिपे जो भक्षक,
उनका भी दुर्मद हरना है ॥
रक्षा करना है जग - जन की,
जिसमें अपना त्राण।
प्रिय स्वदेश है प्राण हमारा,
हम स्वदेश के प्राण ॥

पौष-मार्गशीर्ष : शक १८०४]

कहीं अशान्ति न होने देंगे ;
यह विष - बीज न बोने देंगे ।
सत्पथ पर जाती नौका को ,
हम न कदापि डुबोने देंगे ॥

यही परम कर्त्तव्य हमारा ;
यही लोक - कल्याण ।
प्रिय स्वदेश है प्राण हमारा ,
हम स्वदेश के प्राण ॥

अगर समर का अवसर आया ,
कोई बैरी सर पर आया ।
तो वह भी जानेगा जी में ,
मानों वह यम के घर आया ॥

छोड़ेंगे न कदापि उसे हम ,
बिना किये निष्प्राण ।
प्रिय स्वदेश है प्राण हमारा ,
हम स्वदेश के प्राण ॥

□

हमारा प्यारा हिन्दुस्तान

जिसको लिये गोद में सागर ,
हिम - किरीट शोभित है सर पर ।
जहाँ आत्म - चिंतन था घर - घर ,
पूरब - पश्चिम दक्षिण - उत्तर ॥

जहाँ से फैली ज्योति महान ।
हमारा प्यारा हिन्दुस्तान ॥

जिसके गौरव - गान पुराने ;
जिसके वेद - पुराण पुराने ।
सुभट वीर - बलवान पुराने ,
भीम और हनुमान पुराने ॥

जानता जिनको एक जहान ।
हमारा प्यारा हिन्दुस्तान ॥

जिसमें लगा धर्म का मेला,
ज्ञात बुद्ध जो रहा अकेला।
खेल अलौकिक ऐसा खेला,
सारा विश्व हो गया चेला॥
मिला गुरु गौरव गुरु सम्मान।
हमारा प्यारा हिन्दुस्तान॥
गर्वित है वह बलिदानों पर,
खेलेगा अपने प्रानों पर।
हिन्दी तेगे है सानों पर,
हाथ धरेगा अरि कानो पर।
देखकर बाँके वीर जवान।
हमारा प्यारा हिन्दुस्तान॥

□

सामज

निर्दय समाज निर्मम समाज!
निर्दय समाज निर्मम समाज!!

बन रहा आज तू यम-समाज,
है नहीं कंस से कम समाज।
वह जिये कि तोड़े दम समाज,
निर्दय समाज निर्मम समाज॥
तू रूढ़ि-रस्सियाँ गले डाल,
लेता भक्तों का दम निकाल।
दम मारे कोई क्या मजाल,
है वरुण-पाश से कम न जाल॥
निर्दय समाज निर्मम समाज!
निर्दय समाज निर्मम समाज!!
चाँदी के टुकड़े चूम-चूम;
उन्मत्त हो रहा झूम-झूम।
है अजब-अजब तेरी रुसूम,
दुनिया में तेरी आज धूम॥
निर्दय समाज निर्मम समाज।

निर्दय समाज निर्मम समाज।
अबलाओं पर भी क्रूर वार,
इसमें न ज़रा भी तुझे आर।
हो रही तुझे है बुद्धि भार,
देखा न सुना तुझ-सा गँवार ॥
निर्दय समाज निर्मम समाज।
अवतार हुए हैं बार-बार,
संहार हुए हैं बार-बार।
पर तुझे न कोई सका मार,
तू रक्त बीज का बन्धु यार ॥
निर्दय समाज निर्मम समाज !
निर्दय समाज निर्मम समाज !!
तू भव-सागर में कुटिल कूल,
तू नन्दन-वन में विषम शूल।
पापी न गर्व से बहुत फूल,
उट्ठेगा शङ्कर का त्रिशूल ॥
निर्दय समाज निर्मम समाज !
निर्दय समाज निर्मम समाज !!

□

वीर-प्रण

न होने देंगे अत्याचार !
न होने देंगे अत्याचार !!
लड़ जायेंगे न्याय-पक्ष पर ;
करके हृदय उदार।
न होने देंगे अत्याचार !
न होने देंगे अत्याचार !!
अन्यायी अन्याय करे यों,
हाय ! सरे बाज़ार।
और खड़े चुप देखें हम तो,
नयनों को धिक्कार ॥
न होने देंगे अत्याचार !
न होने देंगे अत्याचार !!

प्रबल अनल में जलना हो ;
या चलना हो असिधार।
पर पीड़न प्रतिकार हेतु है,
हमको सब स्वीकार ॥
न होने देंगे अत्याचार!
न होने देंगे अत्याचार !!
अत्याचारी वो यदि होंगे,
तो होंगे हम चार।
हमें न पग भर हटा सकेगी,
रण से मारा मार ॥
न होने देंगे अत्याचार!
न होने देंगे अत्याचार !!

□

जय

विजय सत्य की विजय न्याय की,
साम्य विजय,
जय ।
बंधा न्याय का फिर से साका,
फहर रही है विजय-पताका ।
रुका घोर हिंसा का नाका,
फैला पुण्य प्रणय ॥
विजय सत्य की, विजय न्याय की,
साम्य विजय,
जय ।

छटे, हटे हलचल के बादल,
मिटा विश्व का है कोलाहल ।
अब आतंक न है वह हलचल,
हुई प्रशान्त प्रलय ॥
विजय सत्य की, विजय न्याय की,
साम्य विजय,
जय ।

पौष-मार्गशीर्ष : शक १८०४]

जयी राम हैं रावण हारा,
रुकी रुधिर की बहती धारा।
जनता को मिल गया किनारा,
विचरेगी निर्भय ॥

विजय सत्य की, विजय न्याय की,
साम्य विजय,
जय ॥

□

किसान

धन्य ! धरती के लाल किसान !
इन्हों धरा धरा का भार,
किया दुनिया का बेड़ा पार।
परिश्रम - सहनशीलता - मूर्ति,
धैर्य के धाम पुण्य - अवतार ॥
धन्य ! धरती के लाल किसान !

जुटे जब देव - अदेव समेत,
मथा मन्दर से पारावार।
निकल पाये तब चौदह रत्न,
उन्हें वे लिये गये उस पार ॥
धन्य ! धरती के लाल किसान !

इन्होंने मथकर पृथ्वी कड़ी,
निकाले अन्न - रत्न सुख - सार।
लोक में उनको वितरण किया,
स्वार्थ भी सधा, सधा उपकार ॥
धन्य ! धरती के लाल किसान !

विधाता के सच्चे यह पुत्र,
सृष्टि का करते हैं शृंगार।
मोतियों का मद मर्दित हुआ,
देख गेहूँ, जौ, धान जुआर ॥
धन्य ! धरती के लाल किसान !

अन्न से पली हमारी देह ;
अन्न ही एक प्राण - आधार ।
इन्हीं ने नगर - नगर में भरे ,
अन्न के हैं अक्षय भण्डार ॥
धन्य ! धरती के लाल किसान !

इन्होने देकर निर्मल वारि ,
बहाई धवल सुधा की धार ।
अगर लें श्रम से वह मुँह मोड़ ,
मचे देशों में हा-हाकार ॥
धन्य ! धरती के लाल किसान !

इन्ही से मिलता भोजन - वस्त्र ,
इन्हीं से है चलता व्यापार ।
सभ्यता के तो हैं यह जनक ,
इन्हें मत समझो निपट गँवार ॥
धन्य ! धरती के लाल किसान !

यही हैं सामराज्य की रीढ़ ,
इन्हीं के बल जीवित संसार ।
अगर लें हाथ कहीं यह खींच ,
अचल हो जाय जगत-व्यवहार ॥
धन्य ! धरती के लाल किसान !

अगर छिड़ता है कोई समर ,
इन्हीं का होता है संहार ।
सिपाही सैनिक बनकर यही ,
हाथ में लेते हैं हथियार ॥
धन्य ! धरती के लाल किसान !

शत्रु करते हैं अवसान ,
मार ही लेते हैं मैदान ।
वृद्ध भी आते नजर जवान ,
धन्य ! धरती के लाल किसान ॥
धन्य धरती के लाल किसान !

□

पौष-मार्गशीर्ष : शक १८०४]

मजदूरों का गीत

जगत के केवल हम कर्त्तार,
हमी पर अवलम्बित संसार।
कला कौशल खेती व्यापार,
हवाई यान, रेल या तार।
सभी के एकमात्र आधार,
हमारे बिना नहीं उद्धार।।
जगत के केवल हम कर्त्तार,
हमी पर अवलम्बित संसार।
रत्नगर्भा से लेकर रत्न,
विश्व को हमने दिये सयत्न।
काटकर बीहड़ वन अविराम,
लगाये रम्य - रम्य आराम।
झोपडी हो या कोई महल,
हमारे बिना न बनना सहल।।
जगत के केवल हम कर्त्तार,
हमी पर अवलम्बित संसार।
किसी का लिया नहीं आभार,
बाहुबल रहा सदा आधार
पूर्ण हम ससृति के अवतार,
हमारे हाथो बेडा पार।।
उठाया है हमने भू - भार,
हुआ हमसे सुखमय संसार।
जगत के केवल हम कर्त्तार,
हमी पर अवलम्बित संसार।।
हाय ! उसका यह प्रत्युपकार,
तुच्छ हमको समझे ससार।
बन गये कितने ठेकेदार,
भोगने को सम्पत्ति अपार।।
हमारा दारुण हाहाकार,
उन्हें है वीणा की झनकार।
जगत के केवल हम कर्त्तार,
हमी पर अवलम्बित संसार।

भाग्य का हमें भरोसा दिया,
विभव सब अपने वश में किया।
जहाँ तक बना रक्त पी लिया,
बज्र की छाती, पत्थर हिया॥
किसी ने जख्मेदिल कब सिया,
जिया दिल अपना पर क्या जिया।
जगत के केवल हम कर्त्तार,
हमीं पर अवलम्बित संसार॥

दिया था जिनको अपना रक्त,
प्राण के प्यासे वे बन गये।
नम्रता पर थे हम आसक्त,
और भी हमसे वे तन गये॥
हाय रे स्वार्थ न तेरा अन्त;
नाश को उद्यत है हा हन्त॥
जगत के केवल हम कर्त्तार,
हमी पर अवलम्बित ससार॥

बहुत सह डाले है संताप,
गर्दनें काटी अपने आप।
न जानें था किसका अभिशाप,
न जाने किन कृत्यो का पाप॥
हो रही थी आँखे जो बन्द,
पद-दलित होने को सानन्द।
जगत के केवल हम कर्त्तार,
हमी पर अवलम्बित संसार॥

रचेंगे हम अब नव ससार,
न होने देंगे अत्याचार।
प्रकृति ही का लेकर आधार;
चलायेंगे सारे व्यवहार॥
सिद्ध कर देंगे बारम्बार,
और देखेगा विश्व अपार।
जगत के केवल हम कर्त्तार,
हमी पर अवलम्बित संसार॥

□

हरिजन-गीत

हरिजन हैं हरि के सेवक हैं,
जनता की सेवा करते हैं।
पाया मनुष्य का तन हमने,
वैसे ही जीते - मरते हैं।
हिन्दू हैं हम भी हिन्दू हैं,
हरदम यों ही दम भरते हैं॥
है दुनिया का दस्तूर यही,
गिरते हैं और उभरते हैं।
फिर हमें उठाने में भाई,
क्यों अपने जी में डरते हैं॥
हरिजन है हरि के सेवक हैं,
जनता की सेवा करते हैं।

यदि पतित रहे हम दलित और,
तो पतन आपका निश्चय है।
जिसके कि पैर ही फिसल गये,
उसके गिर जाने का भय है॥
क्यों इतने बने कठोर कहो,
क्यों हृदय आपका निर्दय है।
हरि दर्शन के अभिलाषी हम,
इसमें क्या पातक अविनय है॥
हरिजन हैं हरि के सेवक हैं,
जनता की सेवा करते हैं।

किसलिये आप निज करणी पर,
करते हैं कुछ भी ग़ौर नहीं।
खुद गिरते हमें गिराते हैं,
यह तो उन्नति का तौर नहीं॥
है 'टाम' चचा को सौ सलाम,
जुम्मन भी कोई और नहीं।
पर हाय! हमारे लिये आपके—
दिल में कोई ठौर नहीं॥
हरिजन हैं हरि के सेवक हैं,
जनता की सेवा करते हैं।

हरि ने तो कभी न मोड़ा मुँह,
हरदम हमको अपनाया है।
'नाभा' 'रैदास' भेज हममें,
जग पूजित हमें बनाया है।।
क्यों मन्दिर में हम जा न सकें,
कुछ अजब आपकी माया है।
जो समझे ज्ञान बपौती है,
उसमें अज्ञान समाया है।।
हरिजन हैं हरि के सेवक हैं,
जनता की सेवा करते हैं।

□

रोदन-गीत

ऐ रोने वाले! रोये जा,
तू रोये जा, तू रोये जा।
जब दुनिया तुझ पर हँसती हो,
फबती पर फबती कसती हो।
इतनी तो तुझमें मस्ती हो,
तू अपनी नाव डुबोये जा।।
ऐ रोने वाले! रोये जा,
तू रोये जा, तू रोये जा।१
जब वीर समर में लड़ते हो,
जीने के लाले पड़ते हों।
दुश्मन के पैर उखड़ते हों,
रँड रोने में दिन खोये जा।।
ऐ रोने वाले! रोये जा,
तू रोये जा, तू रोये जा।२
घर-घर रोटी का रोना हो,
जब व्याकुल कोना-कोना हो।
तेरे सामने सलोना हो,
तू मुक्ता-अश्रु पिरोये जा।।
ऐ रोने वाले! रोये जा,
तू रोये जा, तू रोये जा।३

पौष-मार्गशीर्ष : शक १८७४]

रोने की महफ़िल हो कि न हो,
इससे हल मुश्किल हो कि न हो।
हलका कुछ भी दिल हो कि न हो,
तू दामन सदा भिगोये जा ॥
ऐ रोने वाले! रोये जा,
तू रोये जा, तू रोये जा।४

रोते आना रोते जाना,
दिन - दिन दुखिया होते जाना।
रोते - रोते सोते जाना,
नर - जीवन यों ही खोये जा ॥
ऐ रोने वाले! रोये जा,
तू रोये जा, तू रोये जा।५

दिल मिला मगर बर्बाद मिला,
रोने मे तुझको स्वाद मिला।
अच्छा कोई उस्ताद मिला,
ऊसर मे दाने बोये जा ॥
ऐ रोने वाले! रोये जा,
तू रोये जा, तू रोये जा।६

तू ग़म की है तसवीर बना,
कैसे कह दूँ तक़दीर बना।
रोना रोने में वीर बना,
कर्म्मों के धब्बे धोये जा ॥
ऐ रोने वाले! रोये जा,
तू रोये जा, तू रोये जा।७

□

जातीय-गीत

हृदय तू कहना मेरा मान।
सबसे बन्धुभाव रख मन में,
तज अनुचित अभिमान।
नीच न समझ किसी भी नर को,
नीच कर्म्म तू जान ॥
हृदय तू कहना मेरा मान।

क्या जीना है निज हित जीना—
शूकर-श्वान समान।
कर पावे यदि कुछ स्वदेश-हित,
तो तू है धीमान॥
हृदय तू कहना मेरा मान।
भाव, भेष, भाषा भोजन ही,
भायप के सामान।
एक विवेक युक्त इनको कर,
हो तेरा उत्थान॥
हृदय तू कहना मेरा मान।
क्या बनकर बलवान बना तू,
क्या बनकर विद्वान।
क्या बनकर श्रीमान बना तू,
रहा जो अवगुण-खान॥
हृदय तू कहना मेरा मान।

□

प्रयाण गीत
(मार्चिग सॉंग)

प्यारा प्रान हिन्दुस्तान।
हिन्दुस्तान, हिन्दुस्तान॥
इसकी आन, अपनी आन,
इसकी शान, अपनी शान।
इसका मान, अपना मान,
इसका गीत, अपना गान॥
प्यारी तान, प्यारा प्रान।
हिन्दुस्तान, हिन्दुस्तान॥
इसकी रीत, अपनी रीत,
इसकी नीत, अपनी नीत।
इसकी प्रीत, अपनी प्रीत,
इसकी जीत, अपनी जीत॥
यह जी जान, प्यारा प्रान।
हिन्दुस्तान, हिन्दुस्तान॥

पौष-मार्गशीर्ष : शक १८०४]

घर-घर में है जय जयकार ।
करो त्याग तप का विस्तार ।
चूक न जाना अवसर यार ।
सच्ची प्रीति सच्चा प्यार ।

हो बलिदान प्यारा प्रान ।
हिन्दुस्तान, हिन्दुस्तान ॥

सीना तान, बढ़ो जवान,
खिंचे कृपान—सर मैदान ।
रक्खो आन, रक्खो शान,
रक्खो जान, रक्खो मान ॥

गूँजे गान, प्यारा प्रान ।
हिन्दुस्तान, हिन्दुस्तान ॥

यह बरबाद, हम बरबाद,
यह आबाद, हम आबाद ।
यह आज़ाद, हम आज़ाद,
ज़िन्दाबाद, ज़िन्दाबाद ॥

हिन्दुस्तान—प्यारा प्रान ।
हिन्दुस्तान, हिन्दुस्तान ॥

☐

युद्ध-गीत

शत्रु पराजित विजयी हम,
बम-बम हर-हर, हर-हर बम ।

वायुयान बरसायें बम,
गोले गिरें धरारा धम ।
दुश्मन का हो नाकों दम,
देखें तो उसका दम-ख़म,

ऐसे जमें कि जैसे यम,
बम-बम हर-हर, हर-हर बम ।

रण-चंडी की रण-हुंकार,
सुनकर करें वार पर वार;
भीषण हो वह मारा-मार,
काँप उठे सारा संसार,
वैरी बचे न एक अधम।
बम-बम हर-हर, हर-हर बम।

हम भारत के सैनिक वीर,
ले कर कर हाथों में शमशीर,
जायें सेनाओं को चीर,
जैसे जाता सीधा तीर,
ठंडा कर दें शत्रु-उद्यम,
बम-बम हर-हर, हर-हर बम।

यो अरि आयें मान न मान,
हम तो हैं तेरे मेहमान;
बढ़ो-बढ़ो अब बढ़ो जवान,
आओ सर कर लो मैदान,
दम भर में कर दो बेदम,
बम-बम हर-हर, हर-हर बम।

ताड़ ताड़ दो उन्हें लताड़,
कटें मुण्ड बन जायें झाड़,
रुण्डों के लग जायें पहाड़;
किलकें प्रेत चबायें हाड़,
नाचें योगिन छम-छम-छम,
बम-बम हर-हर, हर-हर बम।

□

जयगीत

जय-गीत सनेही, गाये जा।
विपदा के बादल छाये हों,
दुख झंझा झोंके आये हों,
अपने बन गये पराये हों,
परवा मत कर तू रत्ती भर।
दृढ़ धैर्य-ध्वजा फहराये जा।
जय-गीत सनेही, गाये जा॥

दुर्दैव दुष्ट ने घेरा हो ;
जब चारों तरफ़ अँधेरा हो।
कोई न सहायक तेरा हो।
मत हो अधीर मत हो निराश ,
तू आशा ज्योति जगाये जा।
जय गीत सनेही, गाये जा।

तलवार विरोधी ताने हों ;
तेरे तेवर मरदाने हों।
ओठों पर वीर-तराने हों ,
सीना ताने तू बढ़ता चल ;
भय-भ्रम का भूत भगाये जा।
जय गीत सनेही, गाये जा ॥

कहते हों लोग प्रलय होगी ,
आत्मा तेरी निर्भय होगी ,
जय होगी तेरी जय होगी ,
धीरज न छोड़, धीरज न छोड़ ;
साहस सौ गुना बढ़ाये जा।
जय-गीत सनेही, गाये जा ॥

□

तलवार

यह तेरी तलवार,
बहादुर !
यह तेरी तलवार।
इसमें भरा प्रलय का पानी,
इसकी धाक शत्रु ने मानी।
फिर तेरी हिम्मत लासानी,
आया जो सम्मुख अभिमानी ॥
उतरा इसके घाट पलक में,
उसे कर दिया पार,
बहादुर !
यह तेरी तलवार।१

यह तेरी तलवार,
बहादुर !
यह तेरी तलवार।
देख-देखकर इसके जौहर,
आता जौहरियों को चक्कर।
पूरब-पश्चिम - दक्षिण-उत्तर,
करती है चौरंग बराबर॥
जिसको आँच लग गयी इसकी,
वही हो गया क्षार,
बहादुर !
यह तेरी तलवार।२

यह तेरी तलवार,
बहादुर !
यह तेरी तलवार।
ऐसी चोटें कड़ी लगाती,
गले मृत्यु की घड़ी लगाती।
कभी न खाली पड़ी, लगाती,
ओलों की सी झड़ी, लगाती॥
काट-काट कर, छाँट-छाँट कर;
शीशों के अम्बार,
बहादुर !
यह तेरी तलवार।३

यह तेरी तलवार,
बहादुर !
यह तेरी तलवार।
मुख स्वदेश का उज्ज्वल करती,
सदा गर्व बैरी का हरती।
बिजली सदृश डूबती-तिरती,
पल भर में है पार उतरती॥
इसकी चाल देखकर होता,
कम्पमान संसार,
बहादुर !
यह तेरी तलवार।

पौष-मार्गशीर्ष : शक १८०४]

यह तेरी तलवार,
बहादुर !
यह तेरी तलवार ।४

□

वीर

वही है वीर ! वही है वीर !!
जिसे है नहीं प्राण का मोह,
जिसे देश द्रोही से द्रोह ।
खिंची जिसकी अरि पर शमशीर,
वही है वीर ! वही है वीर !!१

छोड़ कर लोकवन्द्य जगदीश,
झुकाया नहीं किसी को शीश ।
दासता की तोडी जंजीर,
वही है वीर ! वही है वीर !!२

निराली रहती जिसकी शान,
न जिसकी उतरी कभी कमान ।
लक्ष्य पर बैठे जिसके तीर,
वही है वीर ! वही है वीर !!३

सहा जिसने न देश-अपमान,
आन पर दे दी अपनी जान ।
नहीं झलका नयनो मे नीर,
वही है वीर ! वही है वीर !!४

चली जिसने न काल की चाल,
मृत्यु कर सकी न बांका बाल ।
अमिट वह खीची कीर्ति-लकीर,
वही है वीर ! वही है वीर !!५

□

जवान हो बढ़े चलो

प्रचण्ड शक्तिमान हो।
जवान हो बढ़े चलो !

न शत्रु पास आ सके,
न शीश ही उठा सके।
न आँख ही मिला सके,
न दीन को सता सके ॥
स्वदेश के सुरक्षको,
सुजान हो बढ़े चलो।
प्रचण्ड शक्तिमान हो;
जवान हो बढ़े चलो ॥१

सशक्त हो, सपक्ष हो,
कला - निधान - दक्ष हो।
समान लक्ष्य लक्ष हो,
चलो-चलो समक्ष हो ॥
प्रधान हो तुम्हें स्वधर्म,
ध्यान हो, बढ़े चलो।
प्रचण्ड शक्तिमान हो,
जवान हो बढ़े चलो ॥२

सभी कहें कि 'वाहवा'!
विपक्ष हो गया हवा।
कुबुद्धि की यही दवा;
कभी कहीं रुका लवा ॥
उड़ा शचान आ गया,
शचान हो बढ़े चलो।
प्रचण्ड शक्तिमान हो,
जवान हो बढ़े चलो ॥३

हटो न, हाँ डटो-डटो,
कहो कि, बैरियो! हटो—
कि खण्ड - खण्ड हो पटो,
"मरो-कटो मरो कटो" ॥

स्व प्राण दो कि प्राण लो,
महान हो बढ़े चलो।
प्रचण्ड शक्तिमान हो,
जवान हो बढ़े चलो ।।४

□

खड़ी बोली छंद

बुझा हुआ दीपक

करने चले तंग पतंग जला कर ;
मिट्टी में मिट्टी मिला चुका हूँ।
तम - तोम का काम तमाम किया ,
दुनिया को प्रकाश में ला चुका हूँ।
नहीं चाह 'सनेही' सनेह की और ;
सनेह मे जी मैं जला चुका हूँ।
बुझने का मुझे कुछ दुःख नहीं।
पथ सैकडो को दिखला चुका हूँ ॥१
जगती का अँधेरा मिटा कर आँखों में ,
आँख की तारिका हो के समाये।
परवा न हवा की करे कुछ भी ,
भिड़े आके जो कीट पतंग जलाये।
निज ज्योति से दे नव-ज्योति जहान को ,
अन्त मे ज्योति मे ज्योति मिलाये।
जलना हो जिसे वो जले मुझसा ,
बुझना हो जिसे मुझसा बुझ जाये ॥२
लघु मिट्टी का पात्र था स्नेह भरा ,
जितना उसमे भर जाने दिया।
धर बत्ती हिये पर कोई गया ,
चुपचाप उसे घर जाने दिया।
पर - हेतु रहा जलता मैं निशा भर ,
मृत्यु का भी डर जाने दिया।
मुसकाता रहा बुझते - बुझते ,
हँसते - हँसते सर जाने दिया ॥३

□

हाँ-नहीं

चबाई चबाव से चूके नहीं, किसकी नही बातें सही कह दीजिये ,
रही सो कहीं न रहीं सो कही, अब क्या कहने को रही कह दीजिये।
सनेही न तो भी सनेही रहे, भ्रम से ही सनेही कही कह दीजिये ,
नहीं-नहीं में नही साफ है हाँ नहो, हाँ कहिये कि नही की दीजिये।

□

प्रेम-तपस्या

छोड़ चुके कुल नाते जहान के, जान किसी पै दिया करते हैं।
जीने की और है सूरत क्या, कोई सूरत देख जिया करते हैं॥
दम साधे हैं, आँखें हैं बन्द किये, गम खाते हैं, आँसू पिया करते हैं।
सीने में धूनी-सी है जलती, हम प्रेम-तपस्या किया करते हैं॥

□

धर्म के धक्के

कोई मसीह से मान के मुक्ति को,
पाप के बाप के दो छुड़ा छक्के।
गाजी मियाँ की मनौती करो कुछ,
काशी चलो, तो चलो कुछ मक्के।
सीख सिखो सिख के गुरुग्रंथ से,
पत्थर पूजो सनातनी पक्के।
बंदगी यों ही बजाते रहो बस,
खाते रहो तुम धर्म के धक्के।

□

सीख

कुछ ने तो बिता दिया चंचल जीवन, दूसरो पै जलते-जलते,
छलना से भरे छल आप गये, कुछ साथियों को छलते-छलते।
कुछ देखने में तो हरे-भरे थे, विष-वृक्ष बने फलते-फलते,
नहीं चाल है काल से एक चली, चले आप गये चलते-चलते॥

धर्म का भार धरा गया है, मत भाग अधीर हो, काँध ले काँध ले।
बात तुझे जो बता रहा हूँ उसे भूल न, गाँठ में बाँध ले बाँध ले॥
छोड दे रे बकवास वृथा, रट राम के नाम की नाध से नाध ले।
साधन मुक्ति का और नहीं, प्रभु-प्रेम की साधना साध ले साध ले॥

□

प्रभात-किरण

तमराज का शासन देश के लोक में, रोष के रंग में राती चली,
कर में बरछी लिए चंडिका-सी, तिरछी-तिरछी मदमाती चली।
नव जीवन-ज्योति जगाती चली, निशाचारियों को दहलाती चली,
कल कंचन-कोष लुटाती चली, मुसकाती चली बल खाती चली ॥१
फूटी जो तू उदयाचल से लटे लम्पट चोरों के भाग्य-से फूटे,
टूटी जो तू तमचारियो पै गुम होश हुए उनके दिल टूटे।
लूटी जो तूने निशाचरी माया तो लोक ने जीवन के सुख लूटे,
लूटी दिवा-पति अंक से तू तमवाले मिलिन्द भी बन्दि से छूटे ॥२
क्रूर कुकर्मियों का किया अन्त, अँधेरे में जो विष-बीज ये बोते,
जाने उलूक लुके हैं कहाँ, फिर प्राण पड़े निज खोते में खोते।
तोल रहे पर मत्त विहंग सरोज पै भृंग निछावर होते,
सोते उमंग के हैं, उमगे लगा आग दी तू ने जगा दिए सोते ॥३
सुरलोक है की सुर-सुन्दरी तू कि स्वतन्त्रता की प्रतिमूर्ति सुहानी,
जननी सुमनों की कि सौरभ की सखी धाई सनेही सनेह में सानी।
जग में जगी ज्योति जवाहर-सी, गई जागृति देवी जहान में मानी,
नव जीवन जोश जगा रही है, महरानी है तू किस लोक की रानी ॥४
क्षण एक नहीं फिर होके रहा थिर दिव्य तमिस्रा का घेरा हुआ,
लहराने प्रकाश-पताका लगी न पता लगा क्या था अँधेरा हुआ।
फिर सोने का पानी मथा पल मे, जिस ओर से तेरा है फेरा हुआ;
कहती—"न पड़े मन मारे रहो, अब उठो सनेही सवेरा हुआ।।"५

□

पराधीनता

कड़ियाँ ये गुलामी की टूटी नहीं, उसपे वह देने सजा चले हैं।
मसताये हुए हैं यहाँ तक वे कि सताये हुओ को सता चले हैं।
यहाँ आपस में ही मरे-मिटते हैं, भुला सब शर्मो-हया चले हैं।
उठते ही नहीं दिल बैठे हुए, दिन कैसे "त्रिशूल" ये आ चले हैं।
बदली ही जमाने की आँखें रही, कभी पूरी मुराद जरा न हुई।
चलती रही बादे-मुख़ालिफ़ यों कि मुआफ़िक़ आबो-हवा न हुई।
उस ज़ालिम ने कब चैन लेने दिया, रही यादे-जफ़ा जो वफ़ा न हुई।
कितने ही मसीहा उठे दिल थाम के दर्द की मेरे दवा न हुई।

□

माल है

अपनी भी है चाल वो भूल गया, जब से चला कौवा मराल की चाल है।
कविता के सरोवर में धँसे सूकर, गन्दा किया यह निर्मल ताल है।
फिर भी तो प्रशंसकों की कमी है नही, क्या दुनिया में गधों का अकाल है ?
कहते सड़ी उक्तियो पे सिड़ी लोग, "कमाल है यार ! कमाल-कमाल है।"

ऊँट की चाल से आप चलें फिर पूछें, 'बताइये कैसी ये चाल है ?
पुष्प का पत्र का नाम नहीं, कहे कौन रसाल ? ये डण्ठ की डाल है ?
घूमते हैं रचनायें लिए सब, जो बचना कवियो का मुहाल है ?
माल के नाम कमाल मे माल है, या मिल जाती प्रसून की माल है ?

□

कविता के पत्र

त्रिगडे कुछ हैं कविता न छपी, कुछ चित्र निकालने को मचले हैं।
कुछ देख के वी० पी० हुए भयभीत, बहाने बताकर बीसो टले हैं।
धनहीन बने कुछ सूम भी हैं निरमे कुछ है, रस मे न पले हैं।
इससे 'कवि' और 'कवीन्द्र' मिटे, कविता के न पत्र चलाये चले हैं।

□

कान्यकुब्जों का उत्थान-पतन

तप तेज से मन्द दिनेश हुए, दिल दिग्गजो के दहलाते रहे।
फिर कौम महीपतियों की कथा, सुर भी तलवे सहलाते रहे।
वसुधा को सनेह-सुधा से 'सनेही' निरन्तर ही नहलाते रहे।
बन 'मण्डन' पण्डित-मण्डली के, द्विज श्रेष्ठ सदा कहलाते रहे।

अति हेय परिग्रह को समझा, जप-यज्ञ ही के अभिमानी रहे।
यश फैल गया महि-मण्डल में, निगमागम के गुरुज्ञानी रहे।
धन पे नही बेंच दिया मन को, तन-प्राण दिये, वह दानी रहे।
अब पूर्वजों के वह कृत्य कहाँ ? कविता रहे—राम कहानी रहे।

जब वेद-विरुद्ध प्रचार हुआ था, अनीश्वरता-ध्वनि छा रही थी।
बलवान हुए थे महा, जब बौद्ध अधर्म से काँप धरा रही थी।
कहीं कौल दिखाते कला अपनी, कही नास्तिकता अपना रही थी।
रही धर्म की लाज कनौजियों से, यहाँ धर्म-ध्वजा फहरा रही थी।

गति काल कराल की देखिये तो, किस भाँति ये पेट जिला रहे हैं।
निज पूर्वजों के, कुल के अभिमान को धूल में कैसे मिला रहे हैं।
कहीं दम्भ में दक्ष हैं दीक्षित जी, कहीं मिश्र जी बेंच तिला रहे हैं।
कहीं शुक्ल जी झण्डी हिला रहे हैं, कहीं पाँडेजी पानी पिला रहे हैं।

मति व्याकुल ब्राह्मण ब्याह बिना, कुलवान दहेज को रो रहे हैं।
ससुराल का है जो भरोसा बड़ा, लड़के भी कुलक्षणी हो रहे हैं।
हुए छिद्र हैं सौ-सौ स्वजाति की नाव मे, नाम समेत डुबो रहे हैं।
चिर सञ्चित गौरव खो रहे हैं, 'बिसुए' बस ये विष बो रहे हैं।

कहीं पुत्रियाँ बैठी विवाह को हैं, बहु-मोल कहीं बिकते वर हैं।
कहलाते द्विवेदी-त्रिवेदी हैं, यद्यपि जानते एक न अक्षर हैं।
जल लाते कोई, कोई याचक हैं, कोई भार के वाहक चाकर हैं।
जब पीर रहे तब पीर रहे, अब भिश्ती, बबर्ची हैं या खर हैं।

तप मे नहीं, चूल्हे में तापते हैं, जय है, विधि बाम को कोस रहे हैं।
बलहीन हैं, भीरुता ही है क्षमा, हत-तेज कलेजा मसोस रहे हैं।
अबलाओं पे वीरता-पौरुष है, दिखना उनपै रिस-रोष रहे हैं।
कलिकाल कराल के पायक से, द्विजनायक हा ! अफसोस ! रहे हैं।

कुछ लाज है पूर्वजो की मन में तो दशा निज देख लजाते नही क्यों ?
अभिमान है उच्चता का कुछ भी, तो स्वजाति को ऊँचा उठाते नही क्यों ?
प्रतिभा है, प्रभाव है तो अपनी पटुता जग को दिखलाते नहीं क्यों ?
मुँह मोड़ के, छोड़ के भागते क्यो ? अब जीवन-युद्ध में आते नहीं क्यों ?

अरमान 'सनेही' न कोई रहा, जो रहा तो यही बस सोच रहा।
दुख ही दुख बाँटे पड़ा अपने, यह काँटा कलेजे को कोच रहा।
नव जीवन पाया न जीवन से, क्या रहा यह जीवन पोच रहा।
मिलने-जुलने में उन्हें रही लाज, हमे खुलने में संकोच रहा।
जुड़ते मन हैं, पड़ते रन प्रेम के, सूझती दाँव की घात की बातें।
मुई मौत का जिक्र जवानी में क्या, करते हैं जवान हयात की बातें।
बकते हैं बबाई बका करें वे, सुनिये न किसी बदजात की बातें।
अनुराग की वेला है, कैसा विराग ये, रात में कैसी प्रभात की बातें।
अंग में श्यामता है उनके, हम काली किये करतूतें हैं सारी।
वे हैं त्रिभंग दवाग्नि पिये, उर में भरे आग 'त्रिशूल' हैं भारी।
पातकी तारने में वह एक हैं, है न कहीं हम-सा अधिकारी।
जोड़ में जोड़ है कैसा मिला, घनश्याम से होड़ है आज हमारी।

□

पछत्तर बरस का

विश्व में विचारों के विचरता रहा विवश
 रम गया वहीं पे रहा न मन बस का।
रसिकों के कण्ठ में विराजा फूलमाल बन
 कुटिल कलेजों में 'त्रिशूल' बन कसका।
धाराधर विपदा के बरसे अजस्र धार
 तो भी मेरा धीरज धराधर न धसका।
चसका वही है नव रसका 'सनेही', अभी
 टसका नही मैं, हूं पछत्तर बरस का।

□

बरस बयासी का

मित्र मित्र ही हैं, है अमित्र कहीं कोई नहीं,
 मित्रता जहाँ है, वहाँ काम क्या उदासी का।
ताक कर लक्ष्य ऐसा व्यंग्य-बाण छोड़ा मैंने
 फोड़ दिया भण्डा मिथ्या पालिसी सियासी का।
मेरा प्रियतम वासी मेरे मन-मन्दिर का
 बन्दा हुआ बन्दा कभी काबा का न काशी का।
रसे-रसे रस मे 'सनेही' मैं सरस हुआ
 बरस रहा हूँ रस बरस बयासी का।

□

मैं

पारस हूँ पर पत्थरों मे हूँ पड़ा हुआ मैं
 बन में बबूलों के छिपा मैं कल्पद्रुम हूँ।
भूमिति का बिन्दु, सिन्धु बूंद में समाया हुआ
 एक प्याले मे ही खाली किये बैठा खुम हूँ।
आपही बतायें, क्या बताऊँ आपको मैं पता
 आपे में नहीं हूँ आप अपने मैं गुम हूँ।
आह का धुआँ हूँ बादलों मे जो विलीन हुआ,
 काँटों में खिला हूँ, एक कोमल कुसुम हूँ।

□

स्वतन्त्रता-स्वागत

हिमगिरि-शिखर से लेकर कुमारी तक
"जय जन्मभूमि जननी" का घोष छा गया।
गंग में उमंग यमुना में रंग की तरंग
झंडा लाल किले पै तिरंगा फहरा गया॥
सिर से उतर गया भार परतन्त्रता का
स्वाभिमान सहित स्वदेश स्वत्व पा गया।
सुदिन स्वराज्य का स्वतन्त्रता का समता का
सत्य का सनेह का 'सनेही' आज आ गया॥

बलि-बलि जाइये कि बलिदान ही के बल
कामना की बेलि में सुफल फल आया है॥
पीछे जो हटाते थे हमे वे पीछे हट गये
आगे बढ देश-सेवको का दल आया है॥
ऐसा मंत्र फूंका है अहिंसा के पुजारी ने
कि मुक्ति-वरदान हाथ अविचल आया है।
छार उड़ती है परतन्त्रता-पयोनिधि में
पन्द्रह अगस्त मे अगस्त्य-बल आया है॥

बिना छलबल ही के विजय हुई है प्राप्त
सत्यव्रत-धारियो ने ऐसा खेल खेला है।
आये लाख विघ्न पर शान्त हो गये हैं
सब शान्त क्रान्ति करने में भारत अकेला है॥
होकर स्वतन्त्र सिर ऊपर उठा रहा है
परवशता में कौन दुःख नही झेला है।
त्रस्त नही कोई अब, मस्त सब भारतीय
पन्द्रह अगस्त है स्वतन्त्रता का मेला है॥

कल तक हमको गुलामी खलती थी
वही आज हम बन गये स्वामी जल-थल के।
सिर पर भारी भार लादे पर-शासन का
हो सके शताब्दियों के बाद कहीं हलके॥

एकता के रंग में रंगेगा भारतीय संघ
रिद्धि-सिद्धि आयेंगी समीप चल-चल के।
उछल-उछल के हृदय है मनाता मोद
आँखों से हैं छल-छल आनन्दाश्रु छलके॥

□

अछूत

एक ही विधाता के अमृत-पुत्र, एक देश,
कुछ यो अपूत, कुछ पूत कैसे हो गये?
सबकी नसों मे रक्त एक ही प्रवाहित है,
कुछ देव-दूत, कुछ भूत कैसे हो गये?
जाने क्या समाई धुन भारत-निवासियो को,
होके ब्रह्मज्ञानी, अवधूत कैसे हो गये?
बन्धु श्री वशिष्ठ, व्यास, बिदुर, पराशर के,
वालमीकि-वशज अछूत कैसे हो गये?

□

हुंकार

"डम-डम" डमरू बजेगा प्रलयंकर का,
लोचन विषम निज विषकण्ठ खोलेंगे।
थर-थर कांपेगी वसुन्धरा विकल होके,
असुर-असुर डिग डगमग डोलेंगे।
धर्म-ध्वजधारी सैनिको के भारी भार-वश,
शेष कुचलेंगे, कोल-कच्छप कलोलेंगे,
अणु-अणु भीष्म अणुबम-सा प्रतीत होगा,
जब हर-भक्त "हर-हर-बम" बोलेंगे॥

□

होली का प्रभात

प्याला भरा हाला का धरा है सुर-बाला ने कि,
प्राची-मुख-मण्डल की क्षितिज में छवि है।

गगन-गवाक्ष से कि गाता गीत जागृति के ;
देव-लोकवासी क्रान्तिकारी कोई कवि है ॥
चरखा चढ़ाया आसमान पै कि गांधी जी ने ,
चक्रपाणि-चक्र है कि वासव का पवि है।
होलिका के अंक में प्रतापी प्रह्लाद है, कि ,
लाली मे उषा की तेज-पुञ्ज बाल-रवि है ॥

□

गोपाल

गायें कटती है छँटनी हैं हाय ! बोटी-बोटी
कैसे दया-सिन्धु हो द्रवित जो न होते हो ?
कैसे गोपबन्धु ? गोपबन्धु लोप हो रहे हैं ,
गोप-बन्धुता का पुण्य-अवसर खोते हो ?
अवतार लोगे कब ? अब तार लोगे कब ,
सकट-समुद्र मे लगा रहे जो गोते हो ?
पूतना के विष का प्रभाव क्या हुआ है अब ?
कैसी काल-निद्रा है ? गोपाल कहाँ सोते हो ?

□

पावन प्रतिज्ञा

चरखे चलायेंगे, बनायेंगे स्वदेशी सूत ,
कपड़े बुनायेंगे जुलाहों को जिलायेंगे ।
चाहेंगे न चमक-दमक चिर चारुताई ,
अपने बनाये उर लाय अपनावेंगे ।
पावेंगे पवित्र परिधान, पाप होंगे दूर ,
जब परदेशी--स्त्र ज्वाला मे जलावेगे ।
गजी तनजेब ही सी देगी जेब तन पर ,
'गाढ़े में "त्रिशूल" अब 'नैन-सुख' पावेंगे ॥

□

विजया दशमी

आई 'विजया' है तो विजय प्राप्त हो न कैसे ?
गूंज कैसे गगन मे जय का न नारा जाय ?
हृदय-हृदय में विराजें रामचन्द्र आके,
क्यों न दलितो को मिल सहज सहारा जाय ?
मुक्ति के लिए न कैसे फड़कें भुजायें और—
उष्ण-रक्त हो न कैसे, क्यो न ऊँचा पारा जाय ?
कौन राक्षसो की रक्षा कर सकता है अब ?
राम-बाण छूटें, कैसे रावण न मारा जाय ?

□

गीतामृत

कामना रहित कर हरि की शरण देती,
"भवसिन्धु तरना सिखाती हमें गीता है,
आत्म-तत्व-बोध से अमरता प्रदान कर,
मृत्यु से न डरना सिखलाती हमे गीता है।
क्या है करणीय और क्या है अकरणीय,
श्रेय कर्म करना सिखाती हमे गीता है।
जीवन-मरण की समस्या हल करती है,
जीना और मरना सिखती हमे गीता है।

जाना है यहाँ से कहाँ किसी का ठिकाना नही,
छोड कर क्यो न नीति अपनी पुनीता जा।
कर ले सुकृत कुछ पुण्य-बल संचय को,
साथ रख सबल अजान मत रीता जा।
बार-बार मरते हैं कायर-कलकी-भीरु,
मर के गया तो क्या सनेही स्वर्ग जीता जा,
आत्मा है अमर, कर जीवन समर सर,
बाँध ले कमर वीर गीतामृत पीता जा।

□

ओम्-मन्त्र

पूर्वज हमारे हमे दे गये अमर मंत्र,
हम हैं अमृत-पुत्र मारे न मरेंगे हम।
लाख कोई चाहे पर हमें न डुबो सकेगा।
लाख बार डूबे लाख बार उबरेंगे हम।
ओम् की पताका फहराएँगे गगनचुम्बी,
शून्य अन्तरिक्ष "ओम्" ध्वनि से भरेंगे हम।
"ओम्-ओम्" गानकर "ओम्"-सोम पानकर,
प्राण होम देंगे और हवन करेंगे हम॥

□

अज्ञान

सिन्धु के हैं बिन्दु कहते है सिन्धु-बिन्दु मे हैं।
हवा मे भरे है सिर ऊपर उठाये है।
कुछ पल ही मे फिर चलता पता न कुछ,
तत्व जितने है सब तत्वो मे समाए है।
अभिमान करें तो "सनेही" किस ज्ञान पर,
आज तक इतना भी जान नही पाये हैं।
भेजा किसने है और उसका अभीष्ट क्या है,
कौन हैं, कहाँ के हैं, कहाँ से यहाँ आये हैं॥

□

नेता रत्न

रात-दिन एक सा प्रकाश फैले चारो ओर,
प्रतिभा की रश्मि लोक-मन रँगती रहे।
सच्चा हो, अदोष, मैल जिसमें न आये कभी,
कीमत 'सनेही' दिन-दूनी लगती रहे।
रंकता मिटा दे, एक अंक भी न रक्खे शेष,
जिससे अमंगल की भीति भगती रहे।
बोल उठे जौहरी—"अनोखा ये जवाहिर है",
जगती मे ऐसी दिव्य-ज्योति जगती रहे।

□

शान्त भावना

लालसा यही है छवि-छाया में बसेरा करें,
प्राणाधार - प्रियतम - प्रेम से पगे रहें।
वासना यही है आस-पास मँडलाया करें,
पाकर सुवास भौंर ही से उमगे रहें।
चाहना यही है और चाह न समाती चित्त,
परम सनेही हो सनेही के सगे रहें।
कामना यही है बस उनकी गली के हम,
धूलि-कण होके पद-तल में लगे रहें।

□

कवि-कौतुक

कैसी चतुराई कैसी कला मे निपुणता है,
बिना रंग कैसे चित्र सुन्दर सँवारे हैं।
प्रकृति-रहस्य भेदने मे कैसी तीव्र-मति,
रवि की न गम्य वहाँ सुकवि पधारे हैं।
अतल, वितल, तलातल की खबर लेते,
'अलमस्त' कौतुकी विचित्र ही निहारे है।
ऊँची जो उड़ान भरी कल्पना-विमान चढ,
तोड-तोड़ तारे आसमान से उतारे है।

□

राका-रजनी

सारी जरतारी अगणित हैं, सितारे टँके,
दूध ही सा रंग अंग-अंग की प्रभा का है।
लोचनों के साथ-साथ शीतल हृदय होते,
विश्व में कहीं न कोई और समता का है।
माँग है उसी की, आप कहिये गगन-गंगा,
कमल खिलाती धरे रूप कमला का है।
मोहक मृगांक-मुख मोहे ले रहा है मन,
कोई सुर-सुन्दरी 'सनेही' है, कि राका है?

जान पड़ता है वसुधा को सींचने के, लिये—
हाथ में फुहारा देवदारा चली आती है।
पारावार पारा का है उमड़ा कि छूटी हुई,
जटी की जटा से गंग-धारा चली आती है।
तितर-बितर श्वेत घन का समूह कर,
भेजी रूप-राशि विधि-द्वारा चली आती है।
शान्ति की पताका फहराती लहराती हुई,
राका संग लिए चन्द्र-तारा चली आती है।।

□

कैसे भूल जाऊँ मैं

जिसकी मधुर मूर्ति आँखों मे रही हो बस,
हृदय से किस भाँति उसको हटाऊँ मैं।
जीवन का मूल्य जिसकी कि एक मुसकान,
वारी जिस पर, जिस पर बलि जाऊँ मैं।
पाऊँ जो समीप लालसा है बस मेरी वह,
मुझमें समाये या कि उसमे समाऊँ मैं।
जिसकी कि याद में भुलाया सब कुछ मैंने,
उसको 'सनेही' भला कैसे भूल जाऊँ मैं।

□

गप्पाष्टक

एक बार तीन मतिहीन साथ-साथ चले,
देख्यो तरु एक जाके चारों ओर सर है।
बोल्यो एक पानी में लगै जो आग भाग-भाग,
मछली कहाँ को जायँ ! जिनको ये घर है।
दूजो कह्यो कैसो है तू अमहक बेवकूफ,
पेड़ पै चढ़ेंगी उन्हें रञ्च हू न डर है।
तीजो कह्यो रे-रे मूढ़ ! वे हैं गाय भैंसें नाहिं,
जिन्हैं डार-डार पे विहार सुखकर है

निपट लबार एक बार बैठि हाँके गप्प,
मेरे पुरिखा हते अभूत दल-बल में।
हाथी बेशुमार और घोड़ों का न वारापार,
घुड़शाला कोसन पचीस भूमि-तल में।
दूजो कह्यो मेरे दादा पास ऐसो बांस रह्यो,
कोचि घन माँहि पानी लेते थे फसल में।
धरत कहाँ सो रहे ? पहिलो अचंभि पूछ्यो,
हँसि कै कह्यो सो तेरे भारी अस्तबल मे।

दावा कीन कोऊ एक भ्वासर गरडिया पै,
पहुँच्यो वकील पास कीन्ही जाय भेयँ-भेयँ।
तिन यो सिखायो अरे कोऊ कछु पूंछै जब,
भेयँ छोड बोलियो कछू न सठ टेयँ-टेयँ।
हाकिम जो पूंछै कछु भेयँ-भेयँ भाखे भूरि,
सिर्री जान खारिज कियो न कियो चेयँ-चेयं।
भेयँ ने जितायो बाकी देन सुकराना रह्यो,
दमरी न दीन्ही मांगे बोलि उठ्यो भेयँ-भेयँ।

बनिये का छोकरा पढो है खूब छन्द-बन्द,
ग्राहक लुभावै मन भावै बात करते।
एक दिन लै गयो सिपाही एक आटा-दाल,
माछी एक घी मे कढी नौटि आयो घरते।
कोप करि बोल्यो कैसी दीन्हे तैं जिनिस मूढ़,
हँसि कै कह्यो सो ऐंठि काहे को बररते।
माछी न निकरती निकरतो कहा धौं और,
एक ही टके मे हाथी-घोड़े क्या निकरते।

कोऊ एक शिक्षक पढ़ावै निज लरिका को,
पौढ़ि के पढ़त सो दुलारन करे-करे।
पाढे कै प्रवीन भयो प्रविस्यो सभा मँझार,
मूक बनि बैठो देखि रिस सो भरे-भरे।
बाप हनि मारी लात पसरि गयो है लोटि,
करि त्राहि-त्राहि और कहि के हरे-हरे।
पीठि भूमि लागत सुमिरि आयो पाठ सब;
जीति लीन्हीं बाजी फिर छन में परे-परे।

खरही गजहि देखि बोली मन संक भरि,
घर न बुढौना मोर छौन न कचरि दे।
बोलो गज हो तो पति तेरो तो करत काह,
बोली करि देखु मल्ल युद्ध दिल भरिदे।
दोउन बुलाय बन्धु संगर मचायो घोर,
चौगडे चह्यो गयन्द बैठि चूर करि दे।
निबुकि ससक चढ्यो घीच पै पुकारै साथी,
रगरु-रगरु अब सारे को रगरि दे।

भागवत पाठी एक पण्डित प्रवीन कोऊ,
बाँचत कथा को रहे मध्य एक ग्राम के।
श्रोतन मे एक प्रेमी साह जी अफीम रहे,
भरपूर भक्त औ जपैया हरि नाम के।
घण्ट हू बजावै व्यास आसन के पास बैठि,
जानि यो परत बने दास बिन दाम के।
एक दिन पीनक मे सूझ्यो झपट्यो सो श्वान,
दुत्त कहि मोगरी जमाई व्यास राम के।

एक सूम सेठ कह्यो पंडित सो दीन ह्वै कै,
मेरो प्यारो पूत आप कृपा कै पढ़ाइये।
तनख्वाह पूरी और कबो-कबो सीधा-पानी,
कीजिए न आगा-पीछा पाटी पकराइये।
पाँच प्रति मास सुनि पण्डित कहन लागे,
पावत सईस काह सो तो बतलाइये।
दस सुनि कह्यो, पढ़े पाँच ही के जोग यह,
याते निज नन्दनै सईसी ही सिखाइये।

□

रहस्य

घूमता कुलाल-चक्र कितनी ही तीव्रता से,
एक रेखा सुस्थिर, छिपी है चकफेरे मे।
छिपी रहती है मन्द मुसकान-छवि-छाया,
भाग्य-भामिनी के तीखे तेवर-तरेरे में।

पौष-मार्गशीर्ष : शक १६०४]

आशा-द्वार खुलते भी लगती नहीं है देर,
डालती निराशा जब चित्त घोर घेरे में।
क्रान्ति में 'सनेही' एक शान्ति का निवास छिपा,
प्रबल प्रकाश छिपा अधिक अँधेरे मे।

□

मधुशाला

परदे में रक्खो, राज-पथ से हटाई गई,
अब कवि-वृन्द उसे बाहर निकालेंगे।
जगह-जगह मधु-मन्दिर बनेंगे और,
प्याले पर प्याला हाला, हलाहल ढालेंगे।
लेंगे मजे मस्ती के 'सनेही' बदमस्त होके,
होगी जो जरूरत क़सम फिर खा लेंगे।
घर-घर होगा फिर शीशे की परी का नाच,
जान पड़ता है लोग, तौबा तोड डालेंगे।

□

हिन्दी का उपालम्भ

'गुलो-बुलबुल' की मुहब्बत का लेते मजा,
भूल गये प्रीति चातको की, श्यामघन की।
'लैला-मजनूँ' का है जुनून सर पै सवार,
भूली चाह राधिका की, व्रज-प्राणधन की।
नन्दन की शोभा कैसे आँखो में समाये जब—
सैर करते हैं 'इस्फ़हान' के चमन की।
भारती पराग मे कहाँ से अनुराग आये?
ख़ाक फाँकते हैं आप 'अरबो—यमन' की।

□

वसन्त में प्रतीक्षा

पञ्चशर जी के पाँचो शर हैं शरासन पै,
हर-हर बैहर ही हहर बसन्ती है।

लोचन लडाके लड जाते हैं लडाए बिना,
इन लाड़लों पे ऐसा असर बसन्ती है।
चलते कटाक्ष-शर, घायल रसिक होते,
पीले मुख जाता विष छहर बसन्ती है।
बेलें तरुओं पे चढ़ी, बेलों पर खिले फूल,
फूलों पे भ्रमर छिडा समर बसन्ती है।
छेड़-छेड राग छेड़ते हैं पक्षियों के पुंज,
गरल की गाँठ से भ्रमर मँडराते हैं।
कोयल भी बोली बोलती है, छोलती है, छाती;
हँसते सुमन मेरी, हँसी सी उड़ाते हैं।
लिपटी लताएँ तरुओं से खिल-खिल जातीं,
पल्लव उरों में व्याधि-अंकुर उगाते हैं।
आया है वसन्त, अन्त कर दे कहीं न यह,
कब तक देखिये 'सनेही' श्याम आते हैं।
बेधेंगे कलेजा विष बाण से रसाल-बौर,
उस पर पिक-गण विष बरसायेंगे।
फूलेंगे पलाश दहकेगी दव चारो ओर,
बिना घनश्याम जलते का जी जलायेंगे।
त्रिविध समीर-झोंके रोके किसके रुकेंगे?
हृदय जलेगा और आग सी लगायेंगे।
जब जब आता ध्यान तब तब रोते प्राण,
अब भी न आये तो 'सनेही' कब आयेंगे?

□

प्रेम का प्रदेश

मंगल प्रभात देखने की कामना है जहाँ,
शान्ति का निवास जिस सुन्दर स्वदेश में।
सोते जहाँ जागृति की नींद मे सदैव सब,
सब सुख-स्वप्न देखते हैं जिस देश में।
दीन-दुखियों की कुटियों में हँसती है जहाँ,
स्वर्ग की कुमारियाँ भी कमनीय वेश में।
मित्र! तुम जाओ, निज जीवन जगाओ और,
हृदय सजाओ उस प्रेम के प्रदेश में।

□

ख़याले-वतन

नाचा करती है लोचनों में पुतली-सी छवि,
सुख में हँसे हो कि फँसे हो दुख-क्लेश में।
आते दृश्य सामने अशेष, लेश रहता न,
देश-दृश्य रहता है अवशेष शेष में।
पावन-पुजारी बस एक देश-देवता के,
चाहे जिस पंथ में हों, चाहे जिस देश मे।
हृदय-प्रदेश में बसा ही रहता है देश,
देश में बसे हो, कि बसे हो परदेश मे।

☐

मेरा चमन

पंचतत्व पींजडे में तडप रहे हैं प्राण,
प्रेम-वन और वनमाली की लगन है।
व्याधिनीनियति ने मुझे है बाँध रक्खा पर,
मानता नहीं है उडा फिरता ये मन है।
सौरभ से जिसके प्रमत्त रहता है मन,
जिसमे खिला 'सनेही' साँवला सुमन है।
सोते-जागते मैं उसी चमन मे घूमता हूँ,
यद्यपि बहुत दूर मुझसे चमन है।

☐

कहानी रह जायेगी

मानी मन मानता नही है मुझे रोको मत,
मातृभूमि-बानी बिना मानी रह जायेगी।
जीवन के युद्ध में है जाने का सुयोग फिर—
जोश ही रहेगा न जवानी रह जायेगी।
एक दिन जानी जान-जानी यह जानी बात,
कुछ तो जहान में निशानी रह जायेगी।
धीरता की धाक बँध जायेगी विरोधियों में,
वीरता की विश्व में कहानी रह जायेगी।

☐

सहारे हैं

अजगर चाकरी करै न करै पंछी काम,
जिसने दी चोंच, देगा चून वो, विचारे हैं।
कितने ही जीवन-समर में खपाते जान,
जोतते हैं खेत, धरती के सर मारे हैं।
भूपति लगान की लगन मे मगन-मन,
हँसिया-हथौड़ा पै श्रमिक प्रान वारे हैं।
हर के सहारे कुछ, हर के सहारे कुछ,
कर के सहारे कुछ, कर के सहारे हैं।

□

स्वदेशी-होली

चहक रहे हैं पिक चारो ओर कानन मे,
या कि देश-युवक स्वदेशी गान गाते हैं।
घर-घर, ग्राम-ग्राम होली जलती है या कि,
बसन विदेशी धार-धार हुए जाते हैं।।
फाग खेलने के लिए मण्डली जुडी है या कि,
साज स्वत्व समर के सूरमा सजाते हैं।
भर-भर झोलियाँ अबीर है उडाते या कि,
दासता की धूल धूमधाम से उडाते हैं।।

□

ग्रीष्म-ताप

ग्रीष्म स्वर्णकार बना भट्टी-सा नगर बर,
घरिया-सा घर वस्त्र-भूषण अंगारा-से।
मारुत की धौंकनी प्रचण्ड तन फूंके देती,
उठते बगूले हैं विचित्र धूम-धारा से।
छार छा रही है, दम नाक में ही ला रही है,
बचना कठिन है 'सनेही' और द्वारा से।
आ के घनश्याम जो न देंगे कहीं दर्श-रस,
ताप-वश पल में उडेंगे प्राण पारा-से।

□

बचत

माना, है असील रूप, शील श्यामकर्ण का-सा ,
इलेगा उधर ही जिधर हम डालेंगे ।
दुलकी, कदम, सरपट, शहलाग, पोई ,
चालें भी निकालेगा, इसे जब बिकालेंगे ।।
सेवा पर इसकी कठिन है, खिलाई बड़ी ,
काम फिर कौन दाम इतने क्यों डालेंगे ?
आप ही बतायें, हम ताजी रख के करें क्या ?
इतने में हम तो पचासों गधे पालेंगे ।''

□

आशावान प्रेमी

आँखों-आँखों में न मिल जाते कभी आते-जाते ,
छुटते ही लोचनो मे जल भरते नही ।
बनना हृदय-हार उनको न होता यदि ,
हँसते ही हँसते हृदय हरते नही ।
सच्ची जो लगन तो न मिलन असम्भव है ,
आशावान प्रेमी हैं निराश मरते नहीं ।
अंगीकार करना न होता जो 'सनेही' उन्हें ,
'नहीं' कर देते, 'नही-नही' करते नही ।

□

प्रियतम से

परम सनेही होके रहते हैं दूर-दूर,
रूपवान होकर अरूप रूप धारे हैं ।
देही जैसे देह मे हो, गेही जैसे गेह मे हो,
वैसे रोम-रोम में सनेही प्राण प्यारे हैं ।
स्ववश बसाए हैं, बसे हैं, कुछ बस नहीं,
रिस हो कि रस बस उनके सहारे हैं ।
नयन हमारे हैं न हृदय हमारा यह
मन ही हमारा है न प्राण ही हमारे हैं ।

नजर बचाए हुए, आँखें यों चुराये हुए,
छिप कर आप किस दिल में समाएँगे ?
सेवक सरल हूँ मैं, सरल हृदय आप
हृदय में कैसे कोई कुटिल बसाएँगे ?
आश्रय-विहीन को उदार-मना अपनाते
सहृदय आप कैसे बज्र बन जाएँगे ?
छोड़ कर सबको हुआ हूँ आप ही का अब
अब भी 'सनेही' क्या न आप अपनाएँगे ?

पानिप मे तेरे प्रेमी लोचन नहाते जब,
होते तो सफल हैं पवित्र बन जाते हैं।
कोपल कमल से कपोलों पर मुग्ध होके,
मुदित मिलिन्द-वृन्द मित्र बन जाते हैं।
तेरे स्वेद बिन्दु मकरन्द से सुगन्धित हो,
मन्जुल गुलाब का ही इत्र बन जाते हैं।
आते चित्रकार जो बनाते कभी चित्र तेरा,
देख के विचित्र छवि चित्र बनवाते हैं।

पानी है

लव-कुश अश्व बाँध कर बिना सेना लड़े,
लंक-जेता बाप से भी हार नही मानी है।
भूषण की बानी ने चढाया ऐसा पानी यही,
चमकी भवानी-भक्त शिवाकी भवानी है।
पहले स्वतन्त्रता-समर मे "सनेही" यहीं,
नानाराव से मरी फिरंगियों की नानी है।
नाम सुनते ही हैं पकड़ते विपक्षी कान,
यह कानपुर है यहाँ का कड़ा "पानी है"।

मोती हैं अदन के समुन्दर में डूबे पड़े,
खानों में छुपाए मुँह लाल बदख़्शानी हैं,
हीरे गोलकुण्डे के न जाने किस कुण्ड में हैं,
आती न नजर कहीं उनकी निशानी है।

मारा-मारा फिरा अंग-भंग हुआ आखिर में,
दर्द भरी कैसी कोहेनूर की कहानी है,
ताब किसकी है जो उठाए आँख देखे आब,
लाजवाब अपने जवाहर का पानी है॥

□

सूर है न चन्द्र है

ले चल वहाँ तू मन-मानस मयूर मेरे,
जाने में जहाँ के कल्पना की गति मन्द है।
सत्य की सत्ता जहाँ चेतन है सारी सृष्टि,
व्याप्त वायु ही-सा वसु दिशि ब्रह्मानंद है।
छाजती जहाँ पै आदि ज्योति जगदम्बिका की,
जीवन की ज्योति जहाँ जागती अमन्द है।
भूमि है न गगन न दीपक न तारागन,
दिन है न राति है न सूर है न चन्द है॥

फाटत ही खम्भ के अचम्भि रहे तीनों लोक,
शंकित वरुण है पवन-गति मंद है।
घोर गर्जना के झट झपटि झड़ाका जाय,
देहली पे दाब्यो दुष्ट दानव दुचन्द है॥
पूर्‌यो प्रन कीन्ह्यो है; अधूरो न रहन पायो,
तोरो देव बन्दि और फार्‌यो भक्त फन्द है।
नर है न नाहर है, घर है न बाहर है,
दिन है न रैन है, न सूर है न चन्द है॥

□

बड़ाई है

दान गज में है मानिनी के मन में है मान,
आँखें लड़ने में रही अब तो लड़ाई है।
भौंहों में कमान रही, तीर नजरों में रहे,
रही दिलदार ही के दिल में कड़ाई है।

गढ़ने में बातें रहीं, बढ़ने में रहे बाँस,
पढ़ने में टाँग "कैट-रैट" ने अड़ाई है।
कला नट में है, रंग पट में रहा है शेष,
पानी घट में है और बट में बड़ाई है।

□

द्वितीया का चन्द्र

बध दिनराज का हुआ है पक्षी रो रहे हैं,
पश्चिम मे रुधिर-प्रवाह अभी जारी है।
दिशा बधुओ ने काली सारी पहिनी है,
नभ-छाती छलनी है निशा रोती-सी पधारी है।
तड़प-तड़प के वियोगी प्राण खो रहे हैं,
कैसी चोट चौकस कलेजे-बीच मारी है।
तमराज नही, जमघट जमराज का है,
नव चंद नही, क्रूर काल की कटारी है।

□

ऊसर में बरसे

मीन मर मारा किए चातक पुकारा किए,
हारा किए कृषक दयाकर न दरसे।
सूख गए सुमन महीरुह मलीन हुए,
नन्हें-नन्हे पौदे बूंद-बूंद को ही तरसे।
सीप मे सरोवर सरित मूंह खोले रहे,
क्षर से भरे वे रहे ताप ही के क्षरसे।
मानी नही एक जोन ठानी तौन ठानी जी मे,
मानी मेघ हाय पानी ऊसर मे बरसे।

□

कृपान की

करती कटा है कभी कामिनी कटाक्ष बन,
कभी चमकाती बिजली है मुसकान की।

छन में तलातल रसातल को जाती भेद,
छन ही में लेती है खबर आसमान की।
चूकती न लक्ष ठीक बैठती हृदय पर,
कैसी है अनोखी छटा कवि की खवान की।
चक्र-चक्रपानि की न शूल-शूलपानि की,
न ऐसी रामबान की न कालिका-कृपान की ॥

पी गयी गरल जब गरल बुझायी गयी,
अनुगामिनी हो नीलकंठ भगवान की।
सोख गई बैरी का सुयश-सिन्धुपल ही में,
घूँट गयी घूँटी है अगस्त्य-अभिमान की।
डूब-डूब रुधिर की धारा मे न तृप्त हुई,
बान पड़ी बेढब इसे है रक्तपान की।
आप पानीदार, किये पानीदार पानी बिना,
प्यास न बुझी है तो भी तृषित कृपान की ॥

हाथ में उठाते, उर में है उठती उमंग
गजब की शान है, अजब आन-बान की।
सर-सर करती, समर सर करती है
भरती उड़ान, मति हरती शचान की।
वार करते ही कर लेती है शिकार यह
बैरियों ने काल-व्यालिनी सी अनुमान की।
पेखनी है शक्ति, लेखनी है इन्द्र वज्र गति
देखनी उचित चाल लेखनी-कृपान की।

□

गाँठ खुलने न पाती है

बीतीं दासता में पड़े सदियां न मुक्ति मिली
पीर मन की ये मन ही मन पिराती है।
देवकी सी भारत मही है हो रही अधीर,
बार-बार वीर व्रजचंद को बुलाती है।
चालिस करोड़ पुत्र करते है पाहि पाहि,
त्राहि-त्राहि-त्राहि ध्वनि गगन गुंजाती है।
जानें कौन पाप है पुरातन उदय हुआ
बेड़ी परतन्त्रता की खुलने न पाती है।

रंग देते रहते बधाई चूकते नहीं
एक भी कलंक रेख धुलने न पाती है।
लगती समाधि ध्यान आते श्याम सुन्दर का
मेरी चित्तवृत्ति फिर डुलने न पाती है।
घुल-मिल पायी नहीं नमक की डली जैसे
कितना भी हो सनेह घुलने न पाती है।
प्रेम की पड़ी है गाँठ उर में कसक रही
बिना खुले खेले हाय! खुलने न पाती है।

□

पट में

सरयू के तीर कभी देख पड़े नटवर,
कभी वंशीवट-तले, जमुना के तट में।
प्रकट विरुद है, निकट ही प्रकट होते
भक्त की सहायता को संकट विकट में।
अवघट घाट न अघट घटना है उन्हें
घट-घट-वासी घट कारिणी के घट मे।
खटपट होते देते, दौड़े बिन खटपट
झटपट आये हैं, समाये झट पट में।

□

ब्रजभाषा-छन्द

विष बोइबो जानै

बंस की ह्वै कै छुड़ावति बंसहि, तीर-सी ह्वै हनै तीर-सी तानै।
बेधी गयी तऊ बेध की बेदना बूझै न, बेधति खेद न आनै।
सूखि गयी हरियारी तऊ रही, ह्वै कै हरी है सुखावति प्रानै।
पीवै सदा अधरामृत पै, बरै बाँसुरिया विष बोइबो जानै॥

□

गई

वह सूधे सुमारग ही पै चलै, हम प्रेम की गैल लई सो लई।
उर सीतल आपनो राखैं सदा, हम तापन सों हैं तई सो तई।
इन चौंचदहाइन का परी है ? हम सों भई भूल भई सो भई।
अपनी कुलकानि सँभारे रहैं, हमरी कुलकानि गई सो गई।

□

सनेह की बातैं

दिन चारि की चाँदनी है ये नहीं सती-सूर को हैं इक देह की बातैं।
परछाहीं नही है ये बादर की, यह है अँसुवान के नेह की बातैं।
हठि नेह करै यह देह औ गेह की, औगुन-गेह अदेह की बातैं।
नस नेह की जो पहिचानत ना, तौ 'सनेही' करौ न सनेह की बातैं॥

□

डोलत

रुख राखि सनेह को रूखे भये, मुख फेरि के क्यों रस में विष घोलत।
दृग नीचे किये हो कटे-कटे जात, जो बोलत बैन फटे-फटे बोलत।
चुप साधि रहे अपराध है का ? केहि कारण गाँठि हिये की न खोलत।
इत आवत भूलिहू कै न कबौं, दिन बीतत हैं इत - ही - उत डोलत॥

□

कवि और सूम

मानस - वारो मराल कोऊ सरे ताल में मीन पै चोंच न डालै।
बे - दरदी बदरा करैं, पै पियैं चातक तौ पियैं स्वाति के प्याले।
कोसो मिलिन्द करै निज भागि को, जो परि जायँ पलास के पाले।
जाँचैं कवीस न सूम खबीसन, आँचै सहैं, सहैं कोटि कसाले॥

□

घन और चातक

नव - नेह को नेम निबाहत चातक कानन ही में मवासो रहै।
रट "पी कहाँ-पी कहाँ" की है लगी, भरो नीर रहै पै उपासो रहै।
तजि पूरबी पौन न संगी कोऊ, कछु देत हिये को दिलासो रहै।
लगी डोर सदैव पिया सों रहै, चहै बारहु मास पियासो रहै॥

जग-जीवन! देत फिरो जग-जीवन जीवन-दायक ह्वै दरसो।
गरजो-तरजो बरजो न सुनो, हरियारी करो हिय में हरसो।
पिय आस लगाये रह्यो बरसों, यह - बारहु मासन को तरसो।
बरसो जो न चातक पै वर-वारि, दया करि पाहन ही बरसो॥

□

स्याम-छवि

चन्द से आनन पै श्रम-बिन्दु, अमी-रस-बुन्दन की छवि छाई।
दौरि परे मन - मीन जो सामुहे, रूप - सरोवर - सी लहराई।
मारि सकों पलकों पलकौं नहिं ये अँखियाँ बनि जाहिं पराई।
स्याम 'सनेही' को पानिप पेखत, काई-सी लागै मनोज निकाई॥

□

बड़ी-बड़ी आँखें

हार पिन्हाइबो को उनके हैं पिरोवती मोतिन की लड़ी आँखें।
दाबि हियो रहि जैबो परे लखि के गुरु लोगन की कड़ी आँखें॥
हाय, कबै फिर सामुहे ह्वैहैं "सनेही" सरोज की पखँड़ी आँखें।
सालैं घड़ी-घड़ी जी में गड़ी रस में उमड़ी वे बड़ी-बड़ी आँखें॥

□

मिलन

बाँसुरी के सुर तार सों बाँधि कै, नागरी चित्त लपेटन आये।
भीजिबे को रस-रंगन सों, चिरताप वियोग की मेटन आये।
लाज भरी तरसी अँखियान सों रूप की रासि समेटन आये।
होरी को औसर जानि लला, निज प्रान पियारी को भेंटन आये॥

□

भाव-गोपन

बात विचित्र करौ कितनी, निज नैनन में भरि कै चतुराई।
लोगन के भरमाइबे को तुम, चाहे अनेक करौ सुघराई॥
अन्तर भाव छिपाइबे को तुम, चाहे अनेक करौ निठुराई।
पै न रहेगी बिना झलकै, इन आँखिन मे मन की मधुराई॥

□

विरह-वसन्त

सूखि सरीर गयो सहि सोकन, नैननि ते नित नीर बहा है।
जैसो कियो उन ह्वै कै 'सनेही', सबै ब्रज आजु सराहि रहा है।
प्रीति किये को सवाद यही, हमहूँ तस जीवन लाहु लहा है।
जो मन भावै करै मनभावन, आवन को इत काज कहा है?

फेरि सुगन्धित सीतल मन्द समीर सरीरहिं फूंकन लागी।
फेरि पलासन लागी दवारि, 'सनेही' उठावै भभूकन लागी।
फेरि मिलिन्दन की अवली, उर माहिं लगावन लूकन लागी।
फेरि करेजो रहे बिरही गहि, कातिली क्वैलिया कूकन लागी॥

□

एक ते ह्वै गयीं द्वै तसबीरें

मन-मानिक मोल में दीन्हो उन्हें, औ दई-अपने जियरे में जगीरै।
निज चित्र बसाय हिये में "सनेही" गये उपजाय वियोग की पीरै।
अब और कहाँ लैकै कहा करिहैं, अब लौ जो भई सो भई तकसीरै।
अरी का गति है है चितेरिनी जो, कहूँ एक ते ह्वै गयी द्वै तसबीरें॥

दर्पन में हिय के वह मूरति, आय फँसी न चलीं तदबीरें।
सो है दुट्टक "सनेही" गयो, पै परी विरहागिनि की बहु भीरें।
दोउन में प्रतिबिम्बित है छबि, दूनो लगी उपजावन पीरें।
सालति एकै रही जिय में, अब एक ते ह्वै गयीं द्वै तसवीरें॥

□

प्रतीक्षा

तन-प्रान सों वारी गयी उनपै, जिय जानि के मूरि ही जीवन की।
पन प्रेम की पारि पराई भई, सुधि भूलि गयी उनको पन की।
निरमोही 'सनेही' सनेही भये, मन देन कह्यौ न दई कन की।
मग हेरती हाय ये आँखें रही, अभिलाखें रहीं मन में मन की॥

□

रसीली निगाहैं

चारिहु ओरन तें चरचैं यई चौंचदह्याइन की चरचा है।
वै उनको मुख देखे जियैं, उनहूँ की दवै नहिं दाबी उमाहैं।
बाज न आवैं लिहाज करैं नहीं, कैसे कै लोक की लाज निबाहैं।
कोटि उपायन कीली रहीं, नहीं ढीली भई हैं, रसीली निगाहैं॥

□

समर्पण

घूंघरि ऐसी मची है गुलाल की, छाय रही जगती छिति-छोरन।
आपुहिं फन्द में जाय फँसी, फगुवा गयी लेन जु फाग की ओरन।
आई कटा करिबे को कटाक्ष से, आयु कटी है कटाक्ष की कोरन।
आपुहिं बूड़ि गयी रँग में जु गयी घनश्याम को रंग में बोरन॥

□

अनुनय

लंक भुवाल हौं मैं दसभाल, चहे बनिहै, न चहे न बनै।
मानि लै सुन्दरि! सीखन तौ, अविवेक सों टेक गहे न बनै।
मेरे अधीन है, दीन है तू, इमि साँसति नित्त सहे न बनै।
देखु तौ सीय मेरी छवि को, रवि को जुगुनू सो कहे न बनै।

□

गैयाँ

मारू महा नहीं काम की हैं, उन्हें कीजै प्रनाम कि लीजै बलैयाँ।
दोहनी देख दुलत्तियाँ झाड़ती छूने किसी को न देती हैं छैयाँ।
लोक में हो रहीं भार - सी हैं परलोक के पार. की जाने गोसैयाँ।
हाय ! कहाँ धौ गोपाल गये, वै कहाँ गयीं गोकुल ग्राम की गैयाँ ?

ऐसी रहीं सुरभी जिनकी सुर भी रहे मुग्ध हो लेते बलैयाँ।
स्वर्ग बनी वहाँ की धरती, धरती वै "सनेही" रहीं जहाँ पैयाँ।
दूध-दही की नदी बहती रही, माखन सों रहीं पूरी मलैयाँ।
हाय ! कहाँ धौ गोपाल गये, वै कहाँ गयीं गोकुल ग्राम की गैयाँ ?

□

चेतावनी

खेलेसि खायेसि बालपना,
तरुनापन त्यों तरुनीन पै प्रान दै।
हाय ! बनाय ·बुढ़ाय गयो,
पर ध्यायो नहीं भगवन्तहिं ध्यान दै।
मोह-मदादिक मैं भरम्यो,
उपदेस सुन्यो कबहूँ नहिं कान दै।
रे सठ ! सोचु भला अजहूँ,
यह मानुष जन्म वृथा नहिं जान दै।

□

पटु नट

विश्व की रंग-थली विरची,
यह रंग भरी रँग पै रँग लावत।
एक ते एक अनोखे नये;
रच पोखे "सनेही" जू दृश्य दिखावत।
कोऊ दुखान्त तौ कोऊ सुखान्त है,
जानिये केते धौं खेल खेलावत।
कोऊ छिप्यो पट में नट है पटु,
जो जग-जीवन नाच नचावत॥

□

बिसुओं का मिथ्याभिमान

एकता सौं करि बंचित जातिहिं,
संचित कीरति खोइबो जानैं।
माडें धराय कै सारे समाज मैं,
लाज-जहाज डुबोइबो जानैं।
झूठोइ मान बढावत ये—
गुन गौरव ज्ञान को धोइबो जानैं।
मोहिं तौ बीसौ बिसे बिसवास,
बरै 'बिसुवा' बिसु बोइबो जानैं।

□

लेखनी

बानो की लकुट, मनभायं भाव दैनवारी,
महि मे महान् कल्पतरु की निसानी तू।
निज मुख मसि लाय, ऊजरो करति मुख,
सतत 'सनेही' ह्वै सुकवि सुखदानी तू।
कुण्ठित कटारी काटवारी कटी तेरे काट,
पानी होत पाथरहु ऐसो रखै पानी तू।
मेटत लिलार लेख एकहि निमेख माहिं,
जापर कृपालु होति लेखनी भवानी तू।

बाजन लगति जस-दुन्दुभी दिगन्तन लौं,
दुष्ट-द्वेषी-द्रोहिन के दलन दलति है।
छाजन लगति छवि औरै छिति छोरन मैं,
पुण्य-तरु-साखा बनि सुफल फलति है।
लाजन लगति भण्ड-मण्डली घमण्ड तजि,
यम-दण्ड जिय जानि छातो दहलति है।
गाजन लगति मृत्यु सीस सूम राजन के,
जब कविराजन की लेखनी चलति है।

□

बरखा-बहार

सेत-असेत सरंग सरंग हूँ, त्यों बहनी धुरवा की कतार है।
दामिनी-सी पुतरी नित चञ्चल, जाके प्रभाव सो पूरित प्रकार है।
लागी झरी रहै सावन की-सी, कबौ मनमा घन मूसलधार है।
आय निवास करौं अँखियानि मे, देखिनी जो बरखा की बहार है॥

□

वियोगिनी-बाला

नारी गही बैद सोऊ बनिगो अनारी सखि,
जाने कौन व्याधि याहि गहि-गहि जात है।
कान्ह कहे चौंकति चकित चकराति ऐसी,
धीरज की भीति लखि ढहि-ढहि जात है।
कही, कहि जात नहिं, सही सहि जात नहिं,
कछु को कछू 'सनेही' कहि-कहि जात है।
बहि-बहि जात नेह दहि-दहि जात देह,
रहि-रहि जात प्रान, रहि-रहि जात है।

छल पुलकित होत, छन ही मैं पीरी परै,
आँसुन की धारन छनक छहरति है—
घहरति आठौ याम दीठि कीसी मारी, तन—
स्याम भयो कीरति-कुमारी कहरति है।
आये कछु काम नहिं बैदहू बुलाये बहु,
काहू बिधि बहराये नाहिं बहरति है।
सहमी ससी-सी नेह-व्याधि सो ग्रसी-सी,
काहू कारे की डसी-सी रहि-रहि लहरति है।

□

होली है

ग्रीषम बितायो जरि बिरह-जलाकनि मैं,
पावस मैं भीति-बस आँखिहू न खोली है।
सरद गरद दिल दाबि-दाबि राख्यो हाय!
धीरज हिमन्त मैं हिराग्यो, मति डोली है।

सिसिर मैं राखी एक साँसै-साँस बाकी, अब
  आयो है बसन्त फेरि कोयलिया बोली है।
ऐहैं जो न अजौं, पछतैहैं, मोहिं पैहैं नाहिं,
  ऐहैं की न ऐहैं वे 'सनेही' आजु होली है।

□

कृष्ण-सुदामा-मिलन

दौरि परे दीन-बन्धु दीन द्विज देखत ही,
  दारिद-बसेरो देखि पर्‌यो कृश-गात मैं।
लकुटी, लटी-सी, फटी दुपटी परी है काँधे,
  टपकी परति दीनता है बात-बात मैं।
उमगि परे हैं, उर लाय लै चले लिवाय,
  नेह बरस्यो परै 'सनेही' बतरात मैं।
हाथ परे हरि जू के पाथ परै पायो नाहिं,
  साथ परे आँसू पाँय परत परात मैं।

□

पुकार

नरहरि रूप धरि हर्‌यो प्रहलाद-दुःख
  राम ह्वै कै रावन से जग को ज्‌तै गये।
ध्वंस करि कंस को बचायो ना असर अंस
  सन्तत 'सनेही' निज दासन हितै गये।
भारत प्रवासी अहो, द्वारिकानिवासी तुम्हें
  बेर-बेर टेरै का वै बिरद बितै गये।
धार पाप कै रही है अन्धी बोर-सरकार
  गन्धी भये बन्दी बहुधन्धी हैं कितै गये।

□

प्रार्थना

या जगतीतल मैं जनमाय कै मानुष को तन नाथ न दीजै।
मानुष को तन दीजे कृपालु तौ प्रेम सो अंकित माथ न कीजै।
प्रेम सो अंकित माथहि कीजै तौ हाय ! मनै पर हाथ न कीजै।
जो पर हाथ मनै करिबे तो छली निरमोही को साथ न कीजै।।

□

नट-नागर की प्रीति

भूले गोप गैया, नन्दरैया, जसुमति मैया,
मधुपुर माँहि पायी ऐसी मधु-प्याली है।
माखन न दीन्हों उन्हें माखन न दीन्हों कब,
तूरि नेह-नात उन धूरि मुख डाली है।
कल-कल हंसिनी बिहाय ब्रजबासिन कौ,
कुबरी कुटिल काकपाली एक पाली है।
प्रीति ही निराली, राहरीति ही निराली आली,
देखी नट-नागर की नीति ही निराली है।

□

गोपी-वचन

जैसे वे है नन्द वसुदेव के सझैले सुत,
वैसे वह दासी नीच नाइन निकाम है।
जैसे वे 'सनेही' हैं त्रिभंगी रसरंगी बने,
वैसे वाके कूबर कमर पै ललाम है।
जैसे वे हैं रीझत सरस रसरंगन मैं,
वैसे वह जानति रिझैबो अभिराम है।
नीके रहैं दोऊ, हम कोऊ न कहैंगी कछु,
पीत पटवारे सौ हमारो कौन काम है?

□

कन्हैया की

भीर जुरि आयी भोर जानि बलवीर जू पै,
भूले सुधि गोपी गोप ग्राम ग्राम गैया की।
नन्द कहैं हाय-हाय मेरो ब्रजचन्द कहाँ,
बलदाऊ बिलखैं बिसूरि बानि भैया की।
रोवैं ब्रजनारी और कीरति-कुमारी रोवैं,
खोय पतवारी गयी जीवननवैया की।
हाय मेरा छैया ! जीहौं काकी लै बलैया हाय ;
कूदी परैं मैया कालीदह मैं कन्हैया की॥

□

घनश्याम

घूमैं घनस्याम स्यामा-दामिनी लगाये अंक,
सरस जगत् सर-सागर भरे-भरे।
हरे-भरे फूले-फरे तरु-पंछी फूले फिरैं,
भ्रमर 'सनेही' कलिकान पै अरे-अरे।
नन्दन-विनन्दक विलोकि अवनी की छवि,
इन्द्र-वधू-वृन्द आतुरी सों उतरे-तरे।
हरे-हरे हार मे हरिन-नैनी हेरि-हेरि,
हरखि हिये मे हरि विहरैं हरे-हरे॥

□

विरहिणी और वसन्त

बौरे वन बागन विहंग विचरत बौरे,
बौरी-सी भ्रमर भीर भ्रमत लखाई है।
बौरी बर मेरी घर आयो न वसन्त हूँ मे,
बौरी कर दीन्हों मोहिं बिरह कसाई है।
सीख सिखवत बौरी सखियाँ सयानी भईं,
बौरे भये बैद, कछु दीन्हीं न दवाई है।
बौरी भई मालिन, चली है भरि झोरी कहाँ,
बौरी करिबे को बौरी, बौर यहाँ लाई है।

□

ऋतुराज आगमन

मौर को मुकुट संग सुमन सँवारे स्वच्छ ,
सरदार संग में सुमन सर-भायो है।
हस गति वारे-वायु बाजि पै सवार है कै ,
बन-बन बीथिन विनोद बरसायो है।
फूले तरु कुजन मे मन-मधुकर मत्त ,
बारो गयो परम सनेह सुख पायो है।
है न ऋतुराज सुरराज को पठायो दूत ,
प्रेमिन को सुखद स्वराज्य देन आयो है ॥

□

सूक्तियाँ

सूम की-सी सम्पदा गँवायी आयी काहू काम ,
शक्ति प्रभुताई सदा साथ रही किनके।
पूरित उमग रहे चढ़े जिमि चग रहे ,
भंग हो गये है बडे रग रहे जिनके।
तानिये न आन-बान बानि ये नही है नीकी ,
जानिये विचारि बैन मानिये कविन के।
पाय तरुनाई कुछु कीजिये भलाई यार ,
जीवन - जवानी के जुलूस चार दिन के ॥

जान दीन्ही चमरी पै दमरी न जान दीन्ही ,
जोरि-जोरि सम्पति बटोर धरि-धरिगे।
पर उपकार करि पायो न बढ़ायो जस ,
भुवन मे अजस-भण्डार भरि-भरिगे ॥
सुफल फले न कोई वैभव की बाटिका मे ,
धन के गरब फूल फूलि झरि-झरिगे।
मरि-मरि, जरि जरि भीषण चिता की आग ,
कठिन कराल काल-जाल परि-परिगे ॥

पुहुमी, अनल, जल, अनल, अकास दियो ,
इतनो विभव है तौ और काह चाहिये।
काल को कराल चक्र घूमत चराचर मे ,
काके बल बूते पर गर्व गैल गहिये ॥

चार दिन की है यह चाँदनी "सनेही" तामें ,
काके रूप रीझिये औ काके नेह नहिये।
रामा औ रमा मे बिसराम औ विराम कहाँ ,
मन में रमाये राम रम्य रूप रहिये ॥

□

रूपराशि

काली-काली अलकें निराली काली नागिन-सी,
छहरत विष लखे अंग-अग थहरैं।
भृकुटी-कमानन ते तीखे नैन-बानन ते
हिय बड़े-बड़े सूर-बीरन के हहरैं।
कोऊ कलपत, जलपत कहूँ कोऊ परे
कोऊ कटे कुटिल कटाच्छन ते कहरैं।
धरि झकझोरे देई मन को सनेही मेरे
बोरे देईं तेरे रूप-सागर की लहरैं।

□

शरद-सौन्दर्य

श्याम शस्य पर श्याम केश बार-बार वार ,
लोचन को सुख लीजै खञ्जन अवाई पर।
कमल विकास पर देवियो का मन्द हास ,
अधर सुधा को वार स्वाति की मिठाई पर।
स्वेत बादलो पे वार बादल की चादर को
जरतारी वार तारागन की निकाई पर ,
बलि-बलि जयै चन्द-मुख की बिलोकि सोभा
राई लोन वारिये शरद-सुन्दराई पर।

□

भ्रमर वर

कल न परत छन भरमत बन-बन
बनत न जतन पतन पल-पल पर।
अटकट घर-घर भटकत दर-दर
तकत परम-पथ जकत थकत भर।

हरदम जपत रहत जब हर - हर
असरन - सरन हरन भव - भय हर।
रहत मगन मन, दहत सकल अघ
गहत अमर - पद लहत अमर वर।

□

मन की

सकित हिये मों प्रिय - अंकित सँदेसो बाँच्यो,
आयी हाथ थाती-सी "सनेही" प्रेम-पन की।
नीलम अधर लाल त्वै के दमकन लागे,
खिंच गयी मधु - रेखा मधुर हँसन की।
स्याम - घन - सुरति सुरस बरसन लागे,
बारें आंस - मोती आस पूरी अँखियन की।
माथ सो छुवाती सियराती लाय-लाय छाती,
पाती आगमन की बुझाती आग मन की।।

□

बाजौ

कोऊ कहै, छूटि आसमान ते परी - परी है,
कोऊ कहै, विष्णु पक्षिराज पै उडाने जात।
कोऊ कहै, भरके हैं भानु के तुरग देखो,
स्यन्दन विहाय इत-उत हैं पराने जात।
कोऊ कहै, दोइहै यहाँ जीव नश्वर कोई,
ईस सृष्टि - भेद न सनेही जू बखाने जात।
बाजी रामपाल सिंह जू को ऐसो बाजीगर,
जाके करतब करतार पै ही जाने जात।।

□

पत्थ में

कर मे लसी है जैसी वीर ! असि है असील ;
वज्र हू मैं धँसी यों कसी है कस बल में।

दिग्गज दहलि जात भूमिधर हलि जात,
याकी चलाचल की बिकट हलचल में।
अगम सुगमन विचारै चमाचम चलै,
गमागम गिरत गनीम भूमि तल में।
नाचति परी-सी सफरी-सी समरांगन में,
पर-दल-पारावार पैरि जात पल में।

□

माता का वात्सल्य

वारी जाउँ तो पै, बलिहारी-बलिहारी जाउँ,
तू है पतवारी मम जीवन-नवैया की।
जुग-जुग जीवै, होय जग में जसीलो एकै,
कृति करि पावै कलि-कीरति-कन्हैया की।
मेरे, प्रान तो ये मेरी अँखियाँ चकोरी बनि,
प्यासी रहैं तेरे मुख-चन्द की जुन्हैया की।
तेरे लखि विमल-विनोद है विनोद मोहिं,
मोद चहुँ कोद है भरी है गोद मैया की ॥१

थाती जानि प्रेम को सनेह सरसाती सदा,
छाती में छिपाय छवि छाती सुधा दै रही।
चन्दहि बुलावै कहि मन्द-मन्द आवै कस ?
मेरो चन्द चाहै तोहिं होंहूँ मग ज्वै रही।
पालने झुलावै, दुलरावै कबौं लैकै अंक,
तन-मन वारि मनुहारि कोटि कै रही।
भैया कहै, छैया कहै, कुँवर-कन्हैया कहै,
वारै लोन-रैया औ बलैया मैया लै रही ॥२

□

भ्रमर से

केते दिन काटे हैं करीलन में घूमि-घूमि,
कण्टक कुलिश के स्वरूप आय खटके।
घट के सलिल जब सूखन सरोज लागे,
रहि-रहि गये हैं कलेजे कट-कट के।

फेरि दिन फेर फिरे छायी है बसन्त छवि,
मालती खिली है औ गुलाब-पुञ्ज चटके।
अटके कहाँ हौ देखो, घट के उघारि नैन,
खाहु न मधुप झरवेरिन में झटके।

□

प्रेम-पचीसी

जेहि चाह सो चाह्यो तुम्हें पहिले, अबहूँ तेहि चाह सों चाहनो है।
तुम चाहौ न चाहौ लला हमको कछु दीबो न याको उराहनो है।
दुख दीजे कि कीजे दया दिल मे, हर रंग तिहारो सराहनो है।
मन भावै करौ मनभावन सो, हमैं प्रेम को नातो निबाहनो है।।१

कछु जोर नही है हमारो लला! तित जाइये जू चित चाहे जहाँ।
मिलते मन माहिर जाहिर मैं फिरि आखिर मैं पछतैहौ वहाँ।
तुम मानौ न मानौ करौ मन की, मन मारिकै धारिहैं धीर यहाँ।
मिलिहै महबूब सनेही सही, पै "सनेही"-सा और सनेही कहाँ।।२

तेवर फेरि कै नैन तरेरि कै मौन निरन्तर को गहि लेते।
पेखि कै आनन-चन्द चकोर ह्वै जीवन को फल तौ लहि लेते।
औरन सो करते न लगा-लगी, और तिहारी सबै सहि लेते।
दूर न होते हुजूर खफा ह्वै कसूर पै मेरे कछू कहि लेते।।३

जोर्‌यो सो जोर्‌यो पियारे! सुनौ, नहिं नातो हैं नेह को तोड़ने वाले।
छाँड़िये आप चहै मिलिबो, हैं नहीं हम संग के छोडने वाले।
मानिये देखी, सुनी नहिं मानिये, लाख हैं तोडने-फोड़ने वाले।
नैन छिपाये फिरैं चहै आप, "सनेही" नही मुँह मोडने वाले।।४

फेरि बिचारि कै पाछिले बैन, सनेही-सनेह-सुधा-पगि जाते।
फेरि कै चातुरी चित्त चुराय, चलाकी चलाय मनै ठगि जाते।
फेरि कृपा करते इक बार तौ भागि हमारे लला! जगि जाते।
आते यहाँ पै छिपाते न नैन, जिलाते हमैं जो गले लगि जाते।।५

बानिज प्रेम को कै-कै अजी अब आप निकारत हैं सो दिवाला।
बेलि सनेह की सूखन चाहति, जाको है चाह के नीर से पाला।
कीन्हीं लगालगी और कहूँ का, कहौ तौ भरा किसका घर घाला।
आते नहीं तरसाते जु हौ, तौ 'सनेही' जू है कछु दाल में काला।।६

कै बिसवास बिसासी को यों दिल मे अपने कहूँ ठाउँ न देते ।
मारिहै दाउँ कुदाउँ बिचारते; बात बिचारि कै दाउँ न देते ।
हेत हहा ! करि वा निरमोही सों होन कबौं बदलाउँ न देते ।
जानते जौ पछिताइहैं अन्त, तौ प्रेम के पन्थ मैं पाउँ न देते ।।७

पछिताने, दिवाने, बिकाने-से हैं, छलिया निरमोही के पाले पड़े ।
कुलकानि गँवाय हँसी हू सही, कहिये कहा के ते कसाले पड़े ।
तन की दुति छीन-मलीन भई, रंग और भये अंग काले पड़े ।
तब तौ उर दीन्ह्यों बिचारे बिना, अब अन्त मैं जान के लाले पड़े ।।८

दिन रैन बितावै उसासन लै सहैं साँसति दूसरो काज कहाँ है ।
जब लौं दिलदार न पीर हरै, यहि रोग की और इलाज कहाँ है ।
सब गाँव के लोग हँसै तो हँसै, अपने बस या मन आज कहाँ है ।
कहनावति साँची "सनेही" भई, 'जब लागि गयी तब लाज कहाँ है' ।।९

जानै नही कछु जी की बिथा, बिरहा की कथा सुनि देत है गारी ।
दीनता देखि दया न करै हठि ठानत सान महान् अनारी ।
चूर गरूर नसे मैं रहै, नहिं सोचति है हम पै बलिहारी ।
यार, रह्यो हुसियार सदा, करियो जनि भूलि गँवार सों यारी ।।१०

रस मैं रस आयो न एतो कबौं दुख पायो जितो अब रावरे रोस मैं ।
पहले मन दीन्ह्यो निछावरि कै, जिय सोच्यो नही कछु प्रेम के जोस मैं ।
कुलकान औ आन ते धोये हैं हाथ, रहे दिनराति यहै अफसोस मैं ।
बिनु कारन प्यारे जू ! न्यारे भये उपहास कराय कै पास-परोस मैं ।।११

जानते जौ यह ह्वै है दसा तो बलाय न यो अपने सिर लेते ।
ठानते जो मरिबो मन मैं, करि औरई जुक्ति कहूँ मरि लेते ।
होते सचेत हमेस जु तौ, दिल आपन यौ सहजै हरि लेते ।
देते जु पाँव सनेह के पन्थ, करेजहु पाथर को करि लेते ।।१२

पहिले अपनाय बनाय सगो, दिलदार दगा अब देन लगे ।
करि चाह "सनेही" बढ़ाय सनेह और प्यार, दगा अब देन लगे ।
पहुँची नहिं नाव पुकार परी, मँझधार दगा अब देन लगे ।
विसवास मैं चाहिए ऐसो नहीं तुम यार ! दगा अब देन लगे ।।१३

प्रेम करै नर सो जग मैं समुझै धर ऊपर माथ नहीं ।
पंथ भयानक मैं पग दै कै बिचारि लै कोऊ है साथ नहीं ।
तृषना-मृग की-सी सनेह मैं प्यास बुझैबे को कौनहु पाथ नहीं ।
और बिसेष बिथा को कहै, अपनो मन आपने हाथ नहीं ।।१४

सुख सोचि सनेह करौ न कबौ लगिहै नतु अन्त कलंक को टीको।
परिये नहिं प्रीति के फन्दन मैं, यह काम करै जम की फँसरी को।
मनभावत जानत जाको अबै, कछु घौस मैं ह्वै है सो गाहक जी को।
जिय जानें "सनेही" सदैव रहौ, 'पकवान है ऊँची दुकान को फीको'।।१५

रहिये गहि मौन निरन्तर ही, दिल की कहूँ काहू ते खोलिये ना।
हठि चाह के मारग मैं पग दै, बनि बावरे व्याकुल डोलिये ना।
सहिये न वियोग-बिथा करि प्रेम, हलाहल पीबे को घोलिये ना।
सुख चाहत जो जगतीतल मैं तो सनेह के बैन हू बोलिये ना ।।१६

चाह मैं यार परौ न कबौ, हम सीखे हैं या मैं सबै कछु खोकर।
चैन नहीं दिन में छिनहू भरि रैन हू सारी बितावत रोकर।
सूझै न कोऊ उपाय मिलाप को, ताप सहैं नित बावले होकर।
चूर ह्वै जात गरूर सबै, रह्यो दूरि बचाइयो प्रेम की ठोकर।।१७

निसि आवै न नींद, न भावै कछू उरझेई रहै दुख-द्वन्दन मैं।
हलकोपन आपुन होय निते उर-ताप सहैं छल-छन्दन मैं।
हिय हेरि 'सनेही' जु होसन त्यागि रहौ मन के नँद-नन्दन मैं।
हरि लेत अनन्दन-बृन्दन की परिये नहि प्रेम के फन्दन मैं।।१८

तजि लोक की लाज रहे है तऊ जग के अपवाद डरेई रहैं।
चित आवै न चेत अचेत-से है, अधरान पै आन धरेई रहैं।
तरकी नहिं जात वियोग-बिथा, बिन मीच ही हाय ! मरेई रहैं।
कहिये केहि सो, रहिये चुप ह्वै, दिल में दुख दीह भरेई रहै।।१९

उनको परवाह नहीं है कछू बनि जात हैं चाह मे राह के रोड़े।
निरलज्ज बनावत आखिर को, नहिं मानत लोक की लाज के कोड़े।
नहिं जानिये कैसे बिसासी ये दुष्ट अनेकन आजु लगे घर-फोड़े।
पगि रूप-सुधा छकि जात हहा ! छन मैं लगि जात हैं नैन निगोड़े।।२०

मृग ज्यो भ्रम पारि हिये भरम्यो तऊ प्यास बुझैबे को ना जल पायो।
करिया मुख कीन्ह न कीन्ह कछू, करि कोटि कला न कहूं कल पायो।
भटक्यो, अटक्यो, लटक्यो जिहि पै खटक्यो सोइ हाय ! भरो छल पायो।
मन को हम ही रमना करिकै मनमानी करी मन सो फल पायो।।२१

गुन-गर्बहि त्यागि गरीबी सही, पै तऊ कछु हेतु न मानत हैं।
मुख मोरि कै जात चले जु मिलै मग मानौं नहीं पहिचानत हैं।
हम हारे अधीन ह्वै दीन महा पै दया उर में नहिं आनत हैं।
करि प्रीति सनेही सवाद लह्यो जस, सो सबही हम जानत हैं।।२२

बन बीहड़ नीच वियोग को है दुख की दव सो दुख पावनो है।
गिरि सों गुरु लोगन को है सँकोच नदी-नद लोक लजावनो है।
वृक पाप मैं बैरी बबाई फिरै किठिनै अति प्रान बचावनो है।
पग दीजै न भूलि सनेही इहाँ, यह प्रेम को पन्थ भयावनो है ।।२३
सुख सों नहिं सोवत रोवत है, निसि बीतन चाहत है अधरातक।
मन-मीन को रूप सरोवर मैं कल पाइहौ काजु बिसारिहौ पातक।
रट लावत वा प्रिय की पन कै, कुसमैं मैं जु होति बिपत्ति विघातक।
अभिलाष "सनेही" सनेह की है तो रहौ बनि कै घनस्याम के चातक ।।२४
नद सागर मैं मिलि सागर भौ, प्रथमै मिलिबे के जु ठान ठने रहे।
तिमि छीर औ नीरहु एक भये, खवै प्रेमिन के सिरताज गने रहे।
मिलि पानहु चून-सुपारिहु-खैर सुरंग ह्वै स्वाद-सुधा सो सने रहे।
पर हाय ! कटे-कटे वै फिरते हम वे ही 'सनेही" सनेही बने रहे ।।२५

□

प्रेमोपहार

ऐसे उपसंहार का कैसे हो उपहार,
समुझि "सनेही" लीजिये द्विज के चाउर चार।

अब ऐती सनेही बिनै सुनिये, मनभावन के यदि होत सिफारसी।
बिरहानल देह दही दहकै उठती ही रहैं लपटैं ये लबार-सी।
नहिं धीर को ठौर रह्यो उर मैं इहाँ भोर-सी भीर भरी दरबार-सी।
लखि लीजिये क्यो न दसा निज की, अजी हाथ के कंगन को कहा आरसी।

इक अंग नही यह रग लखो, दिलदारी मयंक दिखाता तो है।
बस एक अमावस को तजि कै, हर घोस निसा महँ आता तो है।
निरमोही भला उसे कौन कहै, वह मञ्जु पियूष पिलाता तो है।
फिर क्यों करै चाह मे आह चकोर सनेह - सुधा - रस पाता तो है।

अलि, मीन, मराल, कपोत "सनेही" वियोग मे क्या दुख पाते नही।
दुख दूरी को एक विचार कहो क्या चकोर अंगार चबाते नही।
जब लौं नही प्रीतम पावत चातक क्या पिय की रट लाते नही?
घनघोर अघोर चलै नभ ओर पै मोर क्या सोर मचाते नहीं?

सोरठा : बिछुरे दरद न होत, खर - सूकर - कूकरन के।
हस - मयूर - कपोत, सुघर नगन बिछुरन कठिन।

हम चाहक चाह भरे उनके, हमको वह प्रेमी चुनै न चुनै।
तनो तानो सनेह के तारन सो, वह प्रेम को बानो बुनै न बुनै।
जिय-जान से हैं कुरबान हुए, एहसान कछू वै गुनै न गुनै।
दुखिया कहो कैसे न आह भरैं, वे कराह-तराह सुनै न सुनै।

अधरान पै प्रान हैं आन लगे, अब प्रेम-सुधा पिलवाते नही क्यो?
"धरो धीर", कहे नही पीर मिटै, हिय-घाव घने सिलवाते नही क्यों?
हित चाहत है जे हितू अपने, मनभावन सों मिलवाते नही क्यों?
दिलदार में जो दिलदारी नही, दिल बेदिल का दिलवाते नही क्यो?

पहले तो निगाह न की मुझपे मरने पे उन्होंने सराहा तो क्या?
जब काम तमाम हुआ अपना, जखमो पे धरा तब फाहा तो क्या?
जब चाह का जाता जमाना रहा, तब चौगुनी चाह से चाहा तो क्या?
तरसा के, खिझा के, रुला के हमे, पछताकर हाय! निबाहा तो क्या?

वह बेपरवाह बनै तो बनै, हमको इसकी परवाह क्या है?
वह प्रीति का तोड़ना जानते है, ढँग जाना हमारा निबाह का है।
कुछ नाज़ जफा पर है उनको, तो भरोसा हमे बड़ा आह का है।
उन्हे मान है चन्द से आनन पै, अभिमान हमे भी तो चाह का है।

प्रिय "पंचक" और "पचीसी" लिखी पढ़ि पूरन प्रेमी निहाल हुए।
वर बाटिका मित्र "मनोहर" की ये प्रसून दो एक ही डाल हुए।
सने दोऊ सनेह के सौरभ सो, रसभीने नवीन खयाल हुए।
"हरिपाल"—"सनेही" सनेही हुए त्यो सनेही भी तो हरिपाल हुए।

□

गले का गुलहार

दोहा . सरस गुलो का हार यह गुँथा प्रेम के तार।
देख लिया सिर धार फिर किया गले का हार॥

सवैया : बरस्यो रस, प्रेम भरी बतियान सो, नायी हिये मैं सुधा रसधार-सी।
खिलेंगे गुल, गंज उठायेंगे, क्यो गुल फूला नया, नयी आयी बहार-सी॥
चुन के गुल एक-से-एक नये, गुलचीं की शिकायत दी है बिसार-सी।
गुल का मिला हार गुलो का हमें, गुलज़ार रहे यह प्यारा सिफारसी॥

□

चन्द्र

पुहुमी में बहावै मयूख-सुधा, नित आवैं, दिखावै गरूर नहीं।
वह दूर हुजूर जरूर है पै दिल-दागे-फ़िराक से दूर नहीं।
जकर्‌यो रहै प्राकृत-नेम-जँजीरन, आने से क्या मजबूर नहीं।
दिल राखै चकोर को चन्द तऊ दिलदारी में कोई कसूर नहीं।

□

प्रेमी

जान से काम नहीं चलता खुम पे खुम क्या वै लुटाते नहीं।
मस्त-शराबे-मोहब्बत के कभी मैकदा छोड के जाते नहीं।
साकी की खैर मनाते रहे, कमजर्फ बने इतराते नहीं।
प्रेम पियूष के पीने में प्रेमी पयोधि पियें पै अघाते नहीं।

बने चुल्लू मे उल्लू को गाढो छनी सुरा प्रेम को जानि परै यह जाँच मैं।
अँखियाँ कहि देती हवाल सबै, लखि भेद परै जिमि कञ्चन-काँच मैं।
खरो-खोटो कसे उन जानि लियो, कसि तायो तऊ बिरहानल आँच मैं।
हमतौ कियो साँच सनेह पै क्या, बस जो न ढलै वह प्रेम के साँच मैं।

उसकी यह प्यारी अदा की सुई मै, जरूरत नेह के ताग की है।
अब को कहौ या की करै तदबीर, परी किसको षटराग को है।
गुनवारे न प्यारे हमारे यहाँ, नहिं कोई दवा इस दाग की है।
मजबूर हैं, दूर हैं आप भी तो, यह लाग हमारे ही भाग की है।

ढँग जाना निबाह का था हमसे, हम आजु लौं नेम निभाते रहे।
उस बेवफा कातिल-ज़ालिम से करने मे वफ़ा जी बढाते रहे।
वह आये न राह पे आह ! कभी, हवा बाँधते, रंग जमाते रहे।
कुछ रोज मे यार कहेंगे सभी, 'अरमान के वो दिन जाते रहे।'

हम आह-कराह-तराह करै, उनके मन भावती आह ना है।
हम चाह के चेरे 'सनेही' हुए, उनको किसी बात की चाह ना है।
हम चाहें जितो मिलि एक बनै, उनको इसकी परवाह ना है।
उनके दिल मे जब राह ना है, तब व्यर्थ हमारी सराहना है।

दिन दूनो दिपै तब तेज-दिवाकर, सीस असीसहिं लै धरते रहे।
'हरिपाल' 'सनेही' हितू बनिकै, नित प्रेम-प्रपंच मैं परते रहे।
समुझाय-सुझाय सनेह-मतो, हियरे की वियोग-बिथा हरते रहे।
मुखिया सुखियान के सुक्ख सने, दुखियान पै यों ही दया करते रहे ॥

□

मतवाले की मौज

मनुहार का प्याला मनोहर प्रेम हाला से भरा।
सुख-सुरभि से ही सना था मुद-मसाला से भरा ॥
पान कीन्हो प्रेम युत गुन मानिकै बड़ रावरो।
बिकिगो बिना मोलहिं 'सनेही' मस्त मन बनिगो खरो ॥
फिर पूछते हो मित्र क्या, ज्यों-ज्यो नशा चढ़ने लगा।
मैं बार-बार पुकार के बस 'शेर' ये पढ़ने लगा ॥
दौर में सागर रहे, गर्दिश मे पैमाना रहे।
हश्र तक आबाद साक़ी तेरा मैख़ाना रहे ॥
मस्त मन था मुदित यो तब लौं मधुर 'बीरा' मिला।
सिर धारि कै मुख मे धरा जनु रंक को हीरा मिला ॥

□

सवैया

मनुहार का प्याला 'सनेही' पिया, चित नेह-नशे में था चूर हुआ।
गहरी थी अमेल सनेह-सुरा, इससे मद भी भरपूर हुआ।
दिखला के नये-नये रंग मुझे, मैं कहूँ क्या कि क्या-क्या हुजूर हुआ।
न सरूर हुआ, सुख-पूर हिया, दुख दूर हुआ न सुरूर हुआ ॥

इस दास पे की है दया इतनी, इसका फल आपको आला मिले।
बन के रसिया रहिये सुख सो, मुद मोह मैं नित्य निराला मिले।
जग में यश लेके 'मनोहर मिश्र' जी वैभव-वित्त दुबाला मिले।
मनुहार का प्याला पिलाया हमें, बदले में पीयूष का प्याला मिले ॥

□

सम्मेलन के नवीन प्रकाशन

१. पंत जी और कालाकांकर—सम्पादक : कुँवर सुरेश सिंह ४०·००

२. स्वामी रामचरण : जीवनी एवं कृतियों का अध्ययन
—डॉ० माधव प्रसाद पाण्डेय ५०·००

३. हिन्दी की दशा और पत्रकारिता—लेखक पं० बालकृष्ण भट्ट,
सम्पादक श्री धनंजय भट्ट २६·००

४. साहित्य और साहित्यकार का दायित्व
—प्रो० विजय देवनारायण साही २०·००

५. लोकभाषा का व्याकरण—श्री वात्स्यायन धर्मनाथ शास्त्री १५·००

६. आधुनिक कविमाला-भाग १९—श्री गुलाब खण्डेलवाल १८·००

सम्मेलन के आगामी प्रकाशन

१. संस्कृत साहित्य में अन्योक्ति : डॉ० राजेन्द्र मिश्र

२. आधुनिक कविमाला—भाग २० : डॉ० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश'

◉

सम्पर्क-सूत्र

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

सम्मेलन द्वारा प्रकाशित कोश-ग्रन्थ

१. मानक हिन्दी कोश
(पाँच खण्डों में) सम्पा० श्री रामचन्द्र वर्मा २५०.००
प्रत्येक खण्ड का मूल्य ५०.००

२. मानक अंग्रेजी-हिन्दी कोश
सम्पादक डॉ० सत्यप्रकाश २५०.००
बलभद्र प्रसाद मिश्र

३. कन्नड-हिन्दी शब्दकोश
सम्पादक श्री एन० एस० दक्षिणामूर्ति ६०.००

४. तेलुगु-हिन्दी शब्दकोश
सम्पादक श्री हनुमच्छास्त्री आयाचित ६०.००

मुद्रणाधीन

संक्षिप्त मानक अंग्रेजी-हिन्दी कोश

©
प्राप्ति-स्थान
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

रजिस्ट्रार न्यूजपेपर्स ऐक्ट के अन्तर्गत

विज्ञप्ति

(१) प्रकाशन का स्थान	:	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
(२) प्रकाशन की तिथि	:	त्रैमासिक
(३) मुद्रक का नाम	:	सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
(४) प्रकाशक का नाम	:	प्रभात मिश्र शास्त्री
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
(५) सम्पादक का नाम	:	डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
(६) स्वत्वाधिकारी	:	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

मैं प्रभात मिश्र शास्त्री घोषित करता हूँ कि
उपरिलिखित विज्ञप्ति मेरी जानकारी के अनुसार
बिल्कुल ठीक है।

हस्ताक्षर—प्रभात मिश्र शास्त्री
प्रधानमंत्री
हिन्दी साहित्य सम्मेलन : प्रयाग